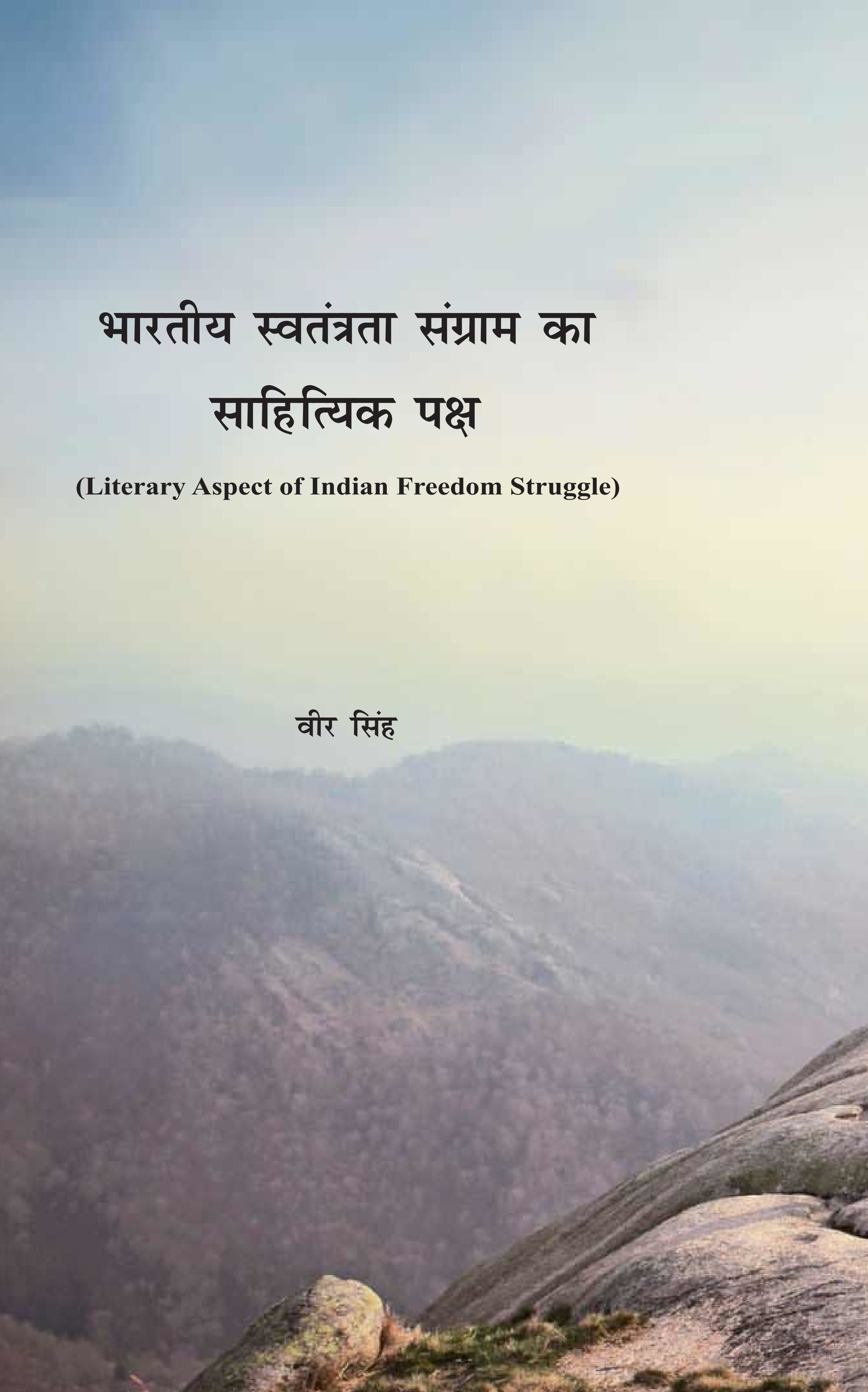

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का साहित्यिक पक्ष

(Literary Aspect of Indian Freedom Struggle)

वीर सिंह

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का साहित्यिक पक्ष

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का साहित्यिक पक्ष

(Literary Aspect of Indian Freedom Struggle)

वीर सिंह

भाषा प्रकाशन

नई दिल्ली – 110002

© प्रकाशक

I.S.B.N. : 978-81-323-5845-9

प्रथम संस्करण : 2021

भाषा प्रकाशन

22, प्रकाशदीप बिल्डिंग, अंसारी रोड,
दरियागंज, नई दिल्ली - 110002

द्वारा वर्ल्ड टेक्नोलॉजीज नई दिल्ली के सहयोग से प्रकाशित

प्रस्तावना

1757 में प्लासी के युद्ध के बाद ब्रिटिश भारत में राजनीतिक सत्ता जीत गए और यही वो समय था जब अंग्रेज भारत आए और करीब 200 साल तक राज किया। 1848 में लॉर्ड डलहौजी के कार्यकाल के दौरान यहां उनका शासन स्थापित हुआ। उत्तर-पश्चिमी भारत अंग्रेजों के निशाने पर सबसे पहले रहा और 1856 तक उन्होंने अपना मजबूत अधिकार स्थापित कर लिया। 19वीं सदी में अंग्रेजों ने अपने शासन में सबसे उंचाई को छुआ।

नाराज और असंतुष्ट स्थानीय शासकों, किसानों और बेरोजगार सैनिकों ने विद्रोह कर दिया जिसे आमतौर पर '1857 का विद्रोह' या '1857 के गदर' के तौर पर जाना जाता है।

एक साल में ही अंग्रेजों ने 1857 के विद्रोह पर काबू पा लिया था और इस समय ईस्ट इंडिया कंपनी का अंत हुआ और कई नई नीतियों के साथ ब्रिटिश सरकार का उदय हुआ। महारानी विक्टोरिया को भारत की साम्राज्ञी के तौर पर घोषित किया गया।

राजा राम मोहन राय, बंकिम चंद्र और ईश्वर चंद्र विद्यासागर जैसे सुधारक पटल पर उभरे और उन्होंने भारतीयों के हक की लड़ाई लड़ी। उनका प्रमुख लक्ष्य एकजुट होकर विदेशी शासन के खिलाफ लड़ना था।

अगस्त 1942 में गांधीजी ने व्यापक स्तर पर एक आंदोलन शुरू किया। इसका लक्ष्य ब्रिटिश शासन से पूरी तरह आजादी हासिल करना था और यह

‘करो या मरो’ की स्थिति के रूप में सामने आया। तोड़फोड़ और हिंसक घटनाओं की कई वारदातें सामने आईं। अंत में सुभाष चंद्र बोस ब्रिटिश हिरासत से भाग गए और इंडियन नेशनल आर्मी का गठन किया। अगस्त 1947 में भारत को शासकों, क्रांतिकारियों और उस समय के नागरिकों की कड़ी मेहनत, त्याग और निस्वार्थता के बाद स्वतंत्रता हासिल हुई।

पुस्तक लेखन में कई लिखित व अलिखित स्रोतों से मदद ली गई है; मैं उन सभी विज्ञ लेखकों के प्रति अपना आभार प्रकट करता हूँ। आशा करता हूँ कि पुस्तक पाठकों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी।

—लेखक

अनुक्रम

	प्रस्तावना	*v*
1.	**भारतीय स्वतंत्रता संग्राम**	**1**
	भारत की आजादी का इतिहास	1
	युद्ध का प्रारम्भ	50
	मेरठ और दिल्ली	52
	विद्रोह	56
	दिल्ली	57
	बिहार	60
2.	**फणीश्वर नाथ 'रेणु'**	**70**
	जीवनी	70
3.	**रबीन्द्रनाथ ठाकुर**	**74**
	जीवन परिचय	74
	रचनाधर्मिता	76
4.	**यशपाल**	**79**
	जीवनी	79
	अंग्रेजी राज और यशपाल जी	80
	पुरस्कार	86

	गिरफ्तारी	89
5.	**दयानन्द सरस्वती**	**92**
	प्रारम्भिक जीवन	93
	समाज सुधार के कार्य	96
	अंतिम शब्द	101
	गोकरुणानिधि	104
6.	**भारतेन्दु हरिश्चंद्र**	**106**
	अनुक्रम	107
	साहित्यिक परिचय	108
	प्रमुख कृतियाँ	109
	महत्त्वपूर्ण कार्य	114
7.	**कमलेश्वर**	**120**
	अनुक्रम	121
	संपादन	122
8.	**प्रेमचंद**	**124**
	पारिवारिक जीवन	125
	विवाह	126
	कथेतर साहित्य	136
	विचारधारा	138
	प्रेमचंद संबंधी रचनाएँ	139
	धार्मिक रुढ़ियाँ	143
9.	**प्रतापनारायण मिश्र**	**150**
	जीवनी	150
	बात	159
10.	**माखनलाल चतुर्वेदी**	**162**
	जीवनी	162
	प्रकाशित कृतियाँ	164
11.	**रामनरेश त्रिपाठी**	**165**
	जन्म एवं प्रारम्भिक शिक्षा	165
	कृतियाँ	170

रचनाएं 171
12. सुभद्रा कुमारी चौहान 175
जीवन परिचय 175
प्रकृति प्रेम 185
नारी समाज का विश्वास 186
कृतियाँ 189

1

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम

प्राचीन समय से ही विदेशी हमलावर हमेशा भारत आने को उत्सुक रहे हैं, फिर चाहे वो आर्य, फारसी, ईरानी, मुगल, चंगेज खान, मंगोलियाई या सिकंदर ही क्यों न हों। अपनी समृद्धि और खुशहाली के कारण भारत हमेशा से आक्रमणकारियों और शासकों की रुचि का कारण रहा।

भारत की आजादी का इतिहास

1757 में पलासी के युद्ध के बाद ब्रिटिश भारत में राजनीतिक सत्ता जीत गए और यही वो समय था जब अंग्रेज भारत आए और करीब 200 साल तक राज किया। 1848 में लॉर्ड डलहौजी के कार्यकाल के दौरान यहां उनका शासन स्थापित हुआ। उत्तर-पश्चिमी भारत अंग्रेजों के निशाने पर सबसे पहले रहा और 1856 तक उन्होंने अपना मजबूत अधिकार स्थापित कर लिया। 19वीं सदी में अंग्रेजों ने अपने शासन में सबसे उंचाई को छुआ।

नाराज और असंतुष्ट स्थानीय शासकों, किसानों और बेरोजगार सैनिकों ने विद्रोह कर दिया जिसे आमतौर पर '1857 का विद्रोह' या '1857 के गदर' के तौर पर जाना जाता है।

1857 का विद्रोह

यह गदर मेरठ में बेरोजगार सैनिकों के विद्रोह से 'ाुरू हुआ। उनकी बेरोजगारी का कारण वो नई कारतूस थी जो नई एनफील्ड राइफल में लगती थी।

इन कारतूसों में गाय और सूअर की चर्बी से बना ग्रीस था जिसे सैनिक को राइफल में इस्तेमाल करने की सूरत में मुंह से हटाना होता था। यह हिंदू और मुस्लिम दोनों ही धर्मों के सैनिकों को धार्मिक कारणों से मंजूर नहीं था और उन्होंने इसे इस्तेमाल करने से मना कर दिया था जिसके चलते वो बेरोजगार हो गए।

जल्दी ही यह विद्रोह फैल गया खासकर दिल्ली और उसके आसपास के राज्यों में, लेकिन यह विद्रोह असफल रहा और अंग्रेजों की सेना ने इसका जवाब लूट और हत्याएं करके दिया जिसके चलते लोग निराश हो गए। इस विद्रोह ने दिल्ली, अवध, रोहिलखंड, बुंदेलखंड, इलाहाबाद, आगरा, मेरठ और पश्चिमी बिहार को सबसे ज्यादा प्रभावित किया और यहां सबसे क्रूर लड़ाइयां लड़ी गईं। हालांकि तब भी 1857 का विद्रोह असफल कहलाया और एक साल के भीतर ही खत्म हो गया।

1857 के विद्रोह के बाद

एक साल में ही अंग्रेजों ने 1857 के विद्रोह पर काबू पा लिया था और इस समय ईस्ट इंडिया कंपनी का अंत हुआ और कई नई नीतियों के साथ ब्रिटिश सरकार का उदय हुआ। महारानी विक्टोरिया को भारत की साम्राज्ञी के तौर पर घोषित किया गया।

राजा राम मोहन राय, बंकिम चंद्र और ईश्वर चंद्र विद्यासागर जैसे सुधारक पटल पर उभरे और उन्होंने भारतीयों के हक की लड़ाई लड़ी। उनका प्रमुख लक्ष्य एकजुट होकर विदेशी शासन के खिलाफ लड़ना था।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस अस्तित्त्व में आई

1876 में सुरेन्द्र नाथ बैनर्जी ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना की। इसका मुख्य लक्ष्य मध्यमवर्गीय शिक्षित नागरिकों के विचारों को आगे रखना था। 1906 में कलकत्ता में कांग्रेस के अधिवेशन में 'स्वराज' की प्राप्ति की घोषणा की गई और इस तरह 'स्वदेशी आंदोलन' 'ाुरू हुआ।

1905 में पश्चिम बंगाल का विभाजन हुआ और देश की राजधानी कलकत्ता से बदलकर दिल्ली कर दी गई।

इसके साथ ही ब्रिटिश सरकार भी भारतीयों के प्रयासों के विरोध में तैयारी कर रही थी जिसके नतीजतन 1909 में कई सुधारों को लागू किया गया। इन्हें

मार्ले–मिंटो सुधारों के तौर पर जाना जाता है, जिनका लक्ष्य विकास करने की जगह हिंदू और मुस्लिमों में मतभेद पैदा करना था।

जहां एक ओर सुधारवादी और क्रांतिकारी योजनाएं बना रहे थे और काम कर रहे थे वहीं दूसरी ओर पंजाब में जलियांवाला बाग नरसंहार हुआ, जहां बैसाखी मनाने के लिए लोग इकट्ठे हुए थे।

स्वतंत्रता संग्राम में गांधीजी का योगदान

1914–1918 के प्रथम विश्व युद्ध के बाद महात्मा गांधी भारत लौटे और देश की हालत समझकर अहिंसक आंदोलन 'सत्याग्रह' के तौर पर शुरू किया।

असहयोग आंदोलन

ब्रिटिश सरकार द्वारा निष्पक्ष व्यवहार न होता देख 1920 में महात्मा गांधी ने असहयोग आंदोलन शुरू किया। यह आंदोलन 1922 तक चला और सफल रहा।

साइमन कमीशन

असहयोग आंदोलन के खत्म होने के तुरंत बाद भारत की सरकार में नया कमीशन बनाया गया जिसमें सुधारों में किसी भारतीय सदस्य को शामिल नहीं किया गया और 'स्वराज' की मांग को भी मानने का कोई इरादा नहीं था। लाला लाजपत राय के नेतृत्व में कई बड़े प्रदर्शन किए गए।

नागरिक अवज्ञा आंदोलन

दिसंबर 1929 में नागरिक अवज्ञा आंदोलन शुरू किया गया, जिसका लक्ष्य ब्रिटिश सरकार को पूरी तरह अनदेखा करना और अवज्ञा करना था। इस आंदोलन के दौरान ही भगत सिंह, सुखदेव और राजगुरु को गिरफ्तार कर फांसी दी गई।

भारत छोड़ो आंदोलन

अगस्त 1942 में गांधीजी ने इस आंदोलन को शुरू किया। इसका लक्ष्य ब्रिटिश शासन से पूरी तरह आजादी हासिल करना था और यह 'करो या मरो' की स्थिति के रूप में सामने आया। तोड़फोड़ और हिंसक घटनाओं की कई वारदातें सामने आईं। अंत में सुभाष चंद्र बोस ब्रिटिश हिरासत से भाग गए और

इंडियन नेशनल आर्मी का गठन किया। अगस्त 1947 में भारत को शासकों, क्रांतिकारियों और उस समय के नागरिकों की कड़ी मेहनत, त्याग और निस्वार्थता के बाद स्वतंत्रता हासिल हुई।

भारतीय स्वतंत्रता का क्रांतिकारी आन्दोलन

सेलुलर जेल की काल कोठरियाँ भी भारतीय क्रान्तिकारियों के मनोबल को नहीं तोड़ पायीं।,, भारत की स्वतंत्रता के लिये अंग्रेजों के विरुद्ध आन्दोलन दो प्रकार का था, एक अहिंसक आन्दोलन एवं दूसरा सशस्त्र क्रान्तिकारी आन्दोलन। भारत की आजादी के लिए 1857 से 1947 के बीच जितने भी प्रयत्न हुए, उनमें स्वतंत्रता का सपना संजोये क्रान्तिकारियों और शहीदों की उपस्थित सबसे अधिक प्रेरणादायी सिद्ध हुई। वस्तुतः भारतीय क्रांतिकारी आंदोलन भारतीय इतिहास का स्वर्ण युग है। भारत की धरती के जितनी भक्ति और मातृ-भावना उस युग में थी, उतनी कभी नहीं रही। मातृभूमि की सेवा और उसके लिए मर-मिटने की जो भावना उस समय थी, आज उसका नितांत अभाव हो गया है।

क्रांतिकारी आंदोलन का समय सामान्यतः लोगों ने सन् 1857 से 1942 तक माना है। श्रीकृष्ण सरल का मत है कि इसका समय सन् 1757 अर्थात् प्लासी के युद्ध से सन् 1961 अर्थात् गोवा मुक्ति तक मानना चाहिए। सन् 1961 में गोवा मुक्ति के साथ ही भारतवर्ष पूर्ण रूप से स्वाधीन हो सका है।

जिस प्रकार एक विशाल नदी अपने उद्गम स्थान से निकलकर अपने गंतव्य अर्थात् सागर मिलन तक अबाध रूप से बहती जाती है और बीच-बीच में उसमें अन्य छोटी-छोटी धाराएँ भी मिलती रहती हैं, उसी प्रकार हमारी मुक्ति गंगा का प्रवाह भी सन् 1757 से सन् 1961 तक अजस्र रहा है और उसमें मुक्ति यत्न की अन्य धाराएँ भी मिलती रही हैं। भारतीय स्वतंत्रता के सशस्त्र संग्राम की विशेषता यह रही है कि क्रांतिकारियों के मुक्ति प्रयास कभी शिथिल नहीं हुए।

भारत की स्वतंत्रता के बाद आधुनिक नेताओं ने भारत के सशस्त्र क्रान्तिकारी आन्दोलन को प्रायः दबाते हुए उसे इतिहास में कम महत्त्व दिया गया और कई स्थानों पर उसे विकृत भी किया गया। स्वराज्य उपरान्त यह सिद्ध करने की चेष्टा की गई कि हमें स्वतंत्रता केवल कांग्रेस के अहिंसात्मक आंदोलन के माध्यम से मिली है। इस नये विकृत इतिहास में स्वाधीनता के लिए प्राणोत्सर्ग

करने वाले, सर्वस्व समर्पित करने वाले असंख्य क्रांतिकारियों, अमर हुतात्माओं की पूर्ण रूप से उपेक्षा की गई। 1857 की क्रांति में वैसे तो लोधी समाज के 1500 से अधिक लोगों के शहीद होने की पुष्टि करता है इतिहास लेकिन समाज के पिछड़ेपन के कारण इतनी जानकारी सहेजी नहीं गईं उसका कारण इतिहास का ज्ञायान व जानकारी न होना है इतिहास को जागृत व सामाजिक आयामो में पहुँचे ऐसा प्रयास हमें करना होगा -----

1857 की क्रांति में शहीद हुए हमारे पूर्वजों को शत-शत नमन
अमर शहीद वीरागंना अवंती बाईं लोधी मण्डला मध्यप्रदेश
अमर शहीद मालती लोधी झांसी उत्तरप्रदेश
अमर शहीद सरस्वती लोधी ललितपुर उत्तरप्रदेश
अमर शहीद जनक सिंह लोधी भारत
अमर शहीद निर्भय सिंह लोधी दतिया मध्यप्रदेश
अमर शहीद सेनापति धुआराम लोधी शिवपुरी मध्यप्रदेश
अमर शहीद विक्रम सिंह लोधी शिवपुरी मध्यप्रदेश
हिण्डोल पति किशोर सिंह दमोह मध्यप्रदेश
रानी हिण्डोरिया दमोह मध्यप्रदेश
अमर शहीद राजा तेज सिंह हीरापुर भारत
अमर शहीद राजा ह्रदयेश शाह हीरापुर भारत
अमर शहीद दरयाब सिंह लोधी खागा फतेहपुर उत्तरप्रदेश
अमर शहीद राजा मेहरबान सिंह भारत
अमर शहीद गजराज सिंह लोधी हीरापुर भारत
अमर शहीद बहादुर सिंह मण्डला मध्यप्रदेश
अमर शहीद मतवाला मदन सिंह लोधी हैदराबाद आंधप्रदेश
अपराजेय योद्धा वीर रिखौला लोधी गढवाल अमरावती उत्तरप्रदेश
अमर शहीद चेतराम लोधी बालाघाट मध्यप्रदेश
अमर शहीद मातादीन लोधी दिल्ली
अमर शहीद किरण बाला लोधी भारत
अमर शहीद प्रभावत्ति लोधी कालपी भारत
काछुईं ग्राम ग्वालियर की 22 सतीयां काछुईं ग्राम ग्वालियर मध्यप्रदेश
अमर शहीद विद्वलता लोधी चित्तौड़ राजस्थान
अमर शहीद डालचंद लोधी फरूखाबाद उत्तरप्रदेश

अमर शहीद उमराव सिंह मण्डला मध्यप्रदेश
अमर शहीद जगत सिंह लोधी भारत
अमर शहीद बहादुर सिंह धरनगांव भारत
अमर शहीद अमर सिंह लोधी हैदराबाद आंधप्रदेश
अमर शहीद जग्गू लोधी विन्ध्य क्षेत्र भारत
दीवान अर्जुन सिहं पाटन मध्यप्रदेश
राव साहब पदम सिंह पाटन मध्यप्रदेश
अमर शहीद पर्वत बली सिंह शाहपुर मध्यप्रदेश
अमर शहीद जबर सिंह लोधी उज्जैन मध्यप्रदेश
अमर शहीद महीपत सिंह रणछोर बिहार
अमर शहीद जनक सिंह सागर मध्यप्रदेश
अमर शहीद प्रताप सिंह पाली सोना गुजरात
अमर शहीद रघुनाथ सिंह अलीगढं उत्तरप्रदेश
अमर शहीद बहादुर सिंह लोधी छतरपुर मध्यप्रदेश
अमर शहीद गुलाब सिंह लोधी दमोह मध्यप्रदेश
खुमान सिंह लोधी पाटन मध्यप्रदेश
जसवंत लोधी पाटन मध्यप्रदेश
अमर शहीद ठा गुलाब सिंह मानिक उत्तरप्रदेश
अमर शहीद रघुनाथ सिंह रूबईं उत्तरप्रदेश
अमर शहीद प्रताप सिंह गरोया उत्तरप्रदेश
अमर शहीद पंडित तेजसिंह तिवारी फिरोजाबाद उत्तर प्रदेश
अनुक्रम
भूमिका

भारत को मुक्त कराने के लिए सशस्त्र विद्रोह की एक अखण्ड परम्परा रही है। भारत में अंग्रेजी राज्य की स्थापना के साथ ही सशस्त्र विद्रोह का आरम्भ हो गया था। बंगाल में सैनिक-विद्रोह, चूआड़ विद्रोह, सन्यासी विद्रोह, संथाल विद्रोह अनेक सशस्त्र विद्रोहों की परिणति सत्तावन के विद्रोह के रूप में हुई। प्रथम स्वातन्त्र्यसंघर्ष के असफल हो जाने पर भी विद्रोह की अग्नि ठण्डी नहीं हुई। शीघ्र ही दस-पन्द्रह वर्षों के बाद पंजाब में कूका विद्रोह व महाराष्ट्र में वासुदेव बलवन्त फड़के के छापामार युद्ध शुरू हो गए। संयुक्त प्रान्त में पं. गेंदालाल दीक्षित ने शिवाजी समिति और मातृदेवी नामक संस्था की स्थापना की।

बंगाल में क्रान्ति की अग्नि सतत जलती रही। सरदार अजीतसिंह ने सत्तावन के स्वतंत्रता-आन्दोलन की पुनरावृत्ति के प्रयत्न शुरू कर दिए। रासबिहारी बोस और शचीन्द्रनाथ सान्याल ने बंगाल, बिहार, दिल्ली, राजपूताना, संयुक्त प्रान्त व पंजाब से लेकर पेशावर तक की सभी छावनियों में प्रवेश कर 1915 में पुनः विद्रोह की सारी तैयारी कर ली थी। दुर्देव से यह प्रयत्न भी असफल हो गया। इसके भी नए-नए क्रान्तिकारी उभरते रहे। राजा महेन्द्र प्रताप और उनके साथियों ने तो अफगान प्रदेश में अस्थायी व समान्तर सरकार स्थापित कर ली। सैन्य संगठन कर ब्रिटिश भारत से युद्ध भी किया। रासबिहारी बोस ने जापान में आजाद हिन्द फौज के लिए अनुकूल भूमिका बनाई।

महान क्रांतिकारी भगत सिंह, सुखदेव और राजगुरु

मलाया व सिंगापुर में आजाद हिन्द फौज संगठित हुई। सुभाषचन्द बोस ने इसी कार्य को आगे बढ़ाया। उन्होंने भारतभूमि पर अपना झण्डा गाड़ा। आजाद हिन्द फौज का भारत में भव्य स्वागत हुआ, उसने भारत की ब्रिटिश फौज की आँखें खोल दीं। भारतीयों का नाविक विद्रोह तो ब्रिटिश शासन पर अन्तिम प्रहार था। अंग्रेज, मुट्ठी-भर गोरे सैनिकों के बल पर नहीं, बल्कि भारतीयों की फौज के बल पर शासन कर रहे थे। आरम्भिक सशस्त्र विद्रोह में क्रान्तिकारियों को भारतीय जनता की सहानुभूति प्राप्त नहीं थी। वे अपने संगठन व कार्यक्रम गुप्त रखते थे। अंग्रेजी शासन द्वारा शोषित जनता में उनका प्रचार नहीं था। अंग्रेजों के क्रूर व अत्याचारपूर्ण अमानवीय व्यवहारों से ही उन्हें इनके विषय में जानकारी मिली। विशेषतः काकोरी काण्ड के अभियुक्त तथा भगतसिंह और उसके साथियों ने जनता का प्रेम व सहानुभूति अर्जित की। भगतसिंह ने अपना बलिदान क्रांति के उद्देश्य के प्रचार के लिए ही किया था। जनता में जागृति लाने का कार्य महात्मा गांधी के चुम्बकीय व्यक्तित्त्व ने किया। बंगाल की सुप्रसिद्ध क्रांतिकारी श्रीमती कमला दास गुप्ता ने कहा कि क्रांतिकारी की नीति थी 'कम व्यक्ति अधिकतम बलिदान', महात्मा गांधी की नीति थी 'अधिकतम व्यक्ति न्यूनतम बलिदान'। सन् 42 के बाद उन्होंने अधिकतम व्यक्ति तथा अधिकतम बलिदान का मंत्र दिया। भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति में क्रांतिकारियों की भूमिका महत्त्वपूर्ण है।

भारतीय क्रांतिकारियों के कार्य सिरफिरे युवकों के अनियोजित कार्य नहीं थे। भारतामाता के पैरों में बंधी शृंखला तोड़ने के लिए सतत संघर्ष करने वाले देशभक्तों की एक अखण्ड परम्परा थी। देश की रक्षा के लिए कर्तव्य समझकर

उन्होंने शस्त्र उठाए थे। क्रान्तिकारियों का उद्देश्य अंग्रेजों का रक्त बहाना नहीं था। वे तो अपने देश का सम्मान लौटाना चाहते थे। अनेक क्रान्तिकारियों के हृदय में क्रांति की ज्वाला थी, तो दूसरी ओर अध्यात्म का आकर्षण भी। हंसते हुए फाँसी के फंदे का चुम्बन करने वाले व मातृभूमि के लिए सरफरोशी की तमन्ना रखने वाले ये देशभक्त युवक भावुक ही नहीं, विचारवान भी थे। शोषणरहित समाजवादी प्रजातंत्र चाहते थे। उन्होंने देश के संविधान की रचना भी की थी। सम्भवतः देश को स्वतंत्रता यदि सशस्त्र क्रांति के द्वारा मिली होती तो भारत का विभाजन नहीं हुआ होता, क्योंकि सत्ता उन हाथों में न आई होती, जिनके कारण देश में अनेक भीषण समस्याएँ उत्पन्न हुई हैं।

जिन शहीदों के प्रयत्नों व त्याग से हमें स्वतंत्रता मिली, उन्हें उचित सम्मान नहीं मिला। अनेकों को स्वतंत्रता के बाद भी गुमनामी का अपमानजनक जीवन जीना पड़ा। ये शब्द उन्हीं पर लागू होते हैं–

उनकी तुरबत पर नहीं है एक भी दीया,
जिनके खूँ से जलते हैं ये चिरागे वतन।
जगमगा रहे हैं मकबरे उनके,
बेचा करते थे जो शहीदों के कफन।।

नाविक विद्रोह के सैनिकों को स्वतंत्र भारत की सेना में महत्त्वपूर्ण कार्य देना न्यायोचित होता, परन्तु नौकरशाहों ने उन्हें सेना में रखना शासकीय नियमों का उल्लंघन समझा। अनेक क्रांतिकारियों की अस्थियाँ विदेशों में हैं। अनेक क्रांतिकारियों के घर भग्नावशेष हैं। उनके घरों के स्थान पर आलीशान होटल बन गए हैं। क्रांतिकारियों की बची हुई पीढ़ी भी समाप्त हो गई है। निराशा में आशा की किरण यही है कि सामान्य जनता में उनके प्रति सम्मान की थोड़ी-बहुत भावना अभी भी शेष है। उस आगामी पीढ़ी तक इनकी गाथाएँ पहुँचाना हमारा दायित्व है। क्रान्तिकारियों पर लिखने के कुछ प्रयत्न हुए हैं। शचीन्द्रनाथ सान्याल, शिव वर्मा, मन्मथनाथ गुप्त व रामकृष्ण खत्री आदि ने पुस्तकें लिखकर हमें जानकारी देने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। इतर लेखकों ने भी इस दिशा में कार्य किया है।

परिचय

भारतीय स्वतंत्रता के लिये आरम्भ से ही समय-समय पर भारत के विभिन्न भागों में अंग्रेजों के विरुद्ध सशस्त्र विप्लव होते रहे।

1757 से अंग्रेजी राज द्वारा जारी लूट तथा भारतीय किसानों, मजदूरों, कारीगरों की बर्बादी, धार्मिक, सामाजिक भेदभाव ने जिस गति से जोर पकड़ा उसी गति से देश के विभिन्न हिस्सों में विद्रोह की चिंगारियाँ भी फूटने लगीं, जो 1857 में जंग-ए-आजादी के महासंग्राम के रूप में फूट पड़ी। 1757 के बाद शुरू हुआ संन्यासी विद्रोह (1763-1800), मिदनापुर विद्रोह (1766-1767), रगंपुर व जोरहट विद्रोह (1769-1799), चिटगाँव का चकमा आदिवासी विद्रोह (1776-1789), पहाड़िया सिरदार विद्रोह (1778), रंगपुर किसान विद्रोह (1783), रेशम कारीगर विद्रोह (1770-1800), वीरभूमि विद्रोह (1788-1789), मिदनापुर आदिवासी विद्रोह (1799), विजयानगरम विद्रोह (1794), केरल में कोट्टायम विद्रोह (1787-1800), त्रवणकोर का बेलूथम्बी विद्रोह (1808-1809), वैल्लोर सिपाही विद्रोह (1806), कारीगरों का विद्रोह (1795-1805), सिलहट विद्रोह (1787-1799), खासी विद्रोह (1788), भिवानी विद्रोह (1789), पलामू विद्रोह (1800-02), बुंदेलखण्ड में मुखियाओं का विद्रोह (1808-12), कटक पुरी विद्रोह (1817-18), खानदेश, धार व मालवा भील विद्रोह (1817-31,1846 व 1852), छोटा नागपुर, पलामू चाईबासा कोल विद्रोह (1820-37), बंगाल आर्मी बैरकपुर में पलाटून विद्रोह (1824), गूजर विद्रोह (1824), भिवानी हिसार व रोहतक विद्रोह (1824-26), काल्पी विद्रोह (1824), वहाबी आंदोलन (1830-61), 24 परगना में तीतू मीर आंदोलन (1831), मैसूर में किसान विद्रोह (1830-31), विशाखापट्टनम का किसान विद्रोह (1830-33), मुंडा विद्रोह (1834), कोल विद्रोह (1831-32) संबलपुर का गौड विद्रोह (1833), सूरत का नमक आंदोलन (1844), नागपुर विद्रोह (1848), नगा आंदोलन (1849-78), हजारा में सय्यद का विद्रोह (1853), गुजरात का भील विद्रोह (1809-28), संथाल विद्रोह (1855-56), तक सिलसिला जारी रहा। जिसके बीच में हैदर अली, टीपू सुल्तान व नाना फर्णनविस के भारत की आजादी के लिये संगठित प्रतिरोध ने अंग्रेजों के लिये भारी मुश्किले पैदा कर दीं।

प्लासी का युद्ध (सन् 1757)

प्लासी का युद्ध अंग्रेजों और बंगाल के शासक सिराजुद्दौला के बीच सन् 1757 में लड़ा गया था। यह युद्ध केवल आठ घण्टे चला और कुल तेईस सैनिक मारे गए। युद्ध में सिराजुद्दौला की ओर से मीर जाफर ने गद्दारी की और रॉबर्ट

क्लाइव ने उसका भरपूर लाभ उठाया। प्लासी-विजय के पश्चात् भारतवर्ष में ईस्ट इंडिया कंपनी के माध्यम से अंग्रेजी साम्राज्य की नींव पड़ गई।

बंगाल का प्रथम सैनिक विद्रोह (सन् 1764) नए फौजी नियमों के विरोध में थल सेना ने बगावत कर दी। मेजर मनरो ने ब्रिटिश सेना के बल पर घमासान युद्ध के पश्चात् विद्रोह को दबा दिया। जो विद्रोही जीवित हाथ लगे, उन्हें तोपों के मुँह से बाँधकर उड़ा दिया गया।

जंगल महाल विद्रोह (सन् 1767)

गद्दार मीर जाफर ने बंगाल के कुछ जिलों की जमींदारियाँ अंग्रेजों को दे दीं। इनमें से कुछ जिलों में अत्याचारों के विरोध में अंग्रेज विरोधी लहर उत्पन्न हो गई।

जंगल महाल के जमींदारों ने अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। मेजर फर्ग्यूसन को विद्रोहियों के साथ कई स्थानों पर युद्ध करना पड़ा। विद्रोही जमींदार जंगलों में छिप-छिपकर सशस्त्र प्रतिरोध करते रहे। झाड़ग्राम के जमींदार ने भी विद्रोह कर दिया। मेजर फर्ग्यूसन ने कड़े संघर्ष के पश्चात् झाड़ग्राम दुर्ग पर अधिकार कर लेने में सफलता प्राप्त की।

घाटशिला के जमींदार ने कड़ा संघर्ष किया। उसके चुआड़ सैनिकों ने अंग्रेजी सेना को भयंकर क्षति पहुँचाई। वीरभूम के जमींदार आसद खाँ ने अंग्रेजों से डटकर मुकाबला किया। मेजर यार्क ने उसपर विजय प्राप्त की। इस प्रकार मिदनापुर, वीरभूम और बर्दवान जिले कंपनी सरकार के अधीन हो गए।

संन्यासी एवं फकीर विद्रोह (सन् 1763 से 1773 तक)

बंगाल में संन्यासियों और फकीरों के अलग-अलग संगठन थे। पहले तो इन दोनों संगठनों ने मिलकर अंग्रेजों के साथ संघर्ष किया, लेकिन बाद में उन्होंने पृथक्-पृथक् रूप से विरोध किया। संन्यासियों में उल्लेखनीय नाम हैं—मोहन गिरि और भवानी पाठक तथा फकीरों के नेता के रूप में मजनूशाह का नाम प्रसिद्ध है। ये लोग पचास-पचास हजार सैनिकों के साथ अंग्रेजी सेना पर आक्रमण करते थे। अंग्रेजों की कई कोठियाँ इन लोगों ने छीन लीं और कई अंग्रेज अफसरों को मौत के घाट उतार दिया। अंततोगत्वा संन्यासी विद्रोह और फकीर विद्रोह-दोनों ही दबा दिए गए।

बंगाल का द्वितीय सैनिक विद्रोह (सन् 1795)

बंगाल की पंद्रहवीं बटालियन को आदेश मिला कि वह 'हमलक' के स्थान पर पहुँच जाए। बटालियन वहाँ पहुँच गई। वहाँ पर उस बटालियन को बताया गया कि उसे जहाज पर चढ़कर यूरोप जाना है। यूरोप में इस बटालियन को डच लोगों के साथ युद्ध करना था। भारतीय सैनकों ने जहाज पर चढ़ने से इनकार कर दिया। उनमें से कुछ को गोलियों से भून दिया गया और कुछ को तोपों के मुँह से बाँधकर उड़ा दिया गया।

वेल्लौर का सैनिक विद्रोह (सन् 1803)

वेल्लौर स्थित मद्रासी सेना ने भी अंग्रेजों के विरुद्र विद्रोह कर दिया। वह विद्रोह नंदी दुर्ग, सँकरी दुर्ग आदि स्थानों तक फैल गया। इसी विद्रोह के फलस्वरूप लॉर्ड विलियम वेंटिक को अपनी नौकरी से हाथ धोना पड़ा।

चुआड़ विद्रोह (सन् 1818 से 1820 तक)

चुआड़ बंगाल की एक वन्य जाति थी। चुआड़ विद्रोह इसी वन्य जाति का विद्रोह था। यह जाति जंगल महाल जिले के भिन्न-भिन्न परगनों में रहती थी। कई स्थानों पर चुआड़ वीरों ने अंग्रेजी शासन को उखाड़ फेंका। बाद में संगठित होकर अंग्रेजी सेना ने बड़ी निर्ममता से इस विद्रोह का दमन कर दिया। 'रानी शिरोमणि' नाम की एक महिला विद्रोही ने भी अच्छी वीरता का प्रदर्शन किया। बाद में वह बंदी बना ली गई।

नायक विद्रोह (सन् 1821)

इसी समय बगड़ी राज्य की नायक जाति ने भी अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध का बिगुल बजा दिया। अचलसिंह इस जाति का नेता था। गनगनी नामक स्थान पर अचल सिंह और अंग्रेज अफसर ओकेली की सेनाओं में घमासान युद्ध हुआ। दोनों ओर से बहुत जनहानि हुई। एक गद्दार के छल से अचलसिंह को गिरफ्तार कर लिया गया।

बैरकपुर का प्रथम सैनिक विद्रोह (सन् 1824)

यह नायक विद्रोह और बहावी विद्रोह के बीच की कड़ी है। बंगाल रेजीमेंट को आदेश मिला कि वह बैलों की पीठ पर बैठकर हुगली नदी पार करें।

रेजीमेंट ने यह आदेश मानने से इनकार कर दिया। सारे सैनिकों को निहत्था करके भून डाला गया।

बहावी विद्रोह (सन् 1824 से 1831 तक)

बहावी आंदोलन धार्मिक परिवेश में अंग्रेजी सत्ता के विरुद्ध एक विद्रोहात्मक प्रयास था। बहावियों का विश्वास था कि यदि हमने अंग्रेजी शासन को नहीं उखाड़ा तो वह हमको उखाड़ देगा। इस आंदोलन के नेता सैयद अहमद ने इसका समुचित प्रसार किया। इसके एक अन्य नेता का नाम तीतू मियाँ था।

कई लड़ाइयों में अंग्रेजी सेनाओं की पराजय हुई। आखिर यह आंदोलन दबा दिया गया।

गुजरात का महीकांत विद्रोह (सन् 1836)

वैसे तो पूरे गुजरात में अंग्रेजों के प्रति विद्रोह की हवा चल रही थी, पर महीकांत में यह विद्रोह भड़ककर तीव्र हो गया। इस विद्रोह का दृढ़ता के साथ दमन कर दिया गया।

धर राव विद्रोह (सन् 1841)

इस विद्रोह का सूत्रपात सतारा के महाराज छत्रपति प्रतापसिंह को राज्यच्युत करने के साथ हुआ। इस विद्रोह का संगठन धर राव पँवार ने किया। बदामी दुर्ग पर अधिकार कर लिया गया। अंग्रेजी सेना ने प्रत्याक्रमण करके दुर्ग को वापस ले लिया और विद्रोहियों को कड़े दंड दिए।

कोल्हापुर विद्रोह (सन् 1844)

अंग्रेजों ने दाजी कृष्ण पंडित नाम के एक नए कर्मचारी की राज्य में नियुक्ति करके उसके द्वारा दोनों राजकुमारों को कैद करने का षड्यंत्र रचा। प्रजा सजग हो गई और अंग्रेज अफसरों को ही कैद किया जाने लगा। कई किले अंग्रेजों से छीन लिए गए। अंग्रेजी खजाने लूट लिये गए। अंग्रेज रक्षक मार डाले गए। कर्नल ओवांस को कैद कर लिया गया। बड़ी मुश्किल से संगठित होकर अंग्रेजों ने विद्रोह का दमन किया।

संथाल विद्रोह (सन् 1854 से 1855 तक)

संथाल जाति बंगाल और बिहार में फैली हुई थी। ब्रिटिश शासन व्यवस्था और कर प्रणाली ने संथालों के जीवन को तहस-नहस कर दिया। हर वस्तु पर कर लगे थे, यहां तक कि जंगली उत्पादों पर भी। करों की वसूली बाहर के लोग करते थे, जिन्हें दिकू कहा जाता था। उनके द्वारा पुलिस प्रशासन के सहयोग से संथालों का शोषण किया जाता था। महिलाओं का बड़े पैमाने पर यौन शोषण भी किया गया था। भागलपुर वर्दवान रेल मार्ग के निर्माण में उन्हें जबरन बेगार करवाया गया। इसी समय पुलिस प्रशासन ने कुछ संथालों को चोरी के इलजाम में पकड़ लिया। इस घटना ने गुस्से को और भड़का दिया, और 30 जून 1855 को भागिनीडीह गाँव में 400 ग्रामों के हजारों संथाल जमा हुए और विद्रोह का बिगुल फूंक दिया गया। विद्रोह के उद्देश्य थे– दिकुओं का निष्कासन। विदेशी शोषक राज्य समाप्त कर धार्मिक राज्य की स्थापना। सिधो, कान्हो इस विद्रोह के नेता थे। क्षेत्र में मार्शल लॉ लागू कर दिया गया एवं हजारों संथालों को मार डाला गया और विद्रोह का दमन कर दिया गया। विद्रोह के कारण सरकर ने भागलपुर एवं वीरभूमि के संथाल बहुल क्षेत्रों को काटकर संथाल परगना जिला बनाया। इस क्षेत्र के लिए भू राजस्व की नई प्रणाली बनाई गयी एवं ग्राम प्रधानों के पूर्व के अधिकारों को बहाल किया गया।

सन् 1855 का सैनिक विद्रोह

यह सैनिक विद्रोह निजाम हैदराबाद की फौज की तृतीय घुड़सवार सेना ने किया था। इस विद्रोह को दबाने में ब्रिगेडियर मैकेंजी के शरीर पर दस घाव लगे। मुश्किल से उसकी जान बच पाई। बड़ी फौज भेजकर विद्रोह दबा दिया गया।

प्रथम स्वतंत्रता संग्राम (सन् 1857)

सीमित पृष्ठों में इतने बड़े स्वाधीनता संग्राम का विवरण देना संभव नहीं है 1857 की क्रांति में वैसे तो लोधी समाज के 1500 से अधिक लोगों के शहीद होने की पुष्टि करता है इतिहास लेकिन समाज के पिछड़ेपन के कारण इतनी जानकारी सहेजी नहीं गईं उसका कारण इतिहास का ज्ञान व जानकारी न होना है इतिहास को जागृत व सामाजिक आयामों में पहुँचे ऐसा प्रयास हमें करना होगा -----

1857 की क्रांति में शहीद हुए हमारे पूर्वजों को शत शत नमन
अमर शहीद वीरागंना अवंती बाईं लोधी मण्डला मध्यप्रदेश
अमर शहीद मालती लोधी झांसी उत्तरप्रदेश
अमर शहीद सरस्वती लोधी ललितपुर उत्तरप्रदेश
अमर शहीद जनक सिंह लोधी भारत
अमर शहीद निर्भय सिंह लोधी दतिया मध्यप्रदेश
अमर शहीद सेनापति धुआराम लोधी शिवपुरी मध्यप्रदेश
अमर शहीद विक्रम सिंह लोधी शिवपुरी मध्यप्रदेश
हिण्डोल पति किशोर सिंह दमोह मध्यप्रदेश
रानी हिण्डोरिया दमोह मध्यप्रदेश
अमर शहीद राजा तेज सिंह हीरापुर भारत
अमर शहीद राजा हृदयेश शाह हीरापुर भारत
अमर शहीद दरयाब सिंह लोधी खागा फतेहपुर उत्तरप्रदेश
अमर शहीद राजा मेहरबान सिंह भारत
अमर शहीद गजराज सिंह लोधी हीरापुर भारत
अमर शहीद बहादुर सिंह मण्डला मध्यप्रदेश
अमर शहीद मतवाला मदन सिंह लोधी हैदराबाद आंधप्रदेश
अपराजेय योद्धा वीर रिखौला लोधी गढ़वाल अमरावती उत्तरप्रदेश
अमर शहीद चेतराम लोधी बालाघाट मध्यप्रदेश
अमर शहीद मातादीन लोधी दिल्ली
अमर शहीद किरण बाला लोधी भारत
अमर शहीद प्रभावती लोधी कालपी भारत
काछुई ग्राम ग्वालियर की 22 सतीयां काछुई ग्राम ग्वालियर मध्यप्रदेश
अमर शहीद विद्वलता लोधी चित्तोड़ राजस्थान
अमर शहीद डालचंद लोधी फरूखाबाद उत्तरप्रदेश
अमर शहीद उमराव सिंह मण्डला मध्यप्रदेश
अमर शहीद जगत सिंह लोधी भारत
अमर शहीद बहादुर सिंह धरनगांव भारत
अमर शहीद अमर सिंह लोधी हैदराबाद आंधप्रदेश
अमर शहीद जग्गू लोधी विन्ध्य क्षेत्र भारत
दीवान अर्जुन सिहं पाटन मध्यप्रदेश

राव साहब पदम सिंह पाटन मध्यप्रदेश
अमर शहीद पर्वतबली सिंह शाहपुर मध्यप्रदेश
अमर शहीद जबर सिंह लोधी उज्जैन मध्यप्रदेश
अमर शहीद महीपत सिंह रणछोर बिहार
अमर शहीद जनक सिंह सागर मध्यप्रदेश
अमर शहीद प्रताप सिंह पाली सोना गुजरात
अमर शहीद रघुनाथ सिंह अलीगढ़ उत्तरप्रदेश
अमर शहीद बहादुर सिंह लोधी छतरपुर मध्यप्रदेश
अमर शहीद गुलाब सिंह लोधी दमोह मध्यप्रदेश
खुमान सिंह लोधी पाटन मध्यप्रदेश
जसवंत लोधी पाटन मध्यप्रदेश
अमर शहीद ठा. गुलाब सिंह मानिक उत्तरप्रदेश
अमर शहीद रघुनाथ सिंह रूबई उत्तरप्रदेश
अमर शहीद प्रताप सिंह गरोया उत्तरप्रदेश

नील विद्रोह (सन् 1850 से 1860 तक)बंगाल और बिहार में नील की खेती की जाती थी। नील की खेती से अंग्रेज बनिये खूब धन कमाते थे और वे संथाल मजदूरों का भरपूर शोषण करते थे। आखिरकार संथाल मजदूरों और कृषकों ने विद्रोह कर दिया। अंग्रेजों की कई कोठियाँ जल गईं और कई अंग्रेज मार डाले गए। विद्रोह दबा दिया गया, लेकिन मजदूरों का शोषण बंद हो गया।

कूका विद्रोह (सन् 1872)

कूके लोग सिखों के नामधारी संप्रदाय के लोग थे। इन लोगों के सशस्त्र विद्रोह को 'कूका विद्रोह' के नाम से पुकारा जाता है। गुरु रामसिंहजी के नेतृत्व में कूका विद्रोह हुआ। कूके लोगों ने पूरे पंजाब को बाईस जिलों में बाँटकर अपनी समानांतर सरकार बना डाली। कूके वीरों की संख्या सात लाख से ऊपर थी। अधूरी तैयारी में ही विद्रोह भड़क उठा और इसी कारण वह दबा दिया गया।

वासुदेव बलवंत फड़के के मुक्ति प्रयास (सन् 1875 से 1879)

वासुदेव बलवंत फड़के का क्षेत्र महाराष्ट्र था। उसने रामोशी, नाइक, धनगर और भील जातियों को संगठित करके उनकी एक सुसज्जित सेना बना डाली। अंग्रेजी सेना के विरुद्ध उसने कई सफल लड़ाइयाँ लड़ीं। ब्रिटिश शासन के लिए

वह आतंक बन गया। किसी देशद्रोही ने उसे सोते में गिरफ्तार करा दिया। उसे आजीवन कारावास का दंड देकर अदन की जेल में बंद कर दिया गया। वहीं उसका प्राणांत हुआ। वासुदेव बलवंत फड़के के साथ ही आमने-सामने के और छापामार युद्धों का युग समाप्त हो गया।

चाफेकर संघ (सन् 1897 के आसपास)

महाराष्ट्र के पूना नगर में दामोदर हरि चाफेकर, बालकृष्ण हरि चाफेकर और वासुदेव हरि चाफेकर नाम के तीन सगे भाइयों ने एक संघ की स्थापना की और युवकों को अर्द्ध-सैनिक प्रशिक्षण देकर ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध उन्हें तैयार किया। इन लोगों को लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक का संरक्षण प्राप्त था। 22 जून 1897 को उन्होंने पूना के अत्याचारी प्लेग कमिश्नर मि. रैंड और एक पुलिस अधिकारी मि. आयरिस्ट को गोलियों से भून डाला। इस कांड में दोनों चाफेकर बंधुओं को फाँसी का दंड मिला। सबसे छोटे भाई वासुदेव हरि चाफेकर को भी मुखबिर की हत्या के अपराध में फाँसी का दंड मिला।

बंग-भंग आंदोलन (सन् 1905)

बंगाल में स्वदेशी आंदोलन पहले से ही चल रहा था। इसके अंतर्गत विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार करके स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग को प्रोत्साहित किया जा रहा था। इसी बीच भारत के वाइसराय लॉर्ड कर्जन ने बंगाल प्रांत के विभाजन की घोषणा कर दी। इस घोषणा से सारा बंगाल भड़क उठा और गोपनीय क्रांतिकारी समितियाँ सक्रिय हो उठीं। अत्याचारी अंग्रेजों के विरुद्ध बमों और पिस्तौलों का उपयोग होने लगा। यह आंनदोलन केवल बंगाल तक सीमित न रहकर समस्त भारत की आजादी का आंदोलन बन गया।

यूरोप में भारतीय क्रांतिकारियों के मुक्ति प्रयास (सन् 1905 के आसपास)

भारत के प्रसिद्ध क्रांतिकारी और संस्कृत के प्रकांड विद्वान् श्यामजी कृष्ण वर्मा ने लंदन 'इंडिया हाउस' की स्थापना करके उसे भारतीय क्रांतिकारियों का केंद्र बना दिया। उनके सहयोगी थे विनायक दामोदर सावरकर, जो बाद में 'वीर सावरकर' के नाम से प्रसिद्ध हुए। इन्हीं के एक नौजवान साथी मदनलाल धींगरा ने एक अत्याचारी अंग्रेज अफसर को लंदन में गोली मारकर फाँसी का दंड प्राप्त

किया। उस समय लंदन में कई भारतीय क्रांतिकारी सक्रिय थे, जिनमें लाला हरदयाल का नाम प्रमुख है।

फ्रांस में भी भारतीय क्रांतिकारी सक्रिय हो उठे। वहाँ मदाम कामा और सरदारसिंह राणा ने अच्छा-खासा क्रांतिकारी संगठन खड़ा कर डाला। जर्मनी में भी 'बर्लिन कमेटी' नाम से भारतीय क्रांतिकारियों का एक संगठन कार्य करने लगा।

अमेरिका तथा कनाडा में गदर पार्टी (प्रथम विश्वयुद्ध के आगे-पीछे)

अमेरिका और कनाडा पहुँचनेवाले प्रवासी भारतीयों ने सन् 1907 में 'हिंदुस्तान एसोसिएशन' नाम की एक संस्था स्थापित की। सन् 1913 में कनाडा के सान फ्रांसिस्को नगर में 'गदर पार्टी' नाम की एक महत्त्पूर्ण संस्था स्थापित की गई। इस संस्था का मुखपत्र 'गदर' दुनिया के कई देशों में निःशुल्क भेजा जाता था। गदर पार्टी के संस्थापकों में लाला हरदयाल, सोहनसिंह भकना, भाई परमानंद, पं. परमानंद, करतारसिंह सराबा और बाबा पृथ्वीसिंह आजाद प्रमुख थे। इस पार्टी के हजारों सदस्य भारत को आजाद कराने के लिए जहाजों द्वारा भारत पहुँचे। ये लोग पूरे पंजाब में फैल गए और अंग्रेजी साम्राज्य के विरुद्ध गोपनीय कार्य करने लगे। गद्दारी के दुष्परिणाम से यह आंदोलन भी दबा दिया गया। सैकड़ों लोग गोलियों से भून दिए गए और सैकड़ों को फाँसी पर लटका दिया गया।

रासबिहारी बोस की क्रांति चेष्टा

जब गोपनीय क्रांति समितियों द्वारा भारत की आजादी के प्रयास सफल नहीं हुए तो कुछ क्रांतिकारियों का ध्यान इस ओर गया कि सेना के बिना स्वाधीनता प्राप्त करना संभव नहीं है। सेना का निर्माण संभव नहीं था। इस बात का प्रयत्न किया गया कि अंग्रेजों के अधीन भारतीय सेनाओं को विप्लव के लिए भड़काया जाए और आजादी की दिशा में प्रयत्न किए जाएँ। महान क्रांतिकारी रासबिहारी बोस इस योजना के सूत्रधार थे। इस कार्य के लिए सेनाओं को तैयार कर लिया गया, लेकिन कृपालसिंह नाम के एक गद्दार ने भेद देकर सारी योजना पर पानी फेर दिया। कई क्रांतिकारियों को फाँसी का उपहार मिला।

हिंदुस्तान प्रजातंत्र संघ' (सन् 1915 के आसपास)

रासबिहारी बोस के लेफ्टीनेंट शचींद्रनाथ सान्याल ने समस्त उत्तर भारत में एक सशक्त क्रांति संगठन खड़ा कर दिया। इस संगठन की सेना के विभागाध्यक्ष रामप्रसाद बिस्मिल थे। इस संघ ने कई महत्त्पूर्ण कार्य किए, लेकिन ब्रिटिश साम्राज्य ने इसके कार्य को विफल कर दिया।

सशस्त्र क्रांति का प्रगतिशील युग

इस युग को 'भगतसिंह–चन्द्रशेखर आजाद युग' के नाम से जाना जाता है। भगतसिंह क्रांतिपथ के मील के पत्थर की भाँति थे। इन लोगों ने 'हिंदुस्तान प्रजातंत्र संघ' का नाम बदलकर 'हिंदुस्तान समाजवादी प्रजातंत्र संघ' कर दिया। इनके प्रगतिशील कार्य थे–

(1) अखिल भारतीय स्तर पर क्रांति संगठन खड़ा करना,
(2) क्रांति संगठन को धर्मनिरपेक्ष स्वरूप प्रदान करना,
(3) समाजवादी समाज की स्थापना का संकल्प करना,
(4) क्रांतिकारी आंदोलन को जन आंदोलन का स्वरूप प्रदान करना,
(5) महिला वर्ग को क्रांति संगठन में प्रमुख स्थान प्रदान करना।

इस युग में भारत की आजादी के लिए जो प्रयत्न किए गए, वे अहिंसात्मक आंदोलनकारियों और क्रांतिकारियों द्वारा मिलजुलकर किए गए। इस आंदोलन के दो प्रमुख चरण थे–

अगस्त क्रांति (सन् 1942 का 'भारत छोड़ो आंदोलन')

सन् 1942 में व्यापक जनक्रांति फूट पड़ी। ब्रिटिश शासन ने 9 अगस्त सन् 1942 को महात्मा गाँधी और सभी प्रमुख नेताओं को गिरफ्तार करके जेलों में डाल दिया। गाँधी जी द्वारा 'करो या मरो' का नारा दिया जा चुका था। नेताविहीन आंदोलनकारियों की समझ में जो आया, वही उन्होंने किया। सशस्त्र क्रांति के समर्थक, जो 'सत्याग्रह आंदोलन' में विश्वास नहीं रखते थे, वे भी इस आंदोलन में कूद पड़े और तोड़–फोड़ का कार्य करने लगे। संचार व्यवस्था भंग करने के लिए तार काट दिए गए और सेना का आवागमन रोकने के लिए रेल की पटरियाँ उखाड़ी जाने लगीं। ब्रिटिश शासन ने निर्ममतापूर्वक इस आंदोलन को कुचल डाला। हजारों लोग गोलियों के शिकार हुए।

दक्षिण-पूर्व एशिया में आजाद हिंद आंदोलन

द्वितीय विश्वयुद्ध के दिनों से ही भारत के क्रांतिकारी नेता सुभाषचंद्र बोस अपनी योजना के अनुसार ब्रिटिश जासूसों की आँखों में धूल झोंककर अफगानिस्तान होते हुए जर्मनी जा पहुँचे। जब विश्वयुद्ध दक्षिण-पूर्व एशिया में उग्र हो उठा और अंग्रेज जापानियों से हारने लगे, तो सुभाषचंद्र बोस जर्मनी से जापान होते हुए सिंगापुर पहुँच गए तथा आजाद हिंद आंदोलन के सारे सूत्र अपने हाथ में ले लिये। उन्हें 'नेताजी' के संबोधन से पुकारा जाने लगा। आजादहिंद आंदोलन के प्रमुख अंग थे– आजाद हिंद संघ, आजाद हिंद सरकार, आजाद हिंद फौज, रानी झाँसी रेजीमेंट, बाल सेना, आजाद हिंद बैंक और आजाद हिंद रेडियो।

आजाद हिंद फौज ने कई लड़ाइयों में अंग्रेजी सेनाओं को परास्त किया तथा मणिपुर एवं कोहिमा क्षेत्रों तक पहुँचने और भारतभूमि पर तिरंगा झंडा फहराने में सफलता प्राप्त की।

अमेरिका द्वारा जापान के हिरोशिमा एवं नागासाकी नगरों पर परमाणु बम छोड़ देने और भारी तबाही के कारण जापान ने हथियार डाल दिए। स्वाभाविक ही था कि नेताजी सुभाष द्वारा भारत की आजादी के लिए किए जा रहे प्रयत्नों का पटाक्षेप हो गया। आजाद हिंद फौज के बड़े-बड़े अफसरों को गिरफ्तार करके भारत लाया गया और उन पर मुकदमे चलाए गए। नेताजी सुभाष के विषय में सुना गया कि मोरचा बदलने के क्रम में विमान दुर्घटनाग्रस्त होने के कारण 18 अगस्त 1945 को फारमोसा द्वीप के ताइहोकू स्थान पर उनकी मृत्यु हो गई।

नौसैनिक विद्रोह (सन् 1946)

जलसेना विद्रोह (मुम्बई)।

गोवा मुक्ति संघर्ष,

दादरा तथा नगर हवेली मुक्ति संग्राम,

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के प्रमुख संगठन और आन्दोलन,

भारतीय स्वतंत्रता का प्रथम संग्राम,

चौरीचौरा काण्ड,

भारत छोड़ो आन्दोलन,

आजाद हिन्द फौज,

गदर पार्टी,

काकोरी कांड,

अनुशीलन समिति,
युगान्तर,
जलसेना विद्रोह (मुम्बई),
बंगभंग आन्दोलन,
दिल्ली-लाहौर षड्यन्त्र,
हिन्दू-जर्मन षड्यन्त्र,
बर्लिन कमीटी,
होमरूल आन्दोलन,
हिन्दुस्थान रिपब्लिकन एसोशिएशन,
चुआड़ आन्दोलन,

1857 का प्रथम भारतीय स्वतंत्रता संग्राम

1857 का भारतीय विद्रोह, जिसे प्रथम भारतीय स्वतंत्रता संग्राम और भारतीय विद्रोह के नाम से भी जाना जाता है इतिहास की पुस्तकें कहती हैं कि 1857 की क्रान्ति की शुरुआत '10 मई 1857' की संध्या को मेरठ में हुई थी और इसको समस्त भारतवासी 10 मई को प्रत्येक वर्ष "क्रान्ति दिवस" के रूप में मनाते हैं, क्रान्ति की शुरुआत करने का श्रेय अमर शहीद कोतवाल धनसिंह गुर्जर को जाता है, मेरठ से निकली इसी चिंगारी की आग दादरी होते हुए बुलंदशहर तक पहुँची और अंग्रेजी शासन के खिलाप विकराल रूप धारण करती गई।

10 मई 1857 को मेरठ में विद्रोही सैनिकों और पुलिस फोर्स ने अंग्रेजों के विरुद्ध साझा मोर्चा गठित कर क्रान्तिकारी घटनाओं को अंजाम दिया।1 सैनिकों के विद्रोह की खबर फैलते ही मेरठ की शहरी जनता और आसपास के गांव विशेषकर पांचली, घाट, नंगला, गगोल इत्यादि के हजारों ग्रामीण मेरठ की सदर कोतवाली क्षेत्र में जमा हो गए। इसी कोतवाली में धन सिंह कोतवाल (प्रभारी) के पद पर कार्यरत थे। मेरठ की पुलिस बागी हो चुकी थी। धन सिंह कोतवाल क्रान्तिकारी भीड़ (सैनिक, मेरठ के शहरी, पुलिस और किसान) में एक प्राकृतिक नेता के रूप में उभरे। उनका आकर्षक व्यक्तित्त्व, उनका स्थानीय होना, (वह मेरठ के निकट स्थित गांव पांचली के रहने वाले थे), पुलिस में उच्च पद पर होना और स्थानीय क्रान्तिकारियों का उनको विश्वास प्राप्त होना कुछ ऐसे कारक थे जिन्होंने धन सिंह को 10 मई 1857 के दिन मेरठ की

क्रान्तिकारी जनता के नेता के रूप में उभरने में मदद की। उन्होंने क्रान्तिकारी भीड़ का नेतृत्व किया और रात दो बजे मेरठ जेल पर हमला कर दिया। जेल तोड़कर 836 कैदियों को छुड़ा लिया और जेल में आग लगा दी। जेल से छुड़ाए कैदी भी क्रान्ति में शामिल हो गए। उससे पहले पुलिस फोर्स के नेतृत्व में क्रान्तिकारी भीड़ ने पूरे सदर बाजार और कैंट क्षेत्र में क्रान्तिकारी घटनाओं को अंजाम दिया। रात में ही विद्रोही सैनिक दिल्ली कूच कर गए और विद्रोह मेरठ के देहात में फैल गया। मंगल पाण्डे 8 अप्रैल, 1857 को बैरकपुर, बंगाल में शहीद हो गए थे। मंगल पाण्डे ने चर्बी वाले कारतूसों के विरोध में अपने एक अफसर को 29 मार्च, 1857 को बैरकपुर छावनी, बंगाल में गोली से उड़ा दिया था। जिसके पश्चात उन्हें गिरफ्तार कर बैरकपुर (बंगाल) में 8 अप्रैल को फांसी दे दी गई थी। 10 मई, 1857 को मेरठ में हुए जनक्रान्ति के विस्फोट से उनका कोई सम्बन्ध नहीं है।

क्रान्ति के दमन के पश्चात् ब्रिटिश सरकार ने 10 मई, 1857 को मेरठ में हुई क्रान्तिकारी घटनाओं में पुलिस की भूमिका की जांच के लिए मेजर विलियम्स की अध्यक्षता में एक कमेटी गठित की गई। मेजर विलियम्स ने उस दिन की घटनाओं का भिन्न-भिन्न गवाहियों के आधार पर गहन विवेचन किया तथा इस सम्बन्ध में एक स्मरण-पत्र तैयार किया, जिसके अनुसार उन्होंने मेरठ में जनता की क्रान्तिकारी गतिविधियों के विस्फोट के लिए धन सिंह कोतवाल को मुख्य रूप से दोषी ठहराया, उसका मानना था कि यदि धन सिंह कोतवाल ने अपने कर्तव्य का निर्वाह ठीक प्रकार से किया होता तो संभवत: मेरठ में जनता को भड़कने से रोका जा सकता था। धन सिंह कोतवाल को पुलिस नियंत्रण के छिन्न-भिन्न हो जाने के लिए दोषी पाया गया। क्रान्तिकारी घटनाओं से दमित लोगों ने अपनी गवाहियों में सीधे आरोप लगाते हुए कहा कि धन सिंह कोतवाल क्योंकि स्वयं गूजर है इसलिए उसने क्रान्तिकारियों, जिनमें गूजर बहुसंख्या में थे, को नहीं रोका। उन्होंने धन सिंह पर क्रान्तिकारियों को खुला संरक्षण देने का आरोप भी लगाया। एक गवाही के अनुसार क्रान्तिकरियों ने कहा कि धन सिंह कोतवाल ने उन्हें स्वयं आसपास के गांव से बुलाया है

यदि मेजर विलियम्स द्वारा ली गई गवाहियों का स्वयं विवेचन किया जाये तो पता चलता है कि 10 मई, 1857 को मेरठ में क्रांति का विस्फोट कोई स्वत: विस्फोट नहीं वरन् एक पूर्व योजना के तहत एक निश्चित कार्यवाही थी, जो परिस्थितिवश समय पूर्व ही घटित हो गई। नवम्बर 1858 में मेरठ के कमिश्नर

एफ0 विलियम द्वारा इसी सिलसिले से एक रिपोर्ट नोर्थ –वैस्टर्न प्रान्त (आधुनिक उत्तर प्रदेश) सरकार के सचिव को भेजी गई। रिपोर्ट के अनुसार मेरठ की सैनिक छावनी में "चर्बी वाले कारतूस और हड्डियों के चूर्ण वाले आटे की बात" बड़ी सावधानी पूर्वक फैलाई गई थी। रिपोर्ट में अयोध्या से आये एक साधु की संदिग्ध भूमिका की ओर भी इशारा किया गया था। विद्रोही सैनिक, मेरठ शहर की पुलिस, तथा जनता और आसपास के गांव के ग्रामीण इस साधु के सम्पर्क में थे। मेरठ के आर्य समाजी, इतिहासज्ञ एवं स्वतन्त्रता सेनानी आचार्य दीपांकर के अनुसार यह साधु स्वयं दयानन्द जी थे और वही मेरठ में 10 मई, 1857 की घटनाओं के सूत्रधार थे। मेजर विलियम्स को दो गयी गवाही के अनुसार कोतवाल स्वयं इस साधु से उसके सूरजकुण्ड स्थित ठिकाने पर मिले थे। हो सकता है ऊपरी तौर पर यह कोतवाल की सरकारी भेंट हो, परन्तु दोनों के आपस में सम्पर्क होने की बात से इंकार नहीं किया जा सकता। वास्तव में कोतवाल सहित पूरी पुलिस फोर्स इस योजना में साधु (सम्भवतः स्वामी दयानन्द) के साथ देशव्यापी क्रान्तिकारी योजना में शामिल हो चुकी थी। 10 मई को जैसा कि इस रिपोर्ट में बताया गया कि सभी सैनिकों ने एक साथ मेरठ में सभी स्थानों पर विद्रोह कर दिया। ठीक उसी समय सदर बाजार की भीड़, जो पहले से ही हथियारों से लैस होकर इस घटना के लिए तैयार थी, ने भी अपनी क्रान्तिकारी गतिविधियां शुरू कर दीं। धन सिंह कोतवाल ने योजना के अनुसार बड़ी चतुराई से ब्रिटिश सरकार के प्रति वफादार पुलिस कर्मियों को कोतवाली के भीतर चले जाने और वहीं रहने का आदेश दिया। आदेश का पालन करते हुए अंग्रेजों के वफादार पिट्ठू पुलिसकर्मी क्रान्ति के दौरान कोतवाली में ही बैठे रहे। इस प्रकार अंग्रेजों के वफादारों की तरफ से क्रान्तिकारियों को रोकने का प्रयास नहीं हो सका, दूसरी तरफ उसने क्रान्तिकारी योजना से सहमत सिपाहियों को क्रान्ति में अग्रणी भूमिका निभाने का गुप्त आदेश दिया, फलस्वरूप उस दिन कई जगह पुलिस वालों को क्रान्तिकारियों की भीड़ का नेतृत्व करते देखा गया। धन सिंह कोतवाल अपने गांव पांचली और आसपास के क्रान्तिकारी गूजर बाहुल्य गांव घाट, नंगला, गगोल आदि की जनता के सम्पर्क में थे, धन सिंह कोतवाल का संदेश मिलते ही हजारों की संख्या में गूजर क्रान्तिकारी रात में मेरठ पहुँच गये। मेरठ के आसपास के गांवों में प्रचलित किवंदन्ती के अनुसार इस क्रान्तिकारी भीड़ ने धन सिंह कोतवाल के नेतृत्व में देर रात दो बजे जेल तोड़कर 836 कैदियों को छुड़ा लिया और जेल को आग

लगा दी। मेरठ शहर और कैंट में जो कुछ भी अंग्रेजों से सम्बन्धित था उसे यह क्रान्तिकारियों की भीड़ पहले ही नष्ट कर चुकी थी।

उपरोक्त वर्णन और विवेचना के आधार पर हम नि:सन्देह कह सकते हैं कि धन सिंह कोतवाल ने 10 मई, 1857 के दिन मेरठ में मुख्य भूमिका का निर्वाह करते हुए क्रान्तिकारियों को नेतृत्व प्रदान किया था। 1857 की क्रान्ति की औपनिवेशिक व्याख्या, (ब्रिटिश साम्राज्यवादी इतिहासकारों की व्याख्या), के अनुसार 1857 का गदर मात्र एक सैनिक विद्रोह था जिसका कारण मात्र सैनिक असंतोष था। इन इतिहासकारों का मानना है कि सैनिक विद्रोहियों को कहीं भी जनप्रिय समर्थन प्राप्त नहीं था। ऐसा कहकर वह यह जताना चाहते हैं कि ब्रिटिश शासन निर्दोष था और आम जनता उससे सन्तुष्ट थी। अंग्रेज इतिहासकारों, जिनमें जौन लोरेंस और सीले प्रमुख हैं ने भी 1857 के गदर को मात्र एक सैनिक विद्रोह माना है, इनका निष्कर्ष है कि 1857 के विद्रोह को कहीं भी जनप्रिय समर्थन प्राप्त नहीं था, इसलिए इसे स्वतन्त्रता संग्राम नहीं कहा जा सकता। राष्ट्रवादी इतिहासकार वी. डी. सावरकर और सब-आल्टरन इतिहासकार रंजीत गुहा ने 1857 की क्रान्ति की साम्राज्यवादी व्याख्या का खंडन करते हुए उन क्रान्तिकारी घटनाओं का वर्णन किया है, जिनमें कि जनता ने क्रान्ति में व्यापक स्तर पर भाग लिया था, इन घटनाओं का वर्णन मेरठ में जनता की सहभागिता से ही शुरू हो जाता है। समस्त पश्चिम उत्तर प्रदेश के बन्जारों, रांघड़ों और गूजर किसानों ने 1857 की क्रान्ति में व्यापक स्तर पर भाग लिया। पूर्वी उत्तर प्रदेश में ताल्लुकदारों ने अग्रणी भूमिका निभाई। बुनकरों और कारीगरों ने अनेक स्थानों पर क्रान्ति में भाग लिया। 1857 की क्रान्ति के व्यापक आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक कारण थे और विद्रोही जनता के हर वर्ग से आये थे, ऐसा अब आधुनिक इतिहासकार सिद्ध कर चुके हैं। अत: 1857 का गदर मात्र एक सैनिक विद्रोह नहीं वरन् जनसहभागिता से पूर्ण एक राष्ट्रीय स्वतन्त्रता संग्राम था। परन्तु 1857 में जनसहभागिता की शुरुआत कहाँ और किसके नेतृत्व में हुई ? इस जनसहभागिता की शुरुआत के स्थान और इसमें सहभागिता प्रदर्शित वाले लोगों को ही 1857 की क्रान्ति का जनक कहा जा सकता है। क्योंकि 1857 की क्रान्ति में जनता की सहभागिता की शुरुआत धन सिंह कोतवाल के नेतृत्व में मेरठ की जनता ने की थी। अत: ये ही 1857 की क्रान्ति के जनक कहे जाते हैं।

10, मई 1857 को मेरठ में जो महत्त्वपूर्ण भूमिका धन सिंह और उनके अपने ग्राम पांचली के भाई बन्धुओं ने निभाई उसकी पृष्ठभूमि में अंग्रेजों के जुल्म की दास्तान छुपी हुई है। ब्रिटिश साम्राज्य की औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था की कृषि नीति का मुख्य उद्देश्य सिर्फ अधिक से अधिक लगान वसूलना था। पश्चिमी उत्तर प्रदेश में अंग्रेजों ने महलवाड़ी व्यवस्था लागू की थी, जिसके तहत समस्त ग्राम से इकट्ठा लगान तय किया जाता था और मुखिया अथवा लम्बरदार लगान वसूलकर सरकार को देता था। लगान की दरें बहुत ऊंची थी, और उसे बड़ी कठोरता से वसूला जाता था। कर न दे पाने पर किसानों को तरह-तरह से बेइज्जत करना, कोड़े मारना और उन्हें जमीनों से बेदखल करना एक आम बात थी, किसानों की हालत बद से बदतर हो गई थी। धन सिंह कोतवाल भी एक किसान परिवार से सम्बन्धित थे। किसानों के इन हालातों से वे बहुत दुखी थे। धन सिंह के पिता पांचली ग्राम के मुखिया थे, अतः अंग्रेज पांचली के उन ग्रामीणों को जो किसी कारणवश लगान नहीं दे पाते थे, उन्हें धन सिंह के अहाते में कठोर सजा दिया करते थे, बचपन से ही इन घटनाओं को देखकर धन सिंह के मन में आक्रोश जन्म लेने लगा। ग्रामीणों के दिलो दिमाग में ब्रिटिश विरोध लावे की तरह धधक रहा था। 1857 की क्रान्ति में धन सिंह और उनके ग्राम पांचली की भूमिका का विवेचन करते हुए हम यह नहीं भूल सकते कि धन सिंह गूजर जाति में जन्म थे, उनका गांव गूजर बहुल था। 1707 ई. में औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात गूजरों ने पश्चिम उत्तर प्रदेश में अपनी राजनैतिक ताकत काफी बढ़ा ली थी। लढ़ौरा, मुण्डलाना, टिमली, परीक्षितगढ़, दादरी, समथर-लौहा गढ़, कुंजा बहादुरपुर इत्यादि रियासतें कायम कर वे पश्चिमी उत्तर प्रदेश में एक गूजर राज्य बनाने के सपने देखने लगे थे। 1803 में अंग्रेजों द्वारा दोआबा पर अधिकार करने के बाद गूजरों की शक्ति क्षीण हो गई थी, गूजर मन ही मन अपनी राजनैतिक शक्ति को पुनः पाने के लिये आतुर थे, इस दशा में प्रयास करते हुए गूजरों ने सर्वप्रथम 1824 में कुंजा बहादुरपुर के ताल्लुकदार विजय सिंह और कल्याण सिंह उर्फ कलवा गूजर के नेतृत्व में सहारनपुर में जोरदार विद्रोह किये। पश्चिमी उत्तर प्रदेश के गूजरों ने इस विद्रोह में प्रत्यक्ष रूप से भाग लिया परन्तु यह प्रयास सफल नहीं हो सका। 1857 के सैनिक विद्रोह ने उन्हें एक और अवसर प्रदान कर दिया। समस्त पश्चिमी उत्तर प्रदेश में देहरादून से लेकर दिल्ली तक, मुरादाबाद, बिजनौर, आगरा, झांसी तक। पंजाब, राजस्थान से लेकर महाराष्ट्र तक के गूजर इस स्वतन्त्रता संग्राम में कूद पड़े। हजारों की संख्या में गूजर शहीद

हुए और लाखों गूजरों को ब्रिटेन के दूसरे उपनिवेशों में कृषि मजदूर के रूप में निर्वासित कर दिया। इस प्रकार धन सिंह और पांचली, घाट, नंगला और गगोल ग्रामों के गूजरों का संघर्ष गूजरों के देशव्यापी ब्रिटिश विरोध का हिस्सा था। यह तो बस एक शुरुआत थी।

1857 की क्रान्ति के कुछ समय पूर्व की एक घटना ने भी धन सिंह और ग्रामवासियों को अंग्रेजी शासन को उखाड़ फेंकने के लिए प्रेरित किया। पांचली और उसके निकट के ग्रामों में प्रचलित किंवदन्ती के अनुसार घटना इस प्रकार है, "अप्रैल का महीना था। किसान अपनी फसलों को उठाने में लगे हुए थे। एक दिन करीब 10-11 बजे के आसपास बजे दो अंग्रेज तथा एक मेम पांचली खुर्द के आमों के बाग में थोड़ा आराम करने के लिए रुके। इसी बाग के समीप पांचली गांव के तीन किसान जिनके नाम मंगत सिंह, नरपत सिंह और झज्जड़ सिंह (अथवा भज्जड़ सिंह) थे, कृषि कार्यो में लगे थे। अंग्रेजों ने इन किसानों से पानी पिलाने का आग्रह किया। अज्ञात कारणों से इन किसानों और अंग्रेजों में संघर्ष हो गया। इन किसानों ने अंग्रेजों का वीरतापूर्वक सामना कर एक अंग्रेज और मेम को पकड़ लिया। एक अंग्रेज भागने में सफल रहा। पकड़े गए अंग्रेज सिपाही को इन्होंने हाथ-पैर बांधकर गर्म रेत में डाल दिया और मेम से बलपूर्वक दायं हंकवाई। दो घंटे बाद भागा हुआ सिपाही एक अंग्रेज अधिकारी और 25-30 सिपाहियों के साथ वापस लौटा। तब तक किसान अंग्रेज सैनिकों से छीने हुए हथियारों, जिनमें एक सोने की मूठ वाली तलवार भी थी, को लेकर भाग चुके थे। अंग्रेजों की दण्ड नीति बहुत कठोर थी, इस घटना की जांच करने और दोषियों को गिरफ्तार कर अंग्रेजों को सौंपने की जिम्मेदारी धन सिंह के पिता, जो कि गांव के मुखिया थे, को सौंपी गई। ऐलान किया गया कि यदि मुखिया ने तीनों बागियों को पकड़कर अंग्रेजों को नहीं सौपा तो सजा गांव वालों और मुखिया को भुगतनी पड़ेगी। बहुत से ग्रामवासी भयवश गाँव से पलायन कर गए। अन्ततः नरपत सिंह और झज्जड़ सिंह ने तो समर्पण कर दिया किन्तु मंगत सिंह फरार ही रहे। दोनों किसानों को 30-30 कोड़े और जमीन से बेदखली की सजा दी गई। फरार मंगत सिंह के परिवार के तीन सदस्यों को गांव के समीप ही फांसी पर लटका दिया गया। धन सिंह के पिता को मंगत सिंह को न ढूंढ पाने के कारण छह माह के कठोर कारावास की सजा दी गई। इस घटना ने धन सिंह सहित पांचली के बच्चे-बच्चे को विद्रोही बना दिया। जैसे ही 10 मई को मेरठ में सैनिक बगावत हुई धन सिंह और ने क्रान्ति में सहभागिता की शुरुआत कर

इतिहास रच दिया।

क्रान्ति में अग्रणी भूमिका निभाने की सजा पांचली व अन्य ग्रामों के किसानों को मिली। मेरठ गजेटियर के वर्णन के अनुसार 4 जुलाई, 1857 को प्रातः चार बजे पांचली पर एक अंग्रेज रिसाले ने तोपों से हमला किया। रिसाले में 56 घुड़सवार, 38 पैदल सिपाही और 10 तोपची थे। पूरे ग्राम को तोप से उड़ा दिया गया। सैकड़ों किसान मारे गए, जो बच गए उनमें से 46 लोग कैद कर लिए गए और इनमें से 40 को बाद में फांसी की सजा दे दी गई। आचार्य दीपांकर द्वारा रचित पुस्तक स्वाधीनता आन्दोलन और मेरठ के अनुसार पांचली के 80 लोगों को फांसी की सजा दी गई थी। पूरे गांव को लगभग नष्ट ही कर दिया गया। ग्राम गगोल के भी 9 लोगों को दशहरे के दिन फाँसी की सजा दी गई और पूरे ग्राम को नष्ट कर दिया। आज भी इस ग्राम में दशहरा नहीं मनाया जाता।

संदर्भ एवं टिप्पणी

1. मेरठ डिस्ट्रिक्ट गजेटेयर, गवर्नमेन्ट प्रेस, 1963 पृष्ठ संख्या 52
2. वही
3. पांचली, घाट, गगोल आदि ग्रामों में प्रचलित किवदन्ती, बिन्दु क्रमांक 191, नैरेटिव ऑफ इवेन्ट्स अटैन्डिंग द आऊट ब्रेक ऑफ डिस्टरबैन्सिस एण्ड दे रेस्टोरेशन ऑफ अथॉरिटी इन डिस्ट्रिक्ट मेरठ 1857-58, नवम्बर 406, दिनांक 15 नवम्बर 1858, फ्राम एफ0 विलयम् म.59 सैकेट्री टू गवर्नमेंट नार्थ-वैस्टर्न प्राविन्स, इलाहाबाद, राष्ट्रीय अभिलेखागार, दिल्ली। आचार्य दीपांकर, स्वाधीनता संग्राम और मेरठ, 1993 पृष्ठ संख्या 143
4. वही, नैरेटिव इन डिस्ट्रिक्ट मेरठ।
5. मैमोरेन्डम ऑन द म्यूटनी एण्ड आऊटब्रेक ऐट मेरठ इन मई 1857, बाई मेजर विलयम्स, कमिश्नर ऑफ द मिलेट्री पुलिस, नार्थ-वेस्टर्न प्राविन्सिस, इलाहाबाद, 15 नवम्बर 1858, जे.ए.बी. पामर, म्यूटनी आऊटब्रेक एट मेरठ, पृष्ठ संख्या 90-91।
6. डेपाजिशन नम्बर 54, 56, 59 एवं 60, आफ डेपाजिशन टेकन एट मेरठ बाई जी. डबल्यू. विलयम्, वही म्यूटनी नैरेटिव इन डिस्ट्रिक्ट मेरठ।
7. वही, डेपाजिशन नम्बर 66
8. वही, बिन्दु क्रमांक 152, म्यूटनी नैरेटिव इन मेरठ डिस्ट्रिक्ट।
9. वहीं, डेपाजिशन नम्बर 8

10. वही, सौन्ता सिंह की गवाही।
11. वही, डेपाजिशन संख्या 22, 23, 24, 25 एवं 26।
12. वही, बिन्दु क्रमांक 191, नैरेटिव इन मेरठ डिस्ट्रिक्टय पांचली, नंगला, घाट, गगोल आदि ग्रामों में प्रचलित किंवदन्ती।
13. वही किंवदन्ती।
14. नेविल, सहारनपुर ए गजेटेयर, 1857 की घटना से सम्बंधित पृष्ठ।
15. मेरठ के मजिस्ट्रेट डनलप द्वारा मेजर जनरल हैविट कमिश्नर मेरठ को 28 जून 1857 को लिखा पत्र, एस.ए.ए. रिजवी, फ्रीडम स्ट्रगल इन उत्तर प्रदेश, खण्ड टए लखनऊ, 1960 पृष्ठ संख्या 107-110।
16. नेविल, वही, एच.जी. वाटसन, देहरादून गजेटेयर के सम्बन्धित पृष्ठ।
17. वही, किंवदन्ती यह किवदन्ती पांचली ग्राम के खजान सिंह, उम्र 90 वर्ष के साक्षात्कार पर आधारित है।
18. बिन्दु क्रमांक 265, 266, 267, वही, नैरटिव इन डिस्ट्रिक्ट मेरठ।

संदर्भ ग्रन्थ

1. आचार्य दीपांकर, स्वाधीनता संग्राम और मेरठ, जनमत प्रकाशन, मेरठ 1993
2. मेरठ डिस्ट्रिक्ट गजेटेयर, गवर्नमेनट प्रैस, इलाहाबाद, 1963
3. मयराष्ट्र मानस, मेरठ।
4. रमेश चन्द्र मजूमदार, द सिपोय म्यूटनी एण्ड रिवोल्ट ऑफ 1857
5. एस. बी. चौधरी, सिविल रिबैलयन इन इण्डियन म्यूटनीज 1857-59
6. एस. एन.-सेन, 1857
7. पी.सी. जोशी रिबैलयन 1857।
8. एरिक स्ट्रोक्स, द पीजेण्ट एण्ड द राज।
9. जे.ए.बी. पामर, द म्यूटनी आउटब्रैक एट मेरठ

अनुक्रम

1857 की क्रान्ति के अग्रिम क्रान्तिकारी

मेरठ के क्रान्तिकारियों का सरताज –राव कदम सिंह गुर्जर

1857 ई. के स्वतंत्रता संग्राम में राव कदमसिंह गुर्जर मेरठ के पूर्वी क्षेत्र में क्रान्तिकारियों का नेता था। उसके साथ दस हजार क्रान्तिकारी थे, जो कि

प्रमुख रूप से मवाना, हस्तिनापुर और बहसूमा क्षेत्र के थे। ये क्रान्तिकारी कफन के प्रतीक के तौर पर सिर पर सफेद पगड़ी बांध कर चलते थे।

मेरठ के तत्कालीन कलक्टर आर. एच. डनलप द्वारा मेजर जनरल हैविट को 28 जून 1857 को लिखे पत्र से पता चलता है कि क्रान्तिकारियों ने पूरे जिले में खुलकर विद्रोह कर दिया और परीक्षितगढ़ के राव कदम सिंह को पूर्वी परगने का राजा घोषित कर दिया। राव कदम सिंह और दलेल सिंह के नेतृत्व में क्रान्तिकारियों ने परीक्षितगढ़ की पुलिस पर हमला बोल दिया और उसे मेरठ तक खदेड़ दिया। उसके बाद, अंग्रेजों से सम्भावित युद्व की तैयारी में परीक्षितगढ़ के किले पर तीन तोपें चढ़ा दी। ये तोपें तब से किले में ही दबी पड़ी थी जब सन् 1803 में अंग्रेजों ने दोआब में अपनी सत्ता जमाई थी। इसके बाद हिम्मतपुर और बुकलाना के क्रान्तिकारियों ने राव कदम सिंह के नेतृत्व में गठित क्रान्तिकारी सरकार की स्थापना के लिए अंग्रेज परस्त गॉवों पर हमला बोल दिया और बहुत से गद्दारों को मौत के घाट उतार दिया। क्रान्तिकारियों ने इन गांव से जबरन लगान वसूला।

राव कदम सिंह बहसूमा परीक्षितगढ़ रियासत के अंतिम राजा नैनसिंह गुर्जर के भाई का पौत्र था। राजा नैनसिंह गुर्जर के समय रियासत में 349 गांव थे और इसका क्षेत्रफल लगभग 800 वर्ग मील था। 1818 में नैन सिंह के मृत्यू के बाद अंग्रेजों ने रियासत पर कब्जा कर लिया था। इस क्षेत्र के लोग पुनः अपना राज चाहते थे, इसलिए क्रान्तिकारियों ने कदम सिंह को अपना राजा घोषित कर दिया।

10 मई 1857 को मेरठ में हुए सैनिक विद्रोह की खबर फैलते ही मेरठ के पूर्वी क्षेत्र में क्रान्तिकारियों ने राव कदम सिंह के निर्देश पर सभी सड़के रोक दीं और अंग्रेजों के यातायात और संचार को ठप कर दिया। मार्ग से निकलने वाले सभी यूरोपीयनों को लूट लिया। मवाना-हस्तिनापुर के क्रान्तिकारियों ने राव कदम सिंह के भाई दलेल सिंह, पिर्थी सिंह और देवी सिंह के नेतृत्व में बिजनौर के विद्रोहियों के साथ साझा मोर्चा गठित किया और बिजनौर के मण्डावर, दारानगर और धनौरा क्षेत्र में धावे मारकर वहाँ अंग्रेजी राज को हिला दिया। इनकी अगली योजना मण्डावर के क्रान्तिकारियों के साथ बिजनौर पर हमला करने की थी। मेरठ और बिजनौर दोनों ओर के घाटों, विशेषकर दारानगर और रावली घाट, पर राव कदमसिंह का प्रभाव बढ़ता जा रहा था। ऐसा प्रतीत होता है कि कदम सिंह विद्रोही हो चुकी बरेली बिग्रेड के नेता बख्त खान के सम्पर्क में था क्योंकि उसके समर्थकों ने ही बरेली बिग्रेड को गंगा पार करने के लिए नावें उपलब्ध

कराई थीं। इससे पहले अंग्रेजों ने बरेली के विद्रोहियों को दिल्ली जाने से रोकने के लिए गढ़मुक्तेश्वर के नावों के पुल को तोड़ दिया था।

27 जून 1857 को बरेली बिग्रेड का बिना अंग्रेजी विरोध के गंगा पार कर दिल्ली चले जाना खुले विद्रोह का संकेत था। जहाँ बुलन्दशहर में विद्रोहियों का नेता वलीदाद खान वहाँ का स्वामी बन बैठा, वहीं मेरठ में क्रान्तिकारियों ने कदम सिंह को राजा घोषित किया और खुलकर विद्रोह कर दिया। 28 जून 1857 को मेजर नरल हैविट को लिखे पत्र में कलक्टर डनलप ने मेरठ के हालातो पर चर्चा करते हुये लिखा कि यदि हमने शत्रुओं को सजा देने और अपने दोस्तों की मदद करने के लिए जोरदार कदम नहीं उठाए तो जनता हमारा पूरी तरह साथ छोड़ देगी और आज का सैनिक और जनता का विद्रोह कल व्यापक क्रान्ति में परिवर्तित हो जायेगा। मेरठ के क्रान्तिकारी हालातों पर काबू पाने के लिए अंग्रेजों ने मेजर विलयम्स के नेतृत्व में खाकी रिसाले का गठन किया। जिसने 4 जुलाई 1857 को पहला हमला पांचली गांव पर किया। इस घटना के बाद राव कदम सिंह ने परीक्षितगढ़ छोड़ दिया और बहसूमा में मोर्चा लगाया, जहाँ गंगा खादर से उन्होंने अंग्रेजों के खिलाफ लड़ाई जारी रखी।

18 सितम्बर को राव कदम सिंह के समर्थक क्रान्तिकारियों ने मवाना पर हमला बोल दिया और तहसील को घेर लिया। खाकी रिसाले के वहाँ पहुँचने के कारण क्रान्तिकारियों को पीछे हटना पड़ा। 20 सितम्बर को अंग्रेजों ने दिल्ली पर पुनः अधिकार कर लिया। हालातों को देखते हुये राव कदम सिंह एवं दलेल सिंह अपने हजारों समर्थकों के साथ गंगा के पार बिजनौर चले गए जहाँ नवाब महमूद खान के नेतृत्व में अभी भी क्रान्तिकारी सरकार चल रही थी। थाना भवन के काजी इनायत अली और दिल्ली से तीन मुगल शहजादे भी भाग कर बिजनौर पहुँच गए।

राव कदम सिंह आदि के नेतृत्व में क्रान्तिकारियों ने बिजनौर से नदी पार कर कई अभियान किये। उन्होंने रंजीतपुर में हमला बोलकर अंग्रेजों के घोड़े छीन लिये। 5 जनवरी 1858 को नदी पार कर मीरापुर मुजफ्फरनगर में पुलिस थाने को आग लगा दी। इसके बाद हरिद्वार क्षेत्र में मायापुर गंगा नहर चौकी पर हमला बोल दिया। कनखल में अंग्रेजों के बंगले जला दिये। इन अभियानों से उत्साहित होकर नवाब महमूद खान ने कदम सिंह एवं दलेल सिंह आदि के साथ मेरठ पर आक्रमण करने की योजना बनाई परन्तु उससे पहले ही 28 अप्रैल 1858 को बिजनौर में क्रान्तिकारियों की हार हो गई और अंग्रेजों ने नवाब को रामपुर के पास

से गिरफ्तार कर लिया। उसके बाद बरेली में में भी क्रान्तिकारी हार गए। कदम सिंह एवं दलेल सिंह का उसके बाद क्या हुआ कुछ पता नहीं चलता।

दादरी के राजा –राव उमरावसिंह गुर्जर

क्रान्तिवीर राव उमराव सिंह गुर्जर दादरी भटनेर रियासत के राजा। इनका जन्म सन् 1832 में दादरी (उ.प्र) के निकट ग्राम कटेहड़ा में राव किशनसिंह गुर्जर के पुत्र के रूप में हुआ था। सन सत्तावन 1857 की जनक्रान्ति में राव रोशन सिंह, उनके बेटे राव बिशन सिंह व उनके भतीजे राव उमराव सिंह का महत्त्वपूर्ण योगदान था। 10 मई को मेरठ से 1857 की जन–क्रान्ति की शुरुआत कोतवाल धनसिंह गुर्जर द्वारा हो चुकी थी तत्कालीन राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत उमरावसिंह गुर्जर ने आसपास के ग्रामीणों को प्रेरित कर 12 मई 1857 को सिकन्द्राबाद तहसील पर धावा बोल दिया। वहाँ के हथियार और खजानों को अपने अधिकार में कर लिया। सूचना मिलते ही बुलन्दशहर से सिटी मजिस्ट्रेट सैनिक बल सिकनद्राबाद आ धमका। 7 दिन तक क्रान्तिकारी सेना अंग्रेज सेना से टक्कर लेती रही। अंत में 19 मई को सस्त्र सेना के सामने क्रान्तिकारी वीरों को हथियार डालने पड़े 46 लोगों को बंदी बनाया गया। उमरावसिंह बच निकले। इस क्रान्तिकारी सेना में गुर्जर समुदाय की मुख्य भूमिका होने के कारण उन्हें ब्रिटिश सत्ता का कोप भोजन होना पड़ा। उमरावसिंह अपने दल के साथ 21 मई को बुलन्दशहर पहुँचे एवं जिला कारागार पर घावा बोलकर अपने सभी राजबंदियों को छुड़ा लिया । बुलन्दशहर से अंग्रेजी शासन समाप्त होने के बिंदु पर था लेकिन बाहर से सेना की मदद आ जाने से यह संभव नहीं हो सका। हिंडन नदी के तट पर 30 व 31 मई को क्रान्तिकारी सेना और अंग्रेजी सेना के बीच एक ऐतिहासिक भीषण युद्ध हुआ। जिसकी कमान क्रान्तिनायक धनसिंह गुर्जर, राव उमराव सिंह गुर्जर, राव रोशन सिंह गुर्जर इस युद्ध में अंग्रेजों को मुहँ की खानी पड़ी थी। 26 सितम्बर, 1857 को कासना–सुरजपुर के बीच उमरावसिंह की अंग्रेजी सेना से भारी टक्कर हुई । लेकिन दिल्ली के पतन के कारण सेना का उत्साह भंग हो चुका था । भारी जन हाति के बाद राव–सेना ने पराजय स्वीकार कर ली। उमरावसिंह को गिरफ्तार कर लिया गया। इस जनक्रान्ति के विफल हो जाने पर बुलंदशहर के काले आम पर बहुत से गुर्जर क्रान्तिवीरों के साथ राजा राव उमराव सिंह भाटी, राव रोशन सिंह भाटी, राव बिशन सिंह भाटी को बुलन्दशहर में कालेआम के चौहराहे पर फाँसी पर लटका दिया गया।

फतुआ सिंह गुर्जर –गंगोह, सहारनपुर

भारत के पहले स्वाधीनता संग्राम में आम से लेकर खास तक ने भाग लिया। किसान से लेकर जमींदार तक। कोतवाल धन सिंह गुर्जर से लेकर राव देवहंश कसाना तक ऐसे ही एक विस्मृत वीर थे जो वीरभूमि सहारनपुर के गंगोह कस्बे के बड़े जमींदार थे और जिन्होंने 1857 के गदर में अपने प्राणों की आहुति दी। उनका नाम था राव फतुआ सिंह गुर्जर। फतुआ सिंह गुर्जर ने गंगोह कस्बे से अंग्रेजी राज खत्म कर दिया और लगभग आधे सहारनपुर को अंग्रेजमुक्त कर दिया। गंगोह कस्बें में उनकी वीरता के किस्से आज भी लोगों की जुबान पर प्रचलित हैं। राव फतुआ सिंह एक वीर, साहसी और खुद्दार जमींदार थे जिन्होंने गुलामी को सदा ही उतार फेंकने का प्रयास किया और फिर एक दिन यह शुभ अवसर भी मई, 1857 में आ गया जब मेरठ से धन सिंह गुर्जर। कोतवाल धन सिंह गुर्जर,, ने क्रांति का शंखनाद किया और फिर वीरों की टोलियों ने कम्पनी राज की ईंट से ईंट बजा दी। राव फतुआ सिंह सहारनपुर में राजा 'उमराव सिंह मानिकपुरी' के साथ क्रांतिकारियों की अगुवाई कर रहे थे। गंगोह की जनता ने फतुवा गुर्जर को अपना नेता बना कर इस क्षेत्र में भारी उपद्रव व अशान्ति पैदा कर दी थी। नुकड़ तहसील, थाणा, मंगलौर में भी वही हाल, सरसावा पर भी अधिकार सहारनपुर के सुरक्षा अधिकारी स्पनकी तथा रार्बटसन के साथ राजा उमराव सिंह मणिकुरी के नेतृत्व में डटकर टक्कर हुई । इन अंग्रेज अधिकारियों ने गुर्जरों का दमन करने के लिए सेना का प्रयोग किया । गांवों पर बाकायदा तैयारी कर के सेना, स्पनकी और राबर्टसन के नेतृत्व में चढ़ाई करती थी, लेकिन गुर्जर बड़े हौसले से टक्कर लेते थे उपरोक्त जिन गांवों का विशेषकर जिक्र किया है उनके जवाबी हमले भी होते रहे । आधुकिनतम हथियारों से लैस अंग्रेजी सेना व उनके पिट्टू भारतीय सेना ने इन गांवों को जलाकर राख कर दिया, इनकी जमीन जायदाद जब्त की गई । माणिकपुर के राजा उमराव सिंह, गंगोह के फतुआ गुर्जर तथा इनके प्रमुख साथियों को फांसी दी गई और अनेक क्रान्तिकारियों को गांवों में ही गोली से उड़ा दिया गया और अनेकों को वृक्षों पर फांसी का फन्दा डालकर लटका दिया गया।

शिब्बा सिंह गुर्जर –सीकरी खुर्द

मेरठ से 13 मील दूर, दिल्ली जाने वाले राज मार्ग पर मोदीनगर से सटा हुआ एक गुमनाम गाँव है–सीकरी खुर्द। 1857 के स्वतन्त्रता संग्राम में इस गाँव

ने एक अत्यन्त सक्रिय भूमिका अदा की थी। 10 मई 1857 को देशी सैनिक ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सरकार के विरुद्ध संघर्ष की शुरुआत कर दिल्ली कूच कर गये थे। जब मेरठ के क्रान्तिकारी सैनिक मौहिउद्दीनपुर होते हुए बेगमाबाद (वर्तमान मोदीनगर) पहुँचे तो सीकरी खुर्द के लोगों ने इनका भारी स्वागत-सत्कार किया। इस गाँव के करीब 750 गुर्जर नौजवान की टोली में शामिल हो गये और दिल्ली रवाना हो गये। अगले ही दिन इस जत्थे की दिल्ली के तत्कालीन खूनी दरवाजे पर अंग्रेजी फौज से मुठभेड़ हो गई जिसमें अनेक नौजवान गुर्जर क्रान्तिकारी शहीद हो गए।

1857 के इस स्वतन्त्रता समर के प्रति अपने उत्साह और समर्पण के कारण सीकरी खुर्द क्रान्तिकारियों का एक महत्त्वपूर्ण ठिकाना बन गया। गाँव के बीचोबीच स्थित एक किलेनुमा मिट्टी की दोमंजिला हवेली को क्रान्तिकारियों ने तहसील का स्वरूप प्रदान किया। यह हवेली सिब्बा सिंह गुर्जर की थी जो सम्भवतः क्रान्तिकारियों का नेता था। आसपास के अनेक गाँवों के क्रान्तिकारी सीकरी खुर्द में इकट्ठा होने लगे। मेरठ के कुछ क्रान्तिकारी सैनिक भी इनके साथ थे। इस कारण यह दोमंजिला हवेली क्रान्तिकारी गतिविधियों का केन्द्र बन गयी।

उस समय सीकरी खुर्द, लालकुर्ती मेरठ में रहने वाले बूचड़वालों की जमींदारी में आता था। लालकुर्ती के जमींदार ने स्वयं जाकर सिब्बा मुकद्दम से बातचीत की। उसने सिब्बा को, अंग्रेजों के पक्ष में करने के लिए, लालच देते हुए कहा कि-"मुकद्दम जितने इलाके की ओर तुम उँगली उठाओगे, मैं वो तुम्हे दे दूँगा तथा जो जमीन तुम्हारे पास है उसका लगान भी माफ कर दिया जायेगा। लेकिन सिब्बा ने जमींदार की बात नहीं मानी। अब सीकरी खुर्द के गुर्जर खुलेआम अंग्रेजों के विरुद्ध हो गये।

क्रान्तिकारियों ने आसपास के क्षेत्रों में राजस्व वसूल कर क्रान्तिकारी सरकार के प्रमुख, सम्राट बहादुरशाह जफर को भेजने का निश्चय किया। व्यवस्था को लागू करने के लिए सीकरी के क्रान्तिकारियों ने अंग्रेज परस्त ग्राम काजिमपुर पर हमला बोल 7 गद्दारों को मौत के घाट उतार दिया। अंग्रेज परस्तों को सबक सिखाने का सिलसिला यहीं समाप्त नहीं हुआ। सीकरी खुर्द में स्थित इन क्रान्तिकारियों ने बेगमाबाद (वर्तमान मोदीनगर) और आसपास के अंग्रेज समर्थक गद्दारों पर बड़े हमले की योजना बनाई। बेगमाबाद कस्बा सीकरी खुर्द से मात्र दो मील दूर था। वहाँ अंग्रेजों की एक पुलिस चौकी थी, जिस कारण

सीकरी खुर्द में बना क्रान्तिकारियों का ठिकाना सुरक्षित नहीं था। इस बीच बेगमाबाद के अंग्रेज परस्तों ने गाजियबाद और दिल्ली के बीच हिण्डन नदी के पुल को तोड़ने का प्रयास किया। वास्तव में वो दिल्ली की क्रान्तिकारी सरकार और पश्चिम उत्तर प्रदेश में उसके नुमाईन्दे बुलन्दशहर के बागी नवाब वलिदाद खान के बीच के सम्पर्क माध्यम, इस पुल को समाप्त करना चाहते थे। जिससे कि वलिदाद खान को सहायता हीन कर हराया जा सके। इस घटना ने सीकरी खुर्द में स्थित क्रान्तिकारियों की क्रोधाग्नि में घी का काम किया और उन्होंने 8 जुलाई सन् 1857 को बेगमाबाद पर हमला कर दिया। सबसे पहले बेगमाबाद में स्थित पुलिस चौकी को नेस्तनाबूत कर अंग्रेज परस्त पुलिस को मार भगाया। इस हमले की सूचना प्राप्त होते ही आसपास के क्षेत्र में स्थित अंग्रेज समर्थक काफी बड़ी संख्या में बेगमाबाद में एकत्रित हो गये। प्रतिक्रिया स्वरूप सीकरी खुर्द, नंगला, दौसा, डीलना, चुडियाला और अन्य गाँवों के, क्रान्तिकारी गुर्जर इनसे भी बड़ी संख्या में इकट्ठा हो गए। आमने-सामने की इस लड़ाई में क्रान्तिकारियों ने सैकड़ों गद्दारों को मार डाला। चन्द गद्दार बड़ी मुश्किल से जान बचाकर भाग सके। क्रान्तिकारियों ने इन अंग्रेज परस्तों का धनमाल जब्त कर कस्बे को आग लगा दी।

बेगमाबाद की इस घटना की खबर जैसे ही मेरठ स्थित अंग्रेज अधिकारियों को मिली, तो उनके पैरों के नीचे से जमीन खिसक गयी। अंग्रेजी खाकी रिसाले ने रात को दो बजे ही घटना स्थल के लिए कूच कर दिया। मेरठ का कलेक्टर डनलप स्वयं रिसाले की कमान सम्भालते हुए था, उसके अतिरिक्त मेजर विलियम, कैप्टन डीवायली एवं कैप्टन तिरहट रिसाले के साथ थे। खाकी रिसाला अत्याधुनिक हथियारों –मस्कटों, कारबाईनों और तोपों से लैस था। भौर में जब रिसाला बेगमाबाद पहुँचा तो बूंदा-बांदी होने लगी, जो पूरे दिन चलती रही। बाजार में आग अभी भी सुलग रही थी, अंग्रेजी पुलिस चौकी और डाक बंगला वीरान पड़े थे। उनकी दीवारें आग से काली पड़ चुकी थीं और फर्श जगह-जगह से खुदा पड़ा था। कस्बे से भागे हुए कुछ लोग यहाँ-वहाँ भटक रहे थे।

अपने समर्थकों की ऐसी दुर्गति देख अंग्रेज अधिकारी अवाक रह गये। यहाँ एक पल भी बिना रुके, खाकी रिसाले को ले, सीधे सीकरी खुर्द पहुँच गये और चुपचाप पूरे गाँव का घेरा डाल दिया। अंग्रेजों के अचानक आने की खबर से क्रान्तिकारी हैरान रह गये परन्तु शीघ्र ही वो तलवार और भाले लेकर गाँव की

सीमा पर इकट्ठा हो गये। भारतीयों ने अंग्रेजों को ललकार कर उन पर हमला बोल दिया। खाकी रिसाले ने कारबाईनों से गोलियाँ बरसा दीं जिस पर क्रान्तिकारियों ने पीछे हटकर आड़ में मोर्चा सम्भाल लिया। क्रान्तिकारियों के पास एक पुरानी तोप थी जो बारिश के कारण समय पर दगा दे गयी, वहीं अंग्रेजी तोपखाने ने कहर बरपा दिया और अंग्रेज क्रान्तिकारियों की प्रथम रक्षा पंक्ति को भेदने में कामयाब हो गये। गाँव की सीमा पर ही 30 क्रान्तिकारी शहीद हो गये।

अन्ततः क्रान्तिकारियों ने सीकरी खुर्द के बीचोबीच स्थित किलेनुमा दोमंजिला हवेली में मोर्चा लगा लिया। क्रान्तिकारियों ने यहाँ अपने शौर्य का ऐसा प्रदर्शन किया कि अंग्रेजों को भी उनके साहस और बलिदान का लोहा मानना पड़ा। कैप्टन डीवयली के नेतृत्व में अंग्रेजी सेना की टुकड़ी ने हवेली के मुख्य दरवाजे को तोप से उड़ाने का प्रयास किया। क्रान्तिकारियों के जवाबी हमले में कैप्टन डीवायली की गर्दन में गोली लग गयी और वह बुरी तरह जख्मी हो गया। इस बीच कैप्टन तिरहट के नेतृत्व वाली सैनिक टुकड़ी हवेली की दीवार से चढ़कर छत पर पहुँचने में कामयाब हो गयी। हवेली की छत पर पहुँच कर इस अंग्रेज टुकड़ी में नीचे आंगन में मोर्चा ले रहे क्रान्तिकारियों पर गोलियों की बरसात कर दी। तब तक हवेली का मुख्य द्वारा भी टूट गया, भारतीय क्रान्तिकारी बीच में फंस कर रह गये। हवेली के प्रांगण में 70 क्रान्तिकारी लड़ते-लड़ते शहीद हो गये। इनके अतिरिक्त गाँव के घरों और गलियों में अंग्रेजों से लड़ते हुए 70 लोग और शहीद हो गये। अंग्रेजों ने अशक्त बूढ़ों और औरतों को भी नहीं छोड़ा। कहते हैं कि सीकरी खुर्द स्थित महामाया देवी के मंदिर के निकट एक तहखाने में गाँव के अनेक वृद्ध एवं बच्चे छिपे हुए थे तथा गाँव के पास एक खेत में सूखी पुराल व लकड़ियों में गाँव की महिलाएँ छिपी हुई थीं। जब खाकी रिसाला सीकरी खुर्द से वापिस जाने ही वाला था कि तभी किसी गद्दार ने यह बात अंग्रेज अफसरों को बता दी। अंग्रेजों ने तहखाने से निकाल कर 30 व्यक्तियों को गोली मार दी और बाकी लोगों को मन्दिर के पास खड़े वट वृक्ष पर फांसी पर लटका दिया। गाँव की स्त्रियों ने अपने सतीत्व को बचाने के लिए खेत के पुराल में आग लगा कर जौहर कर लिया। आज भी इस खेत को सतियों का खेत कहते हैं। मेरठ के तत्कालीन कमिश्नर एफ. विलियइस की शासन को भेजी रिपोर्ट के अनुसार गुर्जर बाहुल्य गाँव सीकरी खुर्द का संघर्ष पूरे पाँच घंटे चला और इसमें 170 क्रान्तिकारी शहीद हुए। ग्राम में स्थित महामाया देवी का मन्दिर, वहाँ खड़ा वट वृक्ष और सतियों का खेत आज भी सीकरी के शहीदों की कथा

की गवाही दे रहे हैं, परन्तु इस शहीदी गाथा को कहने वाला कोई सरकारी या गैर-सरकारी स्मारक वहाँ नहीं है।

नम्बरदार झंडुसिंह गुर्जर –गगोल गांव का बलिदान

10 मई 1857 को मेरठ में क्रान्ति के विस्फोट के बाद मेरठ के आसपास स्थित गुर्जरों के गांवों ने अंग्रेजी राज की धज्जियां उड़ा दी। अंग्रेजों ने सबसे पहले उन गांवों को सजा देने पर विचार किया, जिन्होंने 10 मई की रात को मेरठ में क्रान्ति में बढ़-चढ़कर भाग लिया था और उसके बाद मेरठ के बाहर जाने वाले आगरा, दिल्ली आदि मार्गो को पूरी तरह से रोक दिया था। जिसकी वजह से मेरठ का सम्पर्क अन्य केन्द्रों से कट गया था। इस क्रम में सबसे पहले 24 मई को 'इख्तयारपुर' पर और उसके तुरन्त बाद 3 जून को 'लिसाड़ी' , 'नूर नगर' और 'गगोल गांव' पर अंग्रेजों ने हमला किया। ये तीनों गांव मेरठ के दक्षिण में स्थित 3 से 6 मील की दूरी पर स्थित थे। लिसारी और नूरनगर तो अब मेरठ महानगर का हिस्सा बन गए हैं। गगोल प्राचीन काल में ऋषि विश्वामित्र की तप स्थली रहा है और इसका पौराणिक महत्त्व है। नूरनगर, लिसाड़ी और गगोल के किसान उन क्रान्तिवीरों में से थे, जो 10 मई 1857 की रात को घाट, पांचली, नंगला आदि के किसानों के साथ कोतवाल धनसिंह गुर्जर के बुलावे पर मेरठ पहुँचे थे। अंग्रेजी दस्तावेजों से यह साबित हो गया है कि कोतवाल धनसिंह गुर्जर के नेतृत्व में सदर कोतवाली की पुलिस और इन किसनों ने क्रान्तिकारी घटनाओं का अंजाम दिया था। इन किसानों ने कैण्ट और सदर में भारी तबाही मचाने के बाद रात 2 बजे मेरठ की नई जेल तोड़ कर 839 कैदियों को रिहा कर दिया। 10 मई 1857 को सैनिक विद्रोह के साथ-साथ हुए इस आम जनता के विद्रोह से अंग्रेज ऐसे हतप्रभ रह गए कि उन्होंने अपने आप को मेरठ स्थित दमदमें में बन्द कर लिया। वहां यह तक न जान सके कि विद्रोही सैनिक किस ओर गए हैं, इस घटना के बाद नूरनगर, लिसाड़ी, और गगोल के क्रान्तिकारियों बुलन्दशहर आगरा रोड़ को रोक दिया और डाक व्यवस्था भंग कर दी। आगरा उस समय उत्तर-पश्चिम प्रांत की राजधानी थी। अंग्रेज आगरा से सम्पर्क टूट जाने से बहुत परेशान हुए। गगोल आदि गाँवों के इन क्रान्तिकारियों का नेतृत्व गगोल के झण्डा सिंह गुर्जर उर्फ झण्डू दादा कर रहे थे। उनके नेतृत्व में क्रान्तिकारियों ने बिजली बाम्बे के पास अंग्रेजी सेना के एक कैम्प को ध्वस्त कर दिया था। आखिरकार 3 जून को अंग्रेजों ने नूरनगर लिसाड़ी और गगोल पर हमला बोला। अंग्रेजी सेना

के पास काराबाइने थी और उसका नेतृत्व टर्नबुल कर रहा था। मेरठ शहर के कोतवाल बिशन सिंह, जो कि रेवाड़ी के क्रान्तिकारी नेता राजा तुलाराव का भाई था, को अंग्रेजी सेना को गाईड का काम करना था, परन्तु वह भी क्रान्ति के प्रभाव में आ चुका था। उसने गगोल पर होने वाले हमले की खबर वहां पहुँचा दी और जानबूझ कर अंग्रेजी सेना के पास देर से पहुँचा। इसका नतीजा भारतीयों के हक में रहा, जब यह सेना गगोल पहुँची तो सभी ग्रामीण वहाँ से भाग चुके थे। अंग्रेजों ने पूरे गाँव को आग लगा दी। बिशन सिंह भी सजा से बचने के लिए नारनौल, हरियाणा भाग गए, जहाँ वे अग्रेजों से लड़ते हुए शहीद हो गए।कुछ दिन बाद अंग्रेजों ने फिर से गगोल पर हमला किया और बगावत करने के आरोप में 9 लोग रामसहाय, घसीटा सिंह, रम्मन सिंह, हरजस सिंह, हिम्मत सिंह, कढेरा सिंह, शिब्बा सिंह बैरम और दरबा सिंह को गिरफ्तार कर लिया। इन क्रान्तिवीरों पर राजद्रोह का मुकदमा चला और दशहरे के दिन इन 9 क्रान्तिकारियों को चौराहे पर फांसी से लटका दिया गया। तब से लेकर आज तक गगोल गांव में लोग दशहरा नहीं मनाते हैं।

हिम्मत सिंह खटाणा –गुड़गाँव

चौधरी हिम्मत सिंह खटाणा का गांव रिठौज गुड़गांव जिले में आबाद है। हिम्मत सिंह ने 1857 की क्रान्ति में बढ़–चढ़ कर भाग लिया था। 13 मई 1857 के दिन सिलानी गांव में गुर्जरों और अंग्रेंजी फौज की डट कर टक्कर हुई थी। गुर्जरों का नेता चौ. हिम्मत सिंह खटाणा था और अंग्रेंजो का सेनापति विलियम फोर्ड था। हिम्मत सिंह के साथ निकट गावों के खटाणे व बैंसले तथा इनके समीपस्थ रहने वाले मेव भी थे । विलियम फोर्ड क्रान्तिकारी गांवों के दमन चक्र के लिए ही निकला था, मोहम्मदपुर, नरसिंह पुर, बेगमपुर, खटोला, दरबारी हसनपुर, रामगढ़ तंवर भोआपुर नया गांव, कादरपुर तिगरा उल्हावास, बहरमपुर, घाटा, बालियाबाद, बन्धवाड़ी, गुआलपहाड़ी, नाथूपुर, अहिया नगर, घिटरौनी, फतेहपुर बेरी आदि गांवों के तंवर, हरशाणें, भाटी, लोहमोड़, घोड़ा रोप, बोकन, खटाने, बैंसले आदि वंश के गुर्जरों ने विलियम फोर्ड का 300 सैनिक दस्ती पर जो हथियारों से लैस था, अपना दुश्मन समझ कर सिलानी के पास जोरदार हमला कर दिया था। इस लड़ाई में अनेक अंग्रेंज मारे गए थे । बहुत से बन्दी बना लिए गए । अंग्रेजों से बैलों की दांय चलवाई । 784000रू. लड़ाई में गुर्जरों के हाथ लगा । गुर्जरों का नेता हिम्मत सिंह

खटाणा इस लड़ाई में शहीद हुआ । हिम्मत सिंह खटाणा बहादुर देश भक्त तथा स्वाधीनता प्रिय था। सारे इलाके में इनके निधन पर शोक छा गया था। रिठौज गांव के बड़े ताल के पास इनका स्मारक बनाया गया । जिसे छतरी कहते हैं। दिवाली के दिन यहां हर वर्ष मेला लगता है।

शहीद भजन सिंह गुर्जर –बहलपा

भजन सिंह गुर्जर गुडगांव जिले के बहलपा गांव का निवासी था। उसका गोत्र खटाणा था । वह भजन गुर्जर के नाम से मशहूर था। स्थानीय लोग उसे डाफा भी कहते थे । उसने 1857 ई. की क्रान्ति में खटाणा खाप के गुर्जरों का नेतृत्व किया था। 1857 की क्रान्ति के दमन स्वरूप जब खटाणे गुर्जरों को जो रिठौज, सहजावास, बहलपा, खेलड़ा तथा बेरका गांव के निवासी थे, उन्होंने महरौली फांसी लगाने के लिए लेजा कर फांसी दी गई और उनके गांवों को ही तोप से उड़ा दिया गया था। उनकी जमीन जायदादें जब्त करके अपने वफादारों को पुरस्कार स्वरूप दी गई थी। क्षेत्र का एक–एक वृक्ष इस बात का साक्षी है कि उन पर शहीदों को लटकाया गया था। इस क्षेत्र के गुर्जरों को गोली से उड़ाने के लिए पहचान यह की गई थी कि गुर्जर 'ए' स्थान पर 'ओ' का उच्चाण करता है, जो गुर्जर पकड़ा जाता है, उसकी यही पहचान की जाती है और गोली से उड़ा दिया जाता था । इस तरह की मिसाल दुनियां के इतिहास में कहीं नहीं मिलती है कि बिना दोषारोपण किए सरेआम गोली का निशाना बनाया जा सके और दोषी की पहचान उच्चारण हो । सबसुख फागना निवासी भौखरी को कोले खां थाणेदार 1857 में उसे पकड़ कर ले गया था, जो वापिस नहीं आया । यह नहीं कहा सकता कि उसे गोली से उड़ाया गया अथवा काला पानी भेज दिया गया। ऐसी कहानी गांव–गांव में मौजूद है, जो 1857 की क्रान्ति की अमर यश गाथा की याद दिलाती है।

आशा देवी गूजरी –मुजफ्फरनगर

आशा देवी का जन्म सन् 1829 में पश्चिमी उत्तर प्रदेश के मुजफ्फनगर(अब शामली जिला) में हुआ था। शामली की कल्श्यान खाप में चौहान गौत्र के गुर्जरो के 84 गांव के ये आजादी की लड़ाई में कल्श्सान खाप की सिर्फ सैनिकों का लड़ना ही काफी नहीं है, बल्कि समाज के हर तबके के लोगों को कंधे से कंधा मिलाकर जंगे आजादी में शामिल होना चाहिए । इस क्रान्तिकारी सोच के तहत

गांव की इस साधारण सी महिला ने महिलाओं को संगठित कर अपनी सेना बना ली । 1857 के संग्राम में आशा देवी ने अंग्रेजों को काफी मुश्किलों में डाला और आसपास के क्षेत्रों में अपना दबदबा कायम कर लिया। आशा देवी के संगठन की ताकत का अंदाजा इस बात से ही लगाया जा सकता है कि संगठन की 250 महिला सैनिकों की शहादत के बाद ही अंग्रेजी सेना आशा देवी को युद्धभूमि में जिन्दा पकड़ सकी थी। 11 अन्य महिला सैनिकों के साथ बर्बर अंग्रेजों ने आशा देवी को फासी पर लटका दिया । अपनी बहादुरी से सोये हुए भारत में शौर्य और पराक्रम का आशा देवी ने एक बार फिर नया संचार किया

दयाराम गुर्जर –चंद्रावल, दिल्ली

दयाराम गुर्जर चन्द्रावल गांव का रहने वाला था। चन्द्रावल गांव दिल्ली शहर के बिल्कुल समीप है, जो कमलानगर से मिला हुआ है। 1857 ई. क्रान्ति में दिल्ली के आसपास के गुर्जर अपनी ऐतिहासिक परम्परा के अनुसार विदेशी हुकूमत से टकराने के लिये उतावले हो गये थे । दिल्ली के चारों ओर बसे हुए तंवर, चपराने, कसाने, बैंसले, विधुड़ी, अवाने खारी, बासटटे, लोहमोड़, बैसाख तथा डेढ़िये वंशों के गुर्जर संगठित होकर अंग्रेंजी हुकूमत को भारत से खदेड़ने और दिल्ली के मुगल बादशाह बहादुरशाह जफर को पुनः भारत का सम्राट बनाने के लिए प्राणपण से जुट गये थे। गुर्जरों ने शेरशाहपुरी मार्ग मथुरा रोड़ यमुना नदी के दोनों किनारों के साथ-साथ अधिकार करके अंग्रेंजी सरकार के डाक, तार तथा संचार साधन काट कर कुछ समय के लिए दिल्ली अंग्रेंजी राज समाप्त कर दिया था। दिल्ली के गुर्जरों ने मालगुजारी बहादुरशाह जफर मुगल बादशाह को देनी शुरू कर दी थी। दयाराम गुर्जर के नेतृत्व में गुर्जरों ने दिल्ली के मेटकाफ हाउस को कब्जे में ले लिया । जो अंग्रेजों का निवास स्थान था, यहां पर सैनिक व सिविलियम उच्च अधिकारी अपने परिवारों सहित रहा करते थे । जैसे ही क्रान्ति की लहर मेरठ से दिल्ली पहुँची, दिल्ली के गुर्जरों में भी वह जंगल की आग की तरफ फैल गई । दिल्ली के मेटकाफ हाउस में जो अंग्रेंज बच्चे और महिलायें उनको जीवनदान देकर गुर्जरों ने अपनी उच्च परम्परा का परिचय दिया था। महिलाओं और बच्चों को मारना पाप समझ कर उन्होंने जीवित छोड़ दिया था और मेटकाफ हाउस पर अधिकार कर लिया। दयाराम गुर्जर के नेतृत्व में दिल्ली के समीप वजीराबाद जो अंग्रेजों का गोला बारूद का जखीरा था, उस पर अधिकार करके बहादुरशाह जफर के हवाले कर दिया, जिसमें एक लाख

रू. की बन्दूके थी। इसी तरह अंग्रेंजी सेना की 16 गाड़ियां 7 जून 1857 को रास्ते में जाती हुई रोक कर उनको अपने कब्जे में लेकर मुगल सम्राट बहादुरशाह जफर को लाल किले में जा कर भेंट कर दी थी। विलियम म्योर के इन्टेलिजेन्स रिकार्ड के अनुसार, गुर्जरों ने अंग्रेजों के अलावा उन लोगों को भी नुकसान पहुँचाया जो अंग्रेजों का साथ दे रहे थे। 1857 की क्रान्ति के दमन चक्र के दौरान चन्द्रावल गांव को जला कर खाक कर दिया गया था सभी स्त्री पुरुषों को बेरहमी से मौत के घाट उतार दिया गया था। क्रान्तिकारियों पर मेटकाफ हाउस और वजीराबाद के शस्त्रागार को लूटने का गंभीर आरोप था । अंग्रंजों को मारने का तो आरोप था ही।

इंडियन एम्पायर के लेखक मार्टिन्स ने दिल्ली के गुर्जरों के 1857 के क्रान्ति में भाग लेने पर लिखा है, मेरठ से जो सवार दिल्ली आए थे, वे संख्या में अधिक नहीं थे। दिल्ली की साधारण जनता ने यहां तक मजदूरों ने भी इनका साथ दिया पर इस समय दिल्ली के चारों ओर की बस्तियों में फैले गुर्जर विद्रोहियों के साथ हो गए। इसी प्रकार 38वीं बिग्रेड के कमाण्डर ने लिखा है हमारी सबसे अधिक दुर्गति दिल्ली के गुर्जरों ने की है। सरजान वैलफोर ने भी लिखा है श्चारों ओर के गुर्जरों के गांव 50 वर्ष तक शांत रहने के पश्चात एकदम बिगड़ रहे और मेरठ से गदर होने के चन्द घंटों के भीतर उन्होंने तमाम जिलों को लूट लिया। यदि कोई महत्त्वपूर्ण अधिकारी उनके गांवों में शरण के लिए गया तो उसे नहीं छोड़ा और खुले आम बगावत कर दी।

बाबा शाहमल सिंह –बिजरोल

सन् 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में 4 जुलाई को पांचली और 9 जुलाई को सीकरी में हुई शहादत के बाद, मेरठ के आसपास माहौल कुछ शान्त हुआ, तो अंग्रेजों पश्चिम की ओर मुड़े जिससे कि वे दिल्ली की फील्ड फोर्स के साथ अपने संचार को सुरक्षित कर सकें। बागपत में यमुना पर बना नावों का पुल इस मायने में बहुत महत्त्वपूर्ण था। बाबा शाहमल मेरठ के पश्चिमी क्षेत्र बागपत। बड़ौत में क्रान्तिकारियों के सर्वमान्य नेता थे, उनके निर्देश पर 3 हजार गूजरों ने 21 जून 1857 को बागपत के यमुना पुल को तोड़ दिया। जींद का राजा जो कि अंग्रेजों का सहयोगी था, उसके सैनिकों ने फिर से इस पुल का निर्माण किया परन्तु 27 जून को दिल्ली से आये विद्रोही सैनिकों और गूजरों ने इसे फिर तोड़ दिया। इस प्रकार मेरठ और दिल्ली के बीच अंग्रेजों का सम्पर्क भंग हो गया था।

बाबा शाहमल बिजरोल गांव का मावी जाट जमींदार था। इससे पहले भी वह बेगम समरू के समय किसानों के हकों के लिये बगावत कर चुका था। मेरठ में कोतवाल धनसिंह गुर्जर द्वारा सैनिक विद्रोह के तुरन्त बाद बागपत बड़ौत क्षेत्र के लोगों ने बाबा शाहमल को क्रान्ति का नेता चुन लिया। 10 मई की रात में ही मेरठ जेल से छूटे हूए लोग, बाबा शाहमल के गांव पहुँच गये 11 मई को निबाली गांव में चौधरी गुलाब सिंह के घेर में एक पंचायत हुई। जिसमें बाबा शाहमल के अतिरिक्त बाघू के अचल सिंह और निबाली के माधू सिंह प्रमुख रूप से उपस्थित थे। इस पंचायत में सिसाना, बाघू, बली, खट्टा-डोला, टीकरी, सिंगावली, सैढभर, बालैनी, बूढ सैनी आदि गांवों के किसानों की उत्साही भीड़ इक्कठी हो गई। पंचायत में घाट पांचली से आये विद्राही भी थे। इस पंचायत में बाबा शाहमल को क्रान्तिकारियों ने अपना सर्वमान्य नेता चुना और उनके एक इशारे पर 10 हजार गुर्जरो ने जान की बाजी लड़ा देने का आश्वासन दिया।

अगले ही दिन बाबा शाहमल ने बंजारों के एक कारवां पर हमला कर 500 खच्चरों पर लदा सामान अपने कब्जे में ले लिया। उसके तुरन्त बाद बड़ौत तहसील पर घावा बोल इसे नेस्तनाबूत कर दिया और बाजार को लूट लिया। इस धावे में अहैडा गांव के क्रान्तिकारी शाहमल सिंह के साथ थे। इस घटना के बाद बाबा शाहमल को मुगल बादशाह ने बागपत-बड़ौत परगने को सूबेदार बना दिया। मई-जून के महीने में बावली आदि गांवों के जाट भी उसके साथ जुड़ गये। मेरठ डिस्ट्रिक्ट गजेटेयर के अनुसार मीतल के नेतृत्व में 800 गूजरों ने बागपत पर हमला कर दिया। बागपत के लोगों ने आरम्भ में प्रतिरोघ किया और मीतल घायल हो गया। अतत: जबरदस्त संघर्ष के बाद बागपत के लोगों ने बाबा शाहमल की सत्ता को स्वीकार कर लिया। बागपत बड़ौत क्षेत्र में दिन पर दिन फैलते विद्रोह ने अंग्रेजों की चिन्ता बढ़ा दी। बागपत में नावों का पुंल टूटने के अतिरिक्त एक बात जिसने अंग्रेजों की मुश्किलों को सबसे ज्यादा बढ़ा दिया वह यह थी कि बागपत-बड़ौत क्षेत्र से लगातार, अनाज आदि रसद इक्कट्ठा करके दिल्ली के विद्रोहियों को भेजी जा रही थी। इस रसद की आपूर्ति के बिना दिल्ली के विद्रोही क्रान्तिकारी अधिक दिन तक नहीं टिक सकते थे। इस स्थिति में अंग्रेज और अधिक दिन तक बाबा शाहमल की तरफ से बेपरवाह नहीं रह सकते थे। 16 जुलाई को खाकी रिसाले ने डनलप के नेतृत्व में बागपत क्षेत्र के लिये मार्च किया। रिसाले में लगभग 200 सिपाही थे, जिसमे 2 तोप, 8 गोलन्दाज, 40

राइफल धारी, 50 घुड़सवार, 27 नजीब एवं अन्य सिपाही थे। जब रिसाला हिन्डन के पास पहुँचा तो उन्हें पता चला कि शाहमल सिंह अपने 3000 साथियों के साथ बासौद गांव में है और अंग्रेजों के सहयोगी गांव डोला पर कल सुबह हमला करने वाले हैं। अंग्रेज 17 जुलाई की भौर में बासौद पहुँच गये। लेकिन तब तक बाबा शाहमल अपने साथियों के साथ जा चुके थे। अंग्रेजों को बासौद में 8000 मन गेहूं-दाल आदि मिला जो दिल्ली के विद्रोहियों को भेजा जाने वाला था। अंग्रेजों को गांव में जो भी मिला उसे गोली मार दी या फिर तलवार से काट दिया और गांव को आग के हवाले कर दिया। मुस्लिम गांव बासौद में लगभग 150 व्यक्ति शहीद हुए।

18 जुलाई की सुबह खाकी रिसाला डौला से पूर्वी यमुना नहर के किनारे-किनारे बड़ौत की तरफ चल दिया। यह रास्ता जाटों की सलकलैन गौत्र के चौरासी गांवों की तरफ जाता है, इसे लोग चौरासी देस कहते हैं। डनलप कुछ सहयोगियों के साथ बर्का गांव में पहुँचा, तो लोगों ने उन्हें चेताया कि जितनी तेज भाग सकते हो भाग कर अपनी जान बचा लो क्योंकि शाहमल सिंह ने अपने साथ चौरासी देस को खड़ा कर लिया है। तभी शाहमल सिंह का भतीजा भगत सिंह उर्फ भगता अपने साथियों के साथ वहाँ पहुँच गया और उसके साथ एक छोटे से मुकाबले में डनलप की जान पर बन आई और वह अपनी जान बचाने के लिए बड़ौत की तरफ भाग लिया। भगता ने उसका बड़ौत तक पीछा किया। अंग्रेजों ने देखा कि पूरा क्षेत्र उनके खिलाफ खड़ा हो गया है। चारों तरफ ढोल नगाड़े बज रहे थे और हथियारबन्द लोगों के झुण्ड के झुण्ड बड़ौत की तरफ बढ़ रहे थे।

बड़ौत में क्रान्तिकारियों ने एक बाग में मोर्चा लगा रखा था, करीब 3500 क्रान्तिकारी बाबा शाहमल के साथ वहां अंग्रेजों से भिड़ने को तैयार थे। भारतीय बहादुरी से लड़े परन्तु भारतीयों की देशी बंदूकें अंग्रेजी राइफले और तोपों का मुकाबला न कर सकीं। भारतीय जान हथेली पर लेकर लड़े पर विजय आधुनिक हथियारों की हुई। इस लड़ाई में करीब 200 भारतीय शहीद हुए। जिनमें बाबा शाहमल भी थे, जिन्हे एक अंग्रेज मि. तोन्नाकी ने दो भारतीय सिपाहियों की मदद से मारा था। अंग्रेजों ने बाबा शाहमल का सिर काट कर एक लम्बे भाले पर लटका दिया। बाबा का सिर जहाँ अंग्रेजों के लिए विजयी चिन्ह था, वहीं भारतीयों के लिए वह क्रान्तिकारी ललकार और सम्मान का प्रतीक था। इसलिए

उन्होनें इसे वापिस पाने के लिए अंग्रेजों का हिंडन तक पीछा किया। बाबा शाहमल शहीद हो गये किन्तु क्रान्ति जिंदा रही, एक महीने बाद उनके पोते लिज्जामल के नेतृत्व में बागपत-बड़ौत क्षेत्र में फिर से विद्रोह हो गया।

सूबा देवहंस कषाणा (देवा गुर्जर) –धौलपुर

देवहंस कषाणा ने मल्ल विद्या, लाठी, बनैती की कला सीखी और देवहंस की बाड़ी, बरोड़ी , धौलपुर, राजाखेड़ा, सेंपऊ-आगरा, मथुरा के दंगलों में कुश्ती लड़ने की धाक जम गई। देवहंस के शरीर सौष्टव व वीरता की प्रशंसा सुनकर राणा भागवत सिंह ने उसे अंग्रेजी फौज में भर्ती कराके प्रशिक्षण दिलाया । अंग्रेजों को यह मालूम नहीं था कि यह सैनिक ट्रेनिंग लेकर 1857 ई. में आगरे क्षेत्र से उनके राज्य को समाप्त कर देगा । धौलपुर के राणा भगवत सिंह ने अपनी फौज का उसे सर्वोच्च सेनापति बना दिया। धौलपुर का शासक भगवंत सिंह था जिसने अंग्रेजों का साथ दिया देवहंस ने अश्वारोही दल बढ़ा कर फौजी छावनी का रूप दे दिया और देवहंस टंटकोर नामक की अलग ट्रांसपोर्ट कमान कायम की । जिसे धौलपुर के अंग्रेज पोलिटिकल ऐजेंट ने वेलेजली की सहायक प्रथा नीति के विरुद्ध माना था। जिसकी शिकायत उसने बड़े लाट साहब से की थी।

देवहंस ने 6 महीने में गूजरों की विशेष फौज तैयार की उसे प्रशिक्षण देकर और फौज साथ लेकर सरमथुरा पर धावा बोल दिया । किले को ध्वस्त करके धूल में मिला दिया और राजा को कैद कर लिया। झिरी सरमथुरा के किले की किवाड़ उतार लाए थे जो बाद में इन्होंने अपने किले देवहंस गढ़ में लगाए गए थे जो आज भी देवहंस की विजय गाथा के प्रतीक हैं।

देवहंस ने 1857 की क्रान्ति में आगरा जिले की 3/4 तहसीलों पर अधिकार करके इस क्षेत्र में अंग्रेंजी राज को समाप्त सा कर दिया था। दमनचक्र के दौरान अंग्रेज हकूमत ने अपने वफादार जमींदार हर नारायण की सहायता लेकर देवहंस को हराना चाहा मगर उसे स्वयं नीचा देखना पड़ा । इस लड़ाई में 3000 बन्दूकें, 2 स्टेनगन तथा 2 लाख की सम्पति सूबा देवहंस के हाथ लगी । इण्डियन एम्पायर के लेखक मार्टिन्स ने इस सम्बन्ध में लिखा है गुर्जरों के सिवाय हिन्दू जनता में किसी ने भी विद्रोहियों का साथ नहीं दिया। विद्रोह की आग घंटों में मेरठ से दिल्ली, दादरी, बुलन्दशहर, आगरा, सहारनपुर तक सामूहिक रूप से फैल गई । धौलपुर के सूबा देवहंस ने आगरे की तहसीलों पर कब्जा कर लिया ।

झिरी सरमथुरा की विजय के पश्चात देवहंस को धौलपुर राज्य का सूबा नियुक्त हुआ और धौलपुर का राजा बन गया और वह सूबा देवहंस के नाम से प्रसिद्ध हो गया।

सूबा देवहंस ने देवहंसगढ़ नाम का किला बनाया जो धौलपुर से लगभग 15 मील दूर है। किला बहुत भव्य एवं सुन्दर है। किले का मुख्य द्वार मुगलकालीन जैसा है, परन्तु उसकी बनावट भारतीय हिन्दू किलों के समान है। द्वार पर द्वारपालों के लिए प्रकोष्ठ बने हैं। इस द्वार के ऊपर पंचखंडा महल जो दरबार हाल रहा होगा। दुर्ग लाल पत्थर का बना है, खम्भों पर नक्काशी शहतीर डालकर पट्टियों से छत बनाई गई है। शिल्पकला देखते ही बनती है। सारे चौक में चौकोर बावड़ी है जिसमें पानी भरा हुआ है। इस चौक से लगी एक के बाद एक तीन हवेली हैं, जो रनिवास और रहवास के लिए काम में लाई जाती थी हवेली के अन्दर अनाज के लिए पत्थर की कोठी बनी हुई है। किले की चारदीवारी 20 फुट चौड़ी है चारों ओर गुम्बज हैं। किले के पश्चिम में अर्ध कलाकार एक लम्बा चौड़ा खाल है जिसे उतर-पूर्व की ओर बांध की तरह बांधा है। इसमें पानी भरा रहता था। पूर्व की ओर भी एक तालाब है। दक्षिण का भाग खुला है। सामरिक दृष्टि से सूबा देवहंस का किला बहुत महत्त्वपूर्ण है। यह किला देवहंस के गांव कुदिन्नना से लगभग 3 मील दूर है।

हिंडन का युद्ध

1857 के स्वतन्त्रता संग्राम में मेरठ और दिल्ली की सीमा पर हिंडन नदी के किनारे 30, 31 मई 1857 को राष्ट्रवादी सेना और अंग्रेजों के बीच एक ऐतिहासिक युद्ध हुआ था जिसमें भारतीयों ने मुगल शहजादा मिर्जा अबू बक्र, दादरी के राजा राव उमराव सिंह गुर्जर और मालागढ़ के नबाब वलीदाद खान के नेतृत्व में अंग्रेजी सेना के दांत खट्टे कर दिये थे। जैसा कि विदित है कि 10 मई 1857 को मेरठ में देशी सिपाहियों ने विद्रोह कर दिया और रात में ही वो दिल्ली कूच कर गए थे। 11 मई को इन्होंने अन्तिम मुगल बादशाह बहादुर शाह जफर को हिन्दुस्तान का बादशाह घोषित कर दिया और अंग्रेजों को दिल्ली के बाहर खदेड़ दिया। अंग्रेजों ने दिल्ली के बाहर रिज क्षेत्र में शरण ले ली। तत्कालीन परिस्थितियों में दिल्ली की क्रान्तिकारी सरकार के लिए मेरठ क्षेत्र बहुत महत्त्वपूर्ण था। क्योंकि मेरठ से कोतवाल धनसिंह गुर्जर द्वारा विद्रोह की शुरुआत हुई थी जो पूरे मेरठ क्षेत्र में, सहारनपुर से लेकर बुलन्दशहर तक का

हिन्दू-मुस्लिम, किसान-मजदूर सभी आमजन, इस अंग्रेज विरोधी संघर्ष में कूद पड़े थे। ब्रिटिश विरोधी संघर्ष ने यहाँ जन आन्दोलन और जनक्रान्ति का रूप धारण कर लिया था। मेरठ क्षेत्र दिल्ली के क्रान्तिकारियों को जन, धन एवं अनाज (रसद) की भारी मदद पहुँच रहा था। स्थिति को देखते हुए मुगल बादशाह ने मालागढ़ के नवाब वलीदाद खान को इस क्षेत्र का नायब सूबेदार बना दिया, उसने इस क्षेत्र की क्रान्तिकारी गतिविधियों को गति प्रदान करने के लिये दादरी में क्रान्तिकारियों के नेता राजा उमराव सिंह गुर्जर से सम्पर्क साधा , जिसने दिल्ली की क्रान्तिकारी सरकार का पूरा साथ देने का वादा किया। मेरठ में अंग्रेजों के बीच अफवाह थी कि विद्रोही सैनिक, बड़ी भारी संख्या में, मेरठ पर हमला कर सकते हैं। अंग्रेज मेरठ को बचाने के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ थे क्योंकि मेरठ पूरे डिवीजन का केन्द्र था। मेरठ को आधार बनाकर ही अंग्रेज इस क्षेत्र में क्रान्ति का दमन कर सकते थे। अंग्रेज इस सम्भावित हमले से रक्षा की तैयारी में जुए गए। मेरठ होकर वापिस गए दो व्यक्तियों ने बहादुर शाह जफर को बताया कि 1000 यूरोपीय सैनिकों ने सूरज कुण्ड पर एक किले का निर्माण कर लिया है। इस प्रकार दोनों और युद्ध की तैयारियां जोरों पर थीं। तकरीबन 20 मई 1857 को भारतीयों ने हिंडन नदी का पुल तोड़ दिया जिससे दिल्ली के रिज क्षेत्र में शरण लिए अंग्रेजों का सम्पर्क मेरठ और उत्तरी जिलों से टूट गया। इस बीच युद्ध का अवसर आ गया जब दिल्ली को पुनः जीतने के लिए अंग्रेजों की एक विशाल सेना प्रधान सेनापति बर्नाड के नेतृत्व में अम्बाला छावनी से चल पड़ी। सेनापति बर्नाड ने दिल्ली पर धावा बोलने से पहले मेरठ की अंग्रेज सेना को साथ ले लेने का निर्णय किया। अतः 30 मई 1857 को जनरल आर्कलेड विल्सन की अध्यक्षता में मेरठ की अंग्रेज सेना बर्नाड का साथ देने के लिए गाजियाबाद के निकट हिंडन नदी के तट पर पहुँच गई। किन्तु इन दोनों सेनाओं को मिलने से रोकने के लिए क्रान्तिकारी सैनिकों और आम जनता ने भी हिन्डन नदी के दूसरी तरफ मोर्चा लगा रखा था। जनरल विल्सन की सेना में 60वीं शाही राइफल्स की 4 कम्पनियां, कार्बाइनरों की 2 स्क्वाड्रन, हल्की फील्ड बैट्री, ट्रुप हार्स आर्टिलरी, 1 कम्पनी हिन्दुस्तानी सैपर्स एवं माईनर्स, 100 तोपची एवं हथगोला विंग के सिपाही थे। अंग्रेजी सेना अपनी सैनिक व्यवस्था बनाने का प्रयास कर रही थी कि क्रान्तिकारी सेना ने उन पर तोपों से आक्रमण कर दिया। भारतीयों की राष्ट्रवादी सेना की कमान मुगल शहजादे मिर्जा अबू बक्र दादरी के

राजा उमरावसिंह एवं नवाब वलीदाद खान के हाथ में थी। भारतीयों की सेना में बहुत से घुड़सवार, पैदल और घुड़सवार तोपची थे। भारतीयों ने तोपें पुल के सामने एक ऊँचे टीले पर लगा रखी थी। भारतीयों की गोलाबारी ने अंग्रेजी सेना के अगले भाग को क्षतिग्रस्त कर दिया। अंग्रेजों ने रणनीति बदलते हुए भारतीय सेना के बायें भाग पर जोरदार हमला बोल दिया। इस हमले के लिए अंग्रेजों ने 18 पौंड के तोपखाने, फील्ड बैट्री और घुड़सवार तोपखाने का प्रयोग किया। इससे क्रान्तिकारी सेना को पीछे हटना पड़ा और उसकी पाँच तोपें वहीं छूट गईं। जैसे ही अंग्रेजी सेना इन तोपों को कब्जे में लेने के लिए वहाँ पहुँची, वहीं छुपे एक भारतीय सिपाही ने बारूद में आग लगा दी, जिससे एक भयंकर विस्फोट में अंग्रेज सेनापति कै. एण्ड्रूज और 10 अंग्रेज सैनिक मारे गए। इस प्रकार इस वीर भारतीय ने अपने प्राणों की आहुति देकर अंग्रेजों से भी अपने साहस और देशभक्ति का लोहा मनवा लिया। एक अंग्रेज अधिकारी ने लिखा था कि "ऐसे लोगों से ही युद्ध का इतिहास चमत्कृत होता है। अगले दिन भारतीयों ने दोपहर में अंग्रेजी सेना पर हमला बोल दिया यह बेहद गर्म दिन था और अंग्रेज गर्मी से बेहाल हो रहे थे। भारतीयों ने हिंडन के निकट एक टीले से तोपों के गोलों की वर्षा कर दी। अंग्रेजों ने जवाबी गोलाबारी की। 2 घंटे चली इस गोलाबारी में लै. नैपियर और 60वीं रायफल्स के 11 जवान मारे गए तथा बहुत से अंग्रेज घायल हो गए। अंग्रेज भारतीयों से लड़ते-लड़ते पस्त हो गए, हालांकि अंग्रेज सेनापति जनरल विल्सन ने इसके लिए भयंकर गर्मी को दोषी माना। भारतीय भी एक अंग्रेज परस्त गांव को आग लगाकर सुरक्षित लौट गए। 1 जून 1851 को अंग्रेजों की मदद को गोरखा पलटन हिंडन पहुँच गई तिस पर भी अंग्रेजी सेना आगे बढ़ने का साहस नहीं कर सकी और बागपत की तरफ मुड़ गई। इस प्रकार भारतीयों ने 30, 31 मई 1857 को लड़े गए हिंडन के युद्ध में साहस और देशभक्ति की एक ऐसी कहानी लिख दी, जिसमें दो अंग्रेजी सेनाओं के न मिलने देने के लक्ष्य को पूरा करते हुए, उन्होंने अंग्रेजी बहादुरी के दर्प को चूर-चूर कर दिया।

1857 की क्रांति के समय के भारतीय राज्य।

1824 का विशाल विद्रोह (1857 की क्रान्ति का पूर्वाभ्यास)

1757 ई. में प्लासी के युद्व के फलस्वरूप भारत में अंग्रेजी राज्य की स्थापना के साथ ही भारत में उसका विरोध प्रारम्भ हो गया और 1857 की क्रान्ति तक भारत में अनेक संघर्ष हुए, जैसे सन् 1818 में खानदेश के भीलों और

राजस्थान के मेरो ने संघर्ष किया। सन् 1824 में बर्मा युद्ध में अंग्रेजों की असफलता और उसके साथ ही बैरकपुर छावनी में 42-नैटिव इन्फैन्ट्री द्वारा किये गये विद्रोह में उत्साहित होकर भारतीयों ने एकसाथ सहारनपुर-हरिद्वार क्षेत्र, रोहतक और गुजरात में कोली बाहुल्य क्षेत्र में जनविद्रोह कर स्वतन्त्रता प्राप्ति के प्रयास किये। तीनो स्थानों पर भारतीयों ने जमकर अंग्रेजी राज्य से टक्कर ली और अपने परम्परागत सामंती वर्ग के नेतृत्व में अंग्रेजी राज्य को उखाड़-फेंकने का प्रयास किया। जिस प्रकार सन् 1857 में क्रान्ति सैनिक विद्रोह से शुरू हुई थी और बाद में जन विद्रोह में परिवर्तित हो गयी थी। इसी प्रकार का एक घटना क्रम सन् 1824 में घटित हुआ। कुछ इतिहासकारों ने इन घटनाओं के साम्य के आधार पर सन 1824 की क्रान्ति को सन 1857 के स्वतंत्रता संग्राम का अग्रगामी और पूर्वाभ्यास भी कहा है। सन् 1824 में सहारनपुर-हरिद्वार क्षेत्र में स्वतन्त्रता-संग्राम की ज्वाला उपरोक्त अन्य स्थानों की तुलना में अधिक तीव्र थी।

आधुनिक हरिद्वार जनपद में रूड़की शहर के पूर्व में लंढौरा नाम का एक कस्बा है यह कस्बा सन् 1947 तक पंवार वंश के गुर्जर राजाओं की राजधानी रहा है। अपने चरमोत्कर्ष में लंढौरा रियासत में 804 गाँव थे और यहां के शासकों का प्रभाव समूचे पश्चिम उत्तर प्रदेश में था। हरियाणा के करनाल क्षेत्र और गढ़वाल में भी इस वंश के शासकों का व्यापक प्रभाव था। सन् 1803 में अंग्रेजों ने ग्वालियर के सिन्धियाओं को परास्त कर समस्त उत्तर प्रदेश को उनसे युद्ध हर्जने के रूप में प्राप्त कर लिया। अब इस क्षेत्र में विद्यमान पंवार वंश की लंढौरा, नागर गुर्जर वंश की बहसूमा (मेरठ), भाटी गुर्जर वंश की दादरी (गौतम बुद्ध नगर), जाटों की कुचेसर (गढ़ क्षेत्र) इत्यादि सभी ताकतवर रियासतें अंग्रेजों की आँखों में कांटे की तरह चुभले लगीं। सन् 1813 में लंढौरा के राजा रामदयाल सिंह गुर्जर की मृत्यु हो गयी। उनके उत्तराधिकारी के प्रश्न पर राज परिवार में गहरे मतभेद उत्पन्न हो गये। स्थिति का लाभ उठाते हुये अंग्रेजी सरकार ने रियासत को भिन्न दावेदारों में बांट दिया और रियासत के बड़े हिस्से को अपने राज्य में मिला लिया। लंढौरा रियासत का ही ताल्लुका था, कुंजा-बहादरपुर, जोकि सहारनपुर-रूड़की मार्ग पर भगवानपुर के निकट स्थित है, इस ताल्लुके में 44 गाँव थे सन् 1819 में विजय सिंह गुर्जर यहां के ताल्लुकेदार बने। विजय सिंह लंढौरा राज परिवार के निकट सम्बन्धी थे। विजय सिंह के मन में अंग्रेजों की साम्राज्यवादी नीतियों के विरुद्ध भयंकर आक्रोश था। वह लंढौरा रियासत के विभाजन को कभी भी मन से स्वीकार न कर सके थे।

दूसरी ओर इस क्षेत्र में शासन के वित्तीय कुप्रबन्ध और कई वर्षों के अनवरत सूखे ने स्थिति को किसानों के लिए अति विषम बना दिया, बढ़ते राजस्व और अंग्रेजों के अत्याचार ने उन्हें विद्रोह करने के लिए मजबूर कर दिया। क्षेत्र के किसान अंग्रेजों की शोषणकारी कठोर राजस्व नीति से त्रस्त थे और संघर्ष करने के लिए तैयार थे। किसानों के बीच में बहुत से क्रान्तिकारी संगठन जन्म ले चुके थे। जो ब्रिटिश शासन के विरुद्व कार्यरत थे। ये संगठन सैन्य पद्वति पर आधारित फौजी दस्तों के समान थे, इनके सदस्य भालों और तलवारों से सुसज्जित रहते थे, तथा आवश्यकता पड़ने पर किसी भी छोटी-मोटी सेना का मुकाबला कर सकते थे। अत्याचारी विदेशी शासन अपने विरुद्व उठ खड़े होने वाले इन सैनिक ढंग के क्रान्तिकारी संगठनों को डकैतों का गिरोह कहते थे। लेकिन अंग्रेजी राज्य से त्रस्त जनता का भरपूर समर्थन इन संगठनों को प्राप्त होता रहा। इन संगठनों में एक क्रान्तिकारी संगठन का प्रमुख नेता कल्याण सिंह गुर्जर उर्फ कलुआ गुर्जर था। यह संगठन देहरादून क्षेत्र में सक्रिय था, और यहां उसने अंग्रेजी राज्य की चूलें हिला रखी थीं दूसरे संगठन के प्रमुख कुवर गुर्जर और भूरे गुर्जर थे। यह संगठन सहारनपुर क्षेत्र में सक्रिय था और अंग्रेजों के लिए सिरदर्द बना हुआ था। सहारनपुर-हरिद्वार-देहरादून क्षेत्र इस प्रकार से बारूद का ढेर बन चुका था। जहां कभी भी ब्रिटिश विरोधी विस्फोट हो सकता था।

कुंजा-बहादरपुर के ताल्लुकेदार विजय सिंह स्थिति पर नजर रखे हुए थे। विजय सिंह के अपनी तरफ से पहल कर पश्चिम उत्तर प्रदेश के सभी अंग्रेज विरोधी जमीदारों, ताल्लुकेदारों, मुखियाओं, क्रान्तिकारी संगठनों से सम्पर्क स्थापित किया और एक सशस्त्र क्रान्ति के माध्यम से अंग्रेजों को खदेड़ देने की योजना उनके समक्ष रखी। विजय सिंह के आह्वान पर ब्रिटिश किसानों की एक आम सभा भगवानपुर जिला-सहारनपुर में बुलायी गयी। सभा में सहारनपुर, हरिद्वार, देहरादून-मुरादाबाद, मेरठ और यमुना पार हरियाणा के किसानों ने भाग लिया। सभा में उपस्थित सभी किसानों ने हर्षोल्लास से विजय सिंह की क्रान्तिकारी योजना को स्वीकार कर लिया। सभा ने विजय सिंह को भावी मुक्ति संग्राम का नेतृत्व सभालने का आग्रह किया, जिसे उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया। समाज के मुखियाओं ने विजय सिंह को भावी स्वतन्त्रता संग्राम में पूरी सहायता प्रदान करने का आश्वासन दिया। कल्याण सिंह उर्फ कलुआ गुर्जर ने भी विजय सिंह का नेतृत्व स्वीकार कर लिया। अब विजय सिंह अंग्रेजों से दो-दो हाथ करने के लिए किसी अच्छे अवसर की ताक में थे। सन् 1824 में बर्मा

के युद्ध में अंग्रेजों की हार के समाचार ने स्वतन्त्रता प्रेमी विजय सिंह के मन में उत्साह पैदा कर दिया। तभी बैरकपुर में भारतीय सेना ने अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। समय को अपने अनुकूल समझ विजयसिंह की योजनानुसार क्षेत्रीय किसानों ने स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी।

स्वतन्त्रता संग्राम के आरम्भिक दौर में कल्याण सिंह अपने सैन्य दस्ते के साथ शिवालिक की पहाड़ियों में सक्रिय रहा और देहरादून क्षेत्र में उसने अच्छा प्रभाव स्थापित कर लिया। नवादा गाँव के शेखजमां और सैयाजमां अंग्रेजों के खास मुखबिर थे, और क्रान्तिकारियों की गतिविधियों की गुप्त सूचना अंग्रेजों को देते रहते थे। कल्याणसिंह ने नवादा गाँव पर आक्रमण कर इन गद्दारों को उचित दण्ड प्रदान किया, और उनकी सम्पत्ति जब्त कर ली। नवादा ग्राम की इस घटना से सहायक मजिस्ट्रेट शोर के लिये चेतावनी का कार्य किया और उसे अंग्रेजी राज्य के विरुद्ध एक पूर्ण सशस्त्र क्रान्ति के लक्षण दिखाई पड़ने लगे। 30 मई 1824 को कल्याण सिंह ने रायपुर ग्राम पर आक्रमण कर दिया और रायपुर में अंग्रेज परस्त गद्दारों को गिरफ्तार कर देहरादून ले गया तथा देहरादून के जिला मुख्यालय के निकट उन्हें कड़ी सजा दी। कल्याण सिंह के इस चुनौती पूर्ण व्यवहार से सहायक मजिस्ट्रेट शोर बुरी तरह बौखला गया स्थिति की गम्भीरता को देखते हुये उसने सिरमोर बटालियन बुला ली। कल्याण सिंह के फौजी दस्ते की ताकत सिरमौर बटालियन से काफी कम थी अतः कल्याण सिंह ने देहरादून क्षेत्र छोड़ दिया, और उसके स्थान पर सहारनपुर, ज्वालापुर और करतापुर को अपनी क्रान्तिकारी गतिविधियों का केन्द्र बनाया। 7 सितम्बर सन 1824 को करता पुर पुलिस चौकी को नष्ट कर हथियार जब्त कर लिये। पांच दिन पश्चात उसने भगवानपुर पर आक्रमण कर उसे जीत लिया। सहारनपुर के ज्वाइन्ट मजिस्ट्रेट ग्रिन्डल ने घटना की जांच के आदेश कर दिये। जांच में क्रान्तिकारी गतिविधियों के कुंजा के किले से संचालित होने का तथ्य प्रकाश में आया। अब ग्रिन्डल ने विजय सिंह के नाम सम्मन जारी कर दिया, जिस पर विजयसिंह ने ध्यान नहीं दिया और निर्णायक युद्ध की तैयारी आरम्भ कर दी।

एक अक्टूबर सन् 1824 को आधुनिक शस्त्रों से सुसज्जित 200 पुलिस रक्षकों की कड़ी सुरक्षा में सरकारी खजाना ज्वालापुर से सहारनपुर जा रहा था। कल्याण सिंह के नेतृत्व में क्रान्तिकारियों ने काला हाथा नामक स्थान पर इस पुलिस दल पर हमला कर दिया। युद्ध में अंग्रेजी पुलिस बुरी तरह परास्त हुई और

खजाना छोड़ कर भाग गयी। अब विजय सिंह और कल्याण सिंह ने एक स्वदेशी राज्य की घोषणा कर दी और अपने नये राज्य को स्थिर करने के लिए अनेक फरमान जारी किये। रायपुर सहित बहुत से गाँवों ने राजस्व देना स्वीकार कर लिया चारो ओर आजादी की हवा चलने लगी और अंग्रेजी राज्य इस क्षेत्र से सिमटता प्रतीत होने लगा। कल्याण सिंह ने स्वतन्त्रता संग्राम को नवीन शक्ति प्रदान करने के उददेश्य से सहारनपुर जेल में बन्द स्वतन्त्रता सेनानियों को जेल तोड़कर मुक्त करने की योजना बनायी। उसने सहारनपुर शहर पर भी हमला कर उसे अंग्रेजी राज से आजाद कराने का फैसला किया।

क्रान्तिकारियों की इस कार्य योजना से अंग्रेजी प्रशासन चिन्तित हो उठा, और बाहर से भारी सेना बुला ली गयी। कैप्टन यंग को ब्रिटिश सेना की कमान सौपी गयी। अंग्रेजी सेना शीघ्र ही कुंजा के निकट सिकन्दरपुर पहुँच गयी। राजा विजय सिंह ने किले के भीतर और कल्याण सिंह ने किले के बाहर मोर्चा सम्भाला। किले में भारतीयों के पास दो तोपें थीं। कैप्टन यंग के नेतृत्व में अंग्रेजी सेना जिसमें मुख्यतः गोरखे थे, कुंजा के काफी निकट आ चुकी थी। 03 अक्टूबर को ब्रिटिश सेना ने अचानक हमला कर स्वतन्तत्र सेनानियों को चौंका दिया। भारतीयों ने स्थिति पर नियन्त्रण पाते हुए जमीन पर लेटकर मोर्चा सम्भाल लिये और जवाबी कार्यवाही शुरू कर दी। भयंकर युद्व छिड़ गया, दुर्भाग्यवंश इस संघर्ष में लड़ने वाले स्वतन्त्रता सेनानियों का सबसे बहादुर योद्धा कल्याण सिंह अंग्रेजों के इस पहले ही हमले में शहीद हो गया पूरे पश्चिमी उत्तर प्रदेश में कुंजा में लड़े जा रहे स्वतन्त्रता संग्राम का समाचार जंगल की आग के समान तीव्र गति से फैल गया, मेरठ की बहसूमा और दादरी रियासत के राजा भी अपनी सेनाओं के साथ गुप्त रूप से कुंजा के लिए कूच कर गये। बागपत और मुजफ्फरनगर के आसपास बसे चौहान गोत्र के कल्सियान गुर्जर किसान भी भारी मात्रा में इस स्वतन्त्रता संग्राम में राजा विजयसिंह की मदद के लिये निकल पड़े। अंग्रेजों को जब इस हलचल का पता लगा तो उनके पैरों के नीचे की जमीन निकल गयी। उन्होंने बड़ी चालाकी से कार्य किया और कल्याण सिंह के मारे जाने का समाचार पूरे पश्चिमी उत्तर प्रदेश में फैला दिया। साथ ही कुंजा के किले के पतन और स्वतन्त्रता सेनानियों की हार की झूठी अफवाह भी उड़ा दी। अंग्रेजों की चाल सफल रही। अफवाहों से प्रभावित होकर अन्य क्षेत्रों से आने वाले स्वतन्त्रता सेनानी हतोत्साहित हो गये, और निराश होकर अपने क्षेत्रों को लौट गये। अंग्रेजों

ने एक रैम को सुधार कर तोप का काम लिया। और बमबारी प्रारम्भ कर दी। अंग्रेजों ने तोप से किले को उड़ाने का प्रयास किया। किले की दीवार कच्ची मिट्टी की बनी थी जिस पर तोप के गोले विशेष प्रभाव न डाल सके। परन्तु अन्त में तोप से किले के दरवाजे को तोड़ दिया गया। अब अंग्रेजों की गोरखा सेना किले में घुसने में सफल हो गयी। दोनों ओर से भीषण युद्ध हुआ। सहायक मजिस्ट्रेट मि. शोर युद्ध में बुरी तरह से घायल हो गया। परन्तु विजय श्री अन्ततः अंग्रेजों को प्राप्त हुई। राजा विजय सिंह बहादुरी से लड़ते हुए शहीद हो गये।

भारतीयों की हार की वजह मुख्यतः आधुनिक हथियारों की कमी थी, वे अधिकांशतः तलवार, भाले बन्दूकों जैसे हथियारों से लड़े। जबकि ब्रिटिश सेना के पास उस समय की आधुनिक रायफल (303 बोर) और कारबाइने थी। इस पर भी भारतीय बड़ी बहादुरी से लड़े, और उन्होंने आखिरी सांस तक अंग्रेजों का मुकाबला किया। ब्रिटिश सरकार के आकड़ों के अनुसार 152 स्वतन्त्रता सेनानी शहीद हुए, 129 जख्मी हुए और 40 गिरफ्तार किये गये। लेकिन वास्तविकता में शहीदों की संख्या काफी अधिक थी। भारतीय क्रान्तिकारियों की शहादत से भी अंग्रेजी सेना का दिल नहीं भरा। और युद्ध के बाद उन्होंने कुंजा के किले की दिवारों को भी गिरा दिया। ब्रिटिश सेना विजय उत्सव मनाती हुई देहरादून पहुँची, वह अपने साथ क्रान्तिकारियों की दो तोपें, कल्याण सिंह का सिंर ओर विजय सिंह का वक्षस्थल भी ले गये। ये तोपें देहरादून के परेडस्थल पर रख दी गयीं। भारतीयों को आंतकित करने के लिए ब्रिटिश सरकार ने राजा विजय सिंह का वक्षस्थल और कल्याणसिंह का सिर एक लोहे के पिजरे में रखकर देहरादून जेल के फाटक पर लटका दिया। कल्याण सिंह के युद्ध की प्रारम्भिक अवस्था में ही शहादत के कारण क्रान्ति अपने शैशव काल में ही समाप्त हो गयी। कैप्टन यंग ने कुंजा के युद्ध के बाद स्वीकार किया था कि यदि इस विद्रोह को तीव्र गति से न दबाया गया होता, तो दो दिन के समय में ही इस युद्ध को हजारों अन्य लोगों का समर्थन प्राप्त हो जाता। और यह विद्रोह समस्त पश्चिम उत्तर प्रदेश में फैल जाता।

युद्ध का प्रारम्भ

विद्रोह प्रारम्भ होने के कई महीनों पहले से तनाव का वातावरण बन गया था और कई विद्रोहजनक घटनायें घटीं। क्रान्ति की शुरुआत 10 मई 1857 को मेरठ में हुई जब मेरठ की सदर कोतवाली में तैनात कोतवाल धनसिंह गुर्जर ने

अपनी योजना के अनुसार देर रात 2 बजे जेल तोड़कर 836 कैदियों को छुड़ाकर जेल को आग लगा दी। धनसिंह गुर्जर के आह्वान पर उनके अपने गांव पांचली सहित गांव नंगला, गगोल, नूरनगर, लिसाड़ी, चुड़ियाला, डोलना आदि गांवों के हजारों लोग सदर कोतवाली में एकत्र हो गए। रात में ही विद्रोही सैनिक दिल्ली कूच कर गए और विद्रोह मेरठ के देहात में फैल गया।

1857 की क्रान्ति के जनक –अमर शहीद कोतवाल धनसिंह गुर्जर

इतिहास की पुस्तकें कहती हैं कि 1857 की क्रान्ति का प्रारम्भ/आरम्भ "10 मई 1857" को "मेरठ" में हुआ था और इसको समस्त भारतवासी 10 मई को प्रत्येक वर्ष "क्रान्ति दिवस" के रूप में मनाते हैं, क्रान्ति की शुरुआत करने का श्रेय अमर शहीद कोतवाल धनसिंह गुर्जर को जाता है उस दिन मेरठ में धनसिंह के नेतृत्व में विद्रोही सैनिकों और पुलिस फोर्स ने अंग्रेजों के विरुद्ध क्रान्तिकारी घटनाओं को अंजाम दिया। धन सिंह कोतवाल जनता के सम्पर्क में थे, धनसिंह का संदेश मिलते ही हजारों की संख्या में भारतीय क्रान्तिकारी रात में मेरठ पहुँच गये। विद्रोह की खबर मिलते ही आसपास के गांव के हजारों ग्रामीण मेरठ की सदर कोतवाली क्षेत्र में जमा हो गए। इसी कोतवाली में धन सिंह पुलिस चीफ के पद पर थे। 10 मई 1857 को धन सिंह ने योजना के अनुसार बड़ी चतुराई से ब्रिटिश सरकार के वफादार पुलिस कर्मियों को कोतवाली के भीतर चले जाने और वहीं रहने का आदेश दिया। और धन सिंह के नेतृत्व में देर रात 2 बजे जेल तोड़कर 836 कैदियों को छुड़ाकर जेल को आग लगा दी। छुड़ाए कैदी भी क्रान्ति में शामिल हो गए। उससे पहले भीड़ ने पूरे सदर बाजार और कैंट क्षेत्र में जो कुछ भी अंग्रेजों से सम्बन्धित था सब नष्ट कर चुकी थी। रात में ही विद्रोही सैनिक दिल्ली कूच कर गए और विद्रोह मेरठ के देहात में फैल गया। इस क्रान्ति के पश्चात् ब्रिटिश सरकार ने धन सिंह को मुख्य रूप से दोषी ठहराया, और सीधे आरोप लगाते हुए कहा कि धन सिंह कोतवाल क्योंकि स्वयं गुर्जर हैं इसलिए उसने गुर्जरों की भीड़ को नहीं रोका और उन्हें खुला संरक्षण दिया। इसके बाद घनसिंह को गिरफ्तार कर मेरठ के एक चौराहे पर फाँसी पर लटका दिया गया 1857 की क्रान्ति की शुरुआत धन सिंह कोतवाल ने की अतः इसलिए 1857 की क्रान्ति के जनक कहे जाते हैं। मेरठ की पृष्ठभूमि में अंग्रेजों के जुल्म की दास्तान छुपी हुई है। मेरठ गजेटियर के वर्णन के अनुसार 4 जुलाई, 1857 को प्रातः 4 बजे पांचली पर एक अंग्रेज

रिसाले ने 56 घुड़सवार, 38 पैदल सिपाही और 10 तोपों से हमला किया। पूरे ग्राम को तोप से उड़ा दिया गया। सैकड़ों किसान मारे गए, जो बच गए उनको कैद कर फांसी की सजा दे दी गई। आचार्य दीपांकर द्वारा रचित पुस्तक 'स्वाधीनता आन्दोलन' और मेरठ के अनुसार पांचली के 80 लोगों को फांसी की सजा दी गई थी। ग्राम गगोल के भी 9 लोगों को दशहरे के दिन फाँसी की सजा दी गई और पूरे ग्राम को नष्ट कर दिया। आज भी इस ग्राम में दशहरा नहीं मनाया जाता।

मेरठ और दिल्ली

मेरठ के शहीद स्मारक परिसर में स्थित एक सूचना पट्टी जिस पर कोर्ट मार्शियल किये गए 85 सैनिकों के नाम दर्ज हैं।

मेरठ एक दूसरा बड़ा सैनिक अड्डा था जहां 2,357 भारतीय, 2,038 ब्रितानी सिपाही, 12 ब्रितानी सिपाहियों द्वारा सन्चालित तोपें उपस्थित थीं। बंगाल सेना में असंतोष की बात सभी लोग उस समय भली-भांति जानते थे, फिर भी 24 अप्रैल को 3 बंगाल लाइट कैवलरी (घुडसवार दस्ता) के सेनानायक लैफ्टिनेण्ट-कर्नल जार्ज कार्मिशैल स्मिथ ने अपने 90 सिपाहियों को परेड़ करने और गोलाबारी का अभ्यास करने को कहा। पांच को छोड़ कर सभी सिपाहियों ने परेड करने और कारतूस लेने से मना कर दिया। 9 मई को 85 सिपाहियों का सैनिक अदालत द्वारा कोर्ट मार्शल कर दिया गया, अधिकतर सिपाहियों को 10 वर्ष के कठोर कारावास का दंड सुनाया गया। 11 सिपाही जिनकी आयु कुछ कम थी उन्हें 5 वर्ष का दंड सुनाया गया। बंदी सिपाहियों को बेड़ियों में बाँधकर और वर्दी उतार कर सेना के सामने परेड कराई गयी। इसके लिये बंदी सिपाहियों ने अपने साथी सैनिकों को समर्थन न करने के लिये भी दोषी ठहराया। सबसे ज्यादा योगदान कोतवाल धन सिंह गुर्जर का था यहाँ कमान उनके हाथ में रही।

अगला दिन रविवार का था, इस दिन अधिकतर ईसाई आराम और पूजा करते थे। कुछ भारतीय सिपाहियों ने ब्रितानी अफसरों को, बंदी सिपाहियों को जबरन छुड़ाने की योजना का समाचार दिया, परंतु बड़े अधिकारियों ने इस पर कोई ध्यान नहीं दिया। मेरठ शहर में भी अशान्ति फैली हुयी थीं। बाजार में कई विरोध प्रदर्शन हुए थे और आगजनी की घटनायें हुयी थीं। शाम को बहुत से यूरोपीय अधिकारी चर्च जाने को तैयार हो रहे थे, जबकि बहुत से यूरोपीय सैनिक छुट्टी पर थे और मेरठ के बाजार या कैंटीन गये हुए थे। भारतीय सिपाहियों ने

3 बंगाल लाइट कैवलरी के नेतृत्व में विद्रोह कर दिया। कनिष्ठ अधिकारियों ने विद्रोह को दबाने का प्रयास किया पर वे सिपाहियों द्वारा मारे गये। यूरोपीय अधिकारियों और असैनिकों के घरों पर भी हमला हुआ और 4 असैनिक, 8 महिलायें और 8 बच्चे मारे गये। छुट्टी पर गये सिपाहियों ने बाजार में भीड़ पर भी हमला किया। सिपाहियों ने अपने 85 बन्दी साथियों और 800 अन्य बंदियों को भी छुड़ा लिया।

कुछ सिपाहियों ने (मुख्यतः 11 बंगाल नेटिव ईन्फैंट्री) विद्रोह करने से पहले विश्वसनीय अधिकारियों और उन्के परिवारों को सुरक्षित स्थान पर पंहुचा दिया। कुछ अधिकारी और उनके परिवार रामपुर बच निकले और उन्होंने रामपुर के नवाब के यहां शरण ली। 50 भारतीय असैनिक (अधिकारियों के नौकर जिन्होंने अपने मालिकों को बचाने या छुपाने का प्रयास किया) भी विद्रोहियों द्वारा मारे गये। नरसंहार की अतिश्योक्ति पूर्ण कहानियों और मरने वालों की संख्या ने कंपनी को असैनिक भारतीय और विद्रोहियों के दमन का एक बहाना दे दिया।

वरिष्ठ कंपनी अधिकारी, मुख्यतः मेजर–जनरल हेविट्ट जो कि सेना के प्रमुख थे और 70 वर्ष के थे प्रतिक्रिया में धीमे रहे। ब्रितानी सैनिक (60 राईफलों और यूरोपीय सैनिकों द्वारा संचालित बंगाल तोपखाना) आगे बड़े परंतु उन्हें विद्रोही सिपाहियों से लड़ने का कोई आदेश नहीं मिला और वे केवल अपने मुख्यालय और तोपखाने की सुरक्षा ही कर सके। 11 मई की सुबह को जब वे लड़ने को तैयार हुए तब तक विद्रोही सिपाही दिल्ली की ओर जा चुके थे।

उसी सुबह 3 बंगाल लाइट कैवलरी दिल्ली पंहुची। उन्होंने बहादुर शाह जफर से उनका नेतृत्व करने को कहा। बहादुर शाह ने उस समय कुछ नहीं कहा पर किले में उपस्थित अन्य लोगों ने विद्रोहीयों का साथ दिया। दिन में विद्रोह दिल्ली में फैल गया। बहुत से यूरोपीय अधिकारी, उनके परिवार, भारतीय धर्मांतरित ईसाई और व्यापारियों पर सिपाहियों और दंगाईयों द्वारा भी हमले हुए। लगभग 50 लोगों को बहादुर शाह के नौकरों द्वारा महल के बाहर मार डाला गया।

दिल्ली के पास ही बंगाल नेटिव ईन्फैंट्री की तीन बटालियन उपस्थित थी, बटालियन के कुछ दस्ते तुरन्त ही विद्रोहियों के साथ मिल गये और बाकियों ने विद्रोहियों पर वार करने से मना कर दिया। दोपहर में नगर में एक भयानक धमाका सुनायी पड़ा। नगर में बने हुए शस्त्रागार को बचाने में तैनात 9 ब्रितानी अधिकारियों ने विद्रोही सिपाहियों और अपनी ही सुरक्षा में लगे सिपाहियों पर गोलीबारी की। परंतु असफल होने पर उन्होंने शस्त्रागार को उड़ा दिया। 9 में से

6 अधिकारी बच गये पर उस धमाके से उस सड़क पर रहने वाले कई लोगों की मृत्यु हो गयी। दिल्ली में हो रही इन घटनाओं का समाचार सुन कर नगर के बाहर तैनात सिपाहियों ने भी खुला विद्रोह कर दिया।

भाग रहे यूरोपीय अधिकारी और असैनिक उत्तरी दिल्ली के निकट फ्लैग स्टाफ बुर्ज के पास एकत्रित हुए। यहां बहुत से तार संचालक ब्रितानी मुख्यालय को हो रही घटनाओं का समाचार दे रहे थे। जब ये स्पष्ट हो गया कि कोई सहायता नहीं मिलेगी तो वे करनाल की ओर बढ़े। रास्ते में कुछ लोगों की सहायता ग्रामीणों ने की और कुछ यूरोपीयों को लूटा और मारा भी गया।

अगले दिन बहादुर शाह ने कई वर्षों बाद अपना पहला अधिकारिक दरबार लगाया। बहुत से सिपाही इसमें सम्मिलित हुए। बहादुर शाह इन घटनाओं से चिन्तित थे पर अन्ततः उन्होंने सिपाहियों को अपना समर्थन और नेतृत्व देने की घोषणा कर दी।

समर्थन तथा विरोध

दिल्ली में हुयी घटनाओं का समाचार तेजी से फैला और इसने विभिन्न जिलों में सिपाहियों के बीच असन्तोष को और फैला दिया। इन में बहुत सी घटनाओं का कारण ब्रितानी अधिकारियों का व्यवहार था जिसने अव्यवस्था को फैलाया। दिल्ली पर हुए अधिकार की बात तार से जानने के बाद बहुत से कंपनी अधिकारी शीघ्रता में अपने परिवार और नौकरों के साथ सुरक्षित स्थानों पर चले गये। दिल्ली से 160 कि.मी. दूर आगरा में लगभग 6000 असैनिक किले पर इकट्ठा हो गये। जिस शीघ्रता में असैनिक अपना पद छोड़ कर भागे उससे विद्रोही सैनिकों उन क्षेत्रों को बहुत बल मिला। यद्यपि बाकी अधिकारी अपने पदों पर तैनात थे पर इतने कम लोगों के कारण किसी प्रकार की व्यवस्था बनाना असम्भव था। बहुत से अधिकारी विद्रोहियों और अपराधियों द्वारा मारे गये।

सैनिक अधिकारियों ने भी संयोजित तरीके से कार्य नहीं किया। कुछ अधिकारियों ने सिपाहियों पर विश्वास किया परन्तु कुछ ने भविष्य के विद्रोह से बचने के लिये सिपाहियों को निशस्त्र करना चाहा। बनारस और इलाहाबाद में निशस्त्रीकरण में गड़बड़ होने के कारण वहां भी स्थानीय विद्रोह प्रारम्भ हो गया।

यद्यपि आन्दोलन बहुत व्यापक था परन्तु विद्रोहियों में एकता का अभाव था। जबकि बहादुर शाह जफर दिल्ली के तख्त पर बिठा दिये गये थे, विद्रोहियों

का एक भाग मराठों को भी सिंहासन पर बिठाना चाहता था। अवध निवासी भी नवाब की रियासत को बनाये रखना चाहते थे।

मौलाना फजल-ए-हक खैराबादी और अहमदुल्लाह शाह जैसे मुस्लिम नेताओं द्वारा जिहाद का आह्वान किया गया। इसका विशेषरूप से मुसलिम कारीगरों द्वारा समर्थन किया गया। इस के कारण अधिकारियों को लगा कि विद्रोह के मुखिया मुसलिमों के बीच हैं। अवध में सुन्नी मुसलिमों ने इस जिहाद का अधिक समर्थन नहीं किया क्योंकि वो इसे मुख्य रूप से शिया आन्दोलन के रूप में देखते थे। कुछ मुस्लिम नेता जैसे आगा खान ने इस विद्रोह का विरोध किया जिसके लिये ब्रितानी सरकार ने उनका सम्मान भी किया। मुजफ्फर नगर जिले के पास स्थित थाना नगर में सुन्नियों ने हाजी इमादुल्लाह को अपना अमीर घोषित कर दिया। मई 1857 में हाजी इमादुल्लाह की सेना और ब्रितानी सैनिकों के बीच शामली की लड़ाई हुयी।

पंजाब और उत्तरी-पश्चिमी प्रोविंस (नॉर्थ-वेस्ट प्रोविंस) से सिख और पठान सिपाहियों ने ब्रितानी शासन का समर्थन किया और दिल्ली पर अधिकार करने में सहायता की। कई इतिहासकारों का ये मत है कि सिख सिपाही आठ वर्ष पहले हुई हार का बदला लेना चाहते थे जिसमें बंगाल और मराठा सिपाहियों ने ब्रितानी सैनिकों की सहायता की थी।

1857 में बंगाल सेना में कुल 86,000 सैनिक थे, जिसमें 12,000 यूरोपीय, 16,000 पंजाबी और 1,500 गुरखा सैनिक थे। जबकि भारत की तीनों सेनाओं में कुल 3,11,000 स्थानीय सैनिक, 40,160 यूरोपीय सैनिक और 5,362 अफसर थे। बंगाल सेना की 75 में से 54 रेजिमेण्ट ने विद्रोह कर दिया। इनमें से कुछ को नष्ट कर दिया गया और कुछ अपने सिपाहियों के साथ अपने घरों की ओर चली गयी। सभी बची हुयीं रेजिमेण्ट को समाप्त कर दिया गया और निःशस्त्र कर दिया गया। बंगाल सेना की दसों घुड़सवार रेजिमेण्टों ने विद्रोह कर दिया।

बंगाल सेना में 29 अनियमित घुड़सवार रेजिमेण्ट और 42 अनियमित पैदल रेजिमेण्ट भी थीं। इनमें मुख्य रूप से अवध के सिपाही थे जिन्होनें संयुक्त रूप से विद्रोह कर दिया। दूसरा मुख्य भाग ग्वालियर के सैनिकों का था जिसने विद्रोह किया परन्तु ग्वालियर के राजा ब्रितानी शासन के साथ थे। बाकी अनियमित सेना विभिन्न स्रोतों से ली गयी थी और वह उस समय के समाज की मुख्यधारा से अलग थी। मुख्य रूप से तीन धड़ों ने कंपनी का साथ

दिया, इनमें तीन गुरखा, छह में से पांच सिख पैदल रेजिमेण्टों और हाल ही में बनायी गयी पंजाब अनियमित सेना की छह पैदल तथा छह घुड़सवार दस्ते शामिल थे।

1 अप्रैल 1858 को बंगाल सेना में कंपनी के वफादार भारतीय सैनिकों की संख्या 80,053 थी। इसमें बहुत संख्या में वो सैनिक थे जिनको विद्रोह के बाद भारी मात्रा में पंजाब और उत्तरी-पश्चिमी प्रोविंस (नौर्थ-वेस्ट प्रोविंस) से सेना में भरती किया गया था।

बम्बई सेना (बांबे आर्मी) की 29 रेजिमेण्ट में से 3 रेजिमेण्ट ने विद्रोह किया और मद्रास सेना की किसी रेजिमेण्ट ने विद्रोह नहीं किया यद्यपि 52 रेजिमेण्ट के कुछ सैनिकों ने बंगाल में काम करने से मना कर दिया। कुछ क्षेत्रों को छोड़ कर अधिकतर दक्षिण भारत शान्त रहा। अधिकतर राज्यों ने इस विद्रोह में भाग नहीं लिया क्योंकि इस क्षेत्र का अधिकतर भाग निजाम और मैसूर रजवाड़े द्वारा शासित था और वो ब्रितानी शासन के अन्तर्गत नहीं आते थे।

विद्रोह

प्रारम्भिक अवस्था

बहादुर शाह जफर ने अपने आप को भारत का शहंशाह घोषित कर दिया। बहुत से इतिहासकारों का ये मत है कि उनको सिपाहियों एवं दरबारियों द्वारा इस के लिये बाध्य किया गया। बहुत से असैनिक, शाही तथा प्रमुख व्यकित्यों ने शहंशाह के प्रति राजभक्ति की शपथ ली। शहंशाह ने अपने नाम के सिक्के जारी किये जो कि अपने को राजा घोषित करने की एक प्राचीन परम्परा थी। परन्तु इस घोषणा ने पंजाब के सिखों को विद्रोह से अलग कर दिया। सिख नहीं चाहते थे की मुगल शासकों से इतनी लडाईयां लड़ने के बाद शासन मुगलों के हाथ में चला जाये।

बंगाल इस पूरी अवधि के दौरान शांत रहा। विद्रोही सैनिकों ने कंपनी की सेना को महत्त्वपूर्ण रूप से पीछे धकेल दिया और हरियाणा, बिहार, मध्य भारत और उत्तर भारत में महत्त्वपूर्ण शहरों पर कब्जा कर लिया। जब कंपनी की सेना ने संगठित हो कर वापस हमला किया तो केन्द्रिय कमान एवं नियंत्रण के अभाव

में विद्रोही सैनिक मुकाबला करने में अक्षम हो गये। अधिकतर लड़ाइयों में सैनिकों को निर्देश के लिये राजाओं और रजवाडों की तरफ देखना पड़ा। यद्यपि इनमे से कई स्वाभाविक नेता साबित हुए पर बहुत से स्वार्थी और अयोग्य साबित हुए।

दिल्ली

कैप्टन हडसन के द्वारा दिल्ली के राजा को बंदी बनाया जाना

1857 ई. क्रान्ति में दिल्ली के आसपास के गुर्जर अपनी ऐतिहासिक परम्परा के अनुसार विदेशी हकूमत से टकराने के लिये उतावले हो गये थे । दिल्ली के चारों ओर बसे हुए तंवर, चपराने, कसाने, बैंसले, विधुड़ी, अवाने खारी, बासटटे, लोहमोड़, बैसाख तथा डेढ़िये वंशों के गुर्जर संगठित होकर अंग्रेजी हकूमत को भारत से खदेड़ने और दिल्ली के मुगल बादशाह बहादुरशाह जफर को पुनः भारत का सम्राट बनाने के लिए प्राणपण से जुट गये थे गुर्जरों ने शेरशाहपुरी मार्ग मथुरा रोड़ यमुना नदी के दोनों किनारों के साथ-साथ अधिकार करके अंग्रेजी सरकार के डाक, तार तथा संचार साधन काट कर कुछ समय के लिए दिल्ली अंग्रेजी राज समाप्त कर दिया था। दिल्ली के गुर्जरों ने मालगुजारी बहादुरशाह जफर मुगल बादशाह को देनी शुरू कर दी थी। दयाराम गुर्जर के नेतृत्व में गुर्जरों ने दिल्ली के मेटकाफ हाउस को कब्जे में ले लिया । जो अंग्रेजों का निवास स्थान था, यहां पर सैनिक व सिविलियन उच्च अधिकारी अपने परिवारों सहित रहा करते थे । जैसे ही क्रान्ति की लहर मेरठ से दिल्ली पहुँची, दिल्ली के गुर्जरों में भी वह जंगल की आग की तरफ फैल गई । दिल्ली के मेटकाफ हाउस में जो अंग्रेज बच्चे और महिलायें उनको जीवनदान देकर गुर्जरों ने अपनी उच्च परम्परा का परिचय दिया था। महिलाओं और बच्चों को मारना पाप समझ कर उन्होंने जीवित छोड़ दिया था और मेटकाफ हाउस पर अधिकार कर लिया ।दयाराम गुर्जर के नेतृत्व में दिल्ली के समीप वजीराबाद जो अंग्रेजों का गोला बारूद का जखीरा था उस पर अधिकार करके बहादुरशाह जफर के हवाले कर दिया जिसमें एक लाख रु. की बन्दूकें थीं। इसी तरह अंग्रेंजी सेना की 16 गाड़ियां 7 जून 1857 को रास्ते में जाती हुई रोक कर उनको अपने कब्जे में लेकर मुगल सम्राट बहादुरशाह जफर को लाल किले में

जा कर भेंट कर दी थीं। विलियम म्योर के इन्टेलिजेन्स रिकार्ड के अनुसार, गुर्जरों ने अंग्रेजों के अलावा उन लोगों को भी नुकसान पहुँचाया जो अंग्रेजों का साथ दे रहे थे। 1857 की क्रान्ति के दमन चक्र के दौरान चन्द्रावल गांव को जला कर खाक कर दिया गया था सभी स्त्री पुरुषों को बेरहमी से मौत के घाट उतार दिया गया था। क्रान्तिकारियों पर मेटकाफ हाउस और वजीराबाद के शस्त्रागार को लूटने का गंभीर आरोप था । अंग्रेजों को मारने का तो आरोप था ही।

इंडियन एम्पायर के लेखक मार्टिन्स ने दिल्ली के गुर्जरों के 1857 के क्रान्ति में भाग लेने पर लिखा है, मेरठ से जो सवार दिल्ली आए थे, वे संख्या में अधिक नहीं थे । दिल्ली की साधारण जनता ने यहां तक मजदूरों ने भी इनका साथ दिया पर इस समय दिल्ली के चारों ओर की बस्तियों में फैले गुर्जर विद्रोहियों के साथ हो गए। इसी प्रकार 38वीं बिग्रेड के कमाण्डर ने लिखा है हमारी सबसे अधिक दुर्गति दिल्ली के गुर्जरों ने की है। सरजान वैलफोर ने भी लिखा है चारों ओर के गुर्जरों के गांव 50 वर्ष तक शांत रहने के पश्चात एकदम बिगड़ रहे और मेरठ से गदर होने के चन्द घंटों के भीतर उन्होंने तमाम जिलों को लूट लिया । यदि कोई महत्त्वपूर्ण अधिकारी उनके गांवों में शरण के लिए गया तो उसे नहीं छोड़ा और खुले आम बगावत कर दी।

हापुड़

1857 की क्रांति में हापुड के ग्रामीणों ने भी क्रांतिकारियों का साथ दिया। 1857 में भदौला गाँव के चौधरी कन्हैया सिंह गुर्जर तथा चौधरी फूल सिंह गुर्जर के नेतृत्व में यहाँ के ग्रामीणों ने ब्रितानियों का विरोध किया। कहा जाता है कि यहाँ ब्रितानियों को अत्यधिक परेशान किया गया तथा क्रांतिकारियों ने अनेक ब्रितानियों को मौत के घाट उतार दिया। परिणामतः यहाँ के विप्लव का दमन करने के लिए ब्रितानियों ने सैनिक टुकड़ी को भेजा गया। ग्रामीणों को पहले ही इसकी जानकारी मिल गयी थी। उन्होंने ब्रिटिश सेना का सामना करने की योजना बनायी परन्तु भयंकर संघर्ष के पश्चात् उन्हें पीछे हटने के लिए मजूबर होना पड़ा। अनेक क्रांतिकारी ग्रामीणों का कत्ल किया गया। भदौला गाँव को बागी गाँव घोषित करके सम्पूर्ण जायदाद जब्त कर ली गयी। इस विषय में सरकारी दस्तावेज में लिखा है कि–'बाबत, बगावत जायदाद जब्त की जाती है, जिसकी मालगुजारी

की जिम्मेदार सरकार की होगी।' ब्रितानियों की सुनिश्चित कार्यवाही के पश्चात् ही भदौला गाँव के विप्लव का दमन हो सका।

बुलन्दशहर

स्वतंत्रता संघर्ष से लेकर आजादी मिलने तक बुलंदशहर ने आजादी की लड़ाई में पूरे दम-खम से भाग लिया। कोतवाल धनसिंह गुर्जर के नेतृत्व में मेरठ से 10 मई 1857 को देश की आजादी की प्रथम जंग शुरू हुई। जिसके बाद बुलंदशहर जिले में भी गूर्जरों ने अंग्रेजी सेना पर धावा बोल दिया। यहां अंग्रेजों और स्वतंत्रता सेनानियों के खिलाफ कई बार युद्ध छिड़ा। विद्रोह देखकर अंग्रेजी सेना भी दहशत में आ गई। 26 सितम्बर, 1857 को कासना-सुरजपुर के बीच उमरावसिंह की अंग्रेजी सेना से भारी टक्कर हुई । 31 मई से 28 सितंबर तक बुलंदशहर अंग्रेजी दासता से मुक्त रहा लेकिन इस बीच कई जमींदार अंग्रेजों से जा मिले। इस वजह से अंग्रेजी सेना को दोबारा से बुलंदशहर में कूच करने का मौका मिल गया। 28 सितंबर को इस बुलंदशहर में आजादी के चाहने वाली सेना और अंग्रेजी सेना में घमासान युद्ध हुआ। अंग्रेज विजयी हुए और बुलंदशहर पर फिर से अधिकार कर लिया। इसके बाद बुलंदशहर अंग्रेजों के आंख पर चढ़ गया और चुन-चुन कर क्रांतिकारियों का कत्ल किया जाने लगा। दादरी के राजा राव उमरावसिंह गुर्जर समेत आसपास के क्षेत्र के 84 क्रांतिकारियों को बुलंदशहर के काला आम के पेड़ पर फांसी लगाई थी। जिससे चलते आज भी बुलंदशहर का काला आम चौक नाम से चर्चित है। वर्ष 1857 से 1947 के दौरान काला आम कत्लगाह बना रहा। इस दौरान हजारों क्रांतिकारी को यहां फांसी दी गई।

फतेहपुर बेरी

महरौली से समीप फतेहपुर बेरी के तंवर वंश के गुर्जरों ने अपने नेता राव दरगाही गुर्जर के नेतृत्व में 1857 क्रान्ति के इस अंग्रेज विरोधी संघर्ष में कूद पड़े थे। जिसके फलस्वरूप अंग्रेजों ने फतेहपुर बेरी के 12 वर्ष की आयु से ऊपर के सभी मर्द और औरतों को मौत के घाट उतार दिया गया था। 2 अक्टूबर 1857 को ब्रिगेडियर जनरल शोवर्स के नेतृत्व में एक 15000 सैनिकों की विशाल सेना व तोपखाना तुगलकाबाद व महरौली क्षेत्र के गांव फतेहपुर बेरी गुड़गांव रिवाड़ी व सोहना का दमन करने के लिए भेजी थी।

बरेली

मेरठ में 10 मई 1857 को –21 दिन पहले–क्रान्ति का बिगुल बज गया। बरेली में तब 8 न. देशी सवार, 18 और 68 न. की पैदल सेना थी। इस सेना ने 31 मई को विद्रोह कर दिया। यह रविवार का दिन था। सुबह दस बजे एक तोप दगी। यह क्रान्ति का संकेत था। सेना बैरकों से बाहर निकल आई।

बिहार

कुंवर सिह की भूमिका

मेरठ

ब्रितानी दमन

1857 का विद्रोह करने वाले सेनानियों को अत्यन्त क्रूर सजाएँ दी गयीं।

बहादुर शाह जफर को दिल्ली में हुंमायू के मकबरे से अंग्रेजों ने गिरफ्तार कर लिया।

अब सारे समाचारपत्रों में भी अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध आरंभ हो गया था। उनके विरोध में बहुत कुछ छापा जा रहा था।

परिणाम

1857 ई. का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम (म्यूटिनी) ब्रिटिश शासन के विरुद्ध एक महान घटना थी। यह संग्राम आकस्मिक नहीं बल्कि पूरी शताब्दी के भारतीय असंतोष का परिणाम था। इसके लिये एक महान योजना बनी और क्रियान्वित की गयी थी।

ब्रायन हाफ्टन हाँजसन, रेजिडेंट नेपाल, ने हिमालय में कॉलोनाइजेशन की योजना प्रस्तुत की थी कि आयरलैण्ड और स्कॉटलैण्ड के किसानों को भारत में बसने के लिए मुफ्त जमीन देकर प्रोत्साहित किया जाय। ब्रिटिश सत्ता ने भी अपने देशवासियों को, विशेषकर पूँजीपतियों को, इस संबंध में प्रोत्साहित किया। उनकी स्थिति को मजबूत करने के लिए ब्रिटिश सरकार ने भारतीय मजदूरों के लिए ऐसा कानून पास किया जिससे हजारों की संख्या में वे कानूनी तौर पर गुलाम हो गए।

गदर के बाद ब्रिटिश नीतिज्ञों की बड़ी तकरार हुई। मार्च, 1858 ई. के 'कलकत्ता रिव्यू' में इसका उल्लेख मिलता है। तदनुसार ''चारों तरफ से हमें इस

तरह की आवाजें सुनाई दे रही थीं जिससे परामर्श मिलते हैं कि भारतीयों को अवश्य ईसाई बना लेना चाहिए, हिन्दुस्तानी जबान को खत्म कर देना चाहिए और उसकी जगह अपनी मातृभाषा अंग्रेजी प्रचलित कर देनी चाहिए।''

भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम 1947

भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम 1947 (Indian Independence Act 1947) युनाइटेड किंगडम की पार्लियामेंट द्वारा पारित वह विधान है जिसके अनुसार ब्रिटेन शासित भारत का दो भागों =(भारत तथा पाकिस्तान) में विभाजन किया गया। यह अधिनियम को 18 जुलाई 1947 को स्वीकृत हुआ और 15 अगस्त 1947 को भारत बंट गया। भारतीय संवैधानिक विकास के क्रम में अनेक विधेयक ब्रिटिश संसद ने पारित किए लेकिन सन् 1947 का भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम ब्रिटिश संसद द्वारा भारत के लिए अंतिम किन्तु सबसे अत्यधिक महत्त्वपूर्ण अधिनियम था। भारतीय स्वाधीनता अधिनियम द्वारा भारत ने 200 वर्ष से चल रहा ब्रिटिश शासन से मुक्ति प्राप्त की।

माउंटबेटन योजना

लॉर्ड माउंटबेटन को भारत के विभाजन और सत्ता के त्वरित हस्तान्तरण के लिए भारत भेजा गया। 3 जून 1947 को माउंटबेटन ने अपनी योजना प्रस्तुत की जिसमें भारत की राजनीतिक समस्या को हल करने के विभिन्न चरणों की रूपरेखा प्रस्तुत की गयी थी। प्रारम्भ में यह सत्ता हस्तांतरण विभाजित भारत की भारतीय सरकारों को डोमिनियन के दर्जे के रूप में दी जानी थी।

माउंटबेटन योजना के मुख्य प्रस्ताव

भारत को भारत और पाकिस्तान में विभाजित किया जायेगा,

बंगाल और पंजाब का विभाजन किया जायेगा और उत्तर पूर्वी सीमा प्रान्त और असम के सिलहट जिले में जनमत संग्रह कराया जायेगा।

पाकिस्तान के लिए संविधान निर्माण हेतु एक पृथक संविधान सभा का गठन किया जायेगा।

रियासतों को यह छूट होगी कि वे या तो पाकिस्तान में या भारत में सम्मिलित हो जायें या फिर खुद को स्वतंत्र घोषित कर दें।

भारत और पाकिस्तान को सत्ता हस्तान्तरण के लिए 15 अगस्त 1947 का दिन नियत किया गया।

ब्रिटिश सरकार ने भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम, 1947 को जुलाई 1947 में पारित कर दिया। इसमें ही वे प्रमुख प्रावधान शामिल थे जिन्हें माउंटबेटन योजना द्वारा आगे बढ़ाया गया था।

विभाजन और स्वतंत्रता

सभी राजनीतिक दलों ने माउंटबेटन योजना को स्वीकार कर लिया। सर रेडक्लिफ की अध्यक्षता में दो आयोगों का ब्रिटिश सरकार ने गठन किया जिनका कार्य विभाजन की देख-रेख और नए गठित होने वाले राष्ट्रों की अन्तर्राष्ट्रीय सीमाओं को निर्धारित करना था। स्वतंत्रता के समय भारत में 565 छोटी और बड़ी रियासतें थीं। भारत के प्रथम गृहमंत्री सरदार वल्लभ भाई पटेल जी ने इस सन्दर्भ में कठोर नीति का पालन किया। 15 अगस्त 1947 तक जम्मू कश्मीर, जूनागढ़ व हैदराबाद जैसे कुछ अपवादों को छोड़कर सभी रियासतों ने विलय पत्र पर हस्ताक्षर कर दिए थे। गोवा पर पुर्तगालियों और पुदुचेरी पर फ्रांसीसियों का अधिकार था।

सम्बन्धित कालक्रम

1 सितंबर 1939 –2 सितम्बर 1945 –द्वितीय विश्वयुद्ध चला। युद्ध के पश्चात ब्रितानी सरकार ने आजाद हिन्द फौज के अधिकारियों पर मुकद्दमा चलाने की घोषणा की, जिसका भारत में बहुत विरोध हुआ।

जनवरी 1946 –सशस्त्र सेनाओं में छोटे-बड़े अनेकों विद्रोह हुए।

18 फरवरी सन् 1946 –मुम्बई में रायल इण्डियन नेवी के सैनिकों द्वारा पहले एक पूर्ण हड़ताल की गयी और उसके बाद खुला विद्रोह भी हुआ। इसे ही नौसेना विद्रोह या 'मुम्बई विद्रोह' (बॉम्बे म्युटिनी) के नाम से जाना जाता है।

फरवरी 1946 –ब्रितानी प्रधानमंत्री एटली ने भारत में एक तीन सदस्यीय उच्चस्तरीय शिष्टमंडल भेजने की घोषणा की। इस मिशन को विशिष्ट अधिकार दिये गये थे तथा इसका कार्य भारत को शांतिपूर्ण सत्ता हस्तांतरण के लिये, उपायों एवं संभावनाओं को तलाशना था।

16 मई 1946 –आरंभिक बातचीत के बाद मिशन ने नई सरकार के गठन का प्रस्ताव रखा जिसमें भारत को बिना बांटे सत्ता हस्तान्तरित करने की बात की गयी थी।

16 जून 1946 –अपने 15 मई की घोषणा के उल्टा इस दिन कैबिनेट मिशन ने घोषणा की कि भारत को दो भागों में विभाजित करके दोनों भागों को सत्ता हस्तान्तरित की जाएगी।

20 फरवरी 1947 –ब्रिटेन के तत्कालीन प्रधानमन्त्री सर रिचर्ड एडली ने घोषणा की कि ब्रितानी सरकार भारत को जून 1948 के पहले पूर्ण स्वराज्य का अधिकार दे देगी।

18 मार्च 1947 –एडली ने माउन्टबेटन को पत्र लिखा जिसमें देशी राजाओं के भविष्य के बारे में ब्रितानी सरकार के विचार रखे।

3 जून 1947 –माउंटबेटन योजना प्रस्तुत, इसका प्रमुख बिन्दु यह था कि आगामी 15 अगस्त 1947 को भारत को दो भागों में विभाजित करके दो पूर्ण प्रभुता सम्पन्न देश (भारत और पाकिस्तान) बनाए जाएंगे।

4 जून 1947 –माउण्टबैटन ने पत्रकार वार्ता की जिसमें उन्होंने 570 देशी रियासतों के प्रश्न पर अपने विचार रखे।

18 जुलाई 1947 –ब्रिटिश सरकार ने भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम पारित कर दिया।

15 अगस्त 1947 –ब्रितानी भारत का विभाजन/भारत और पाकिस्तान दो स्वतन्त्र राष्ट्र बने।

अगस्त प्रस्ताव = 1940,
क्रिप्स मिशन = 1942,
बेवेल मिशन= 1945।

स्वतंत्रता आंदोलन में साहित्य का योगदान

स्वतंत्रता आंदोलन को अहिंसक बनाए रखने के गांधी के संकल्प के कारण भारत में आजादी की अधिकतर लड़ाई कलम ले लड़ी गई। यह कलम ही थी जिसने जनमानस को सचेत किया। आजादी में कलम के योगदान को समर्पित यह अंक

यह सभी जानते हैं कि 15 अगस्त 1947 को हमारा देश स्वतंत्र हुआ। यह हमारे राष्ट्रीय जीवन में हर्ष और उल्लास का दिन तो है ही, इसके साथ ही स्वतंत्रता की खातिर अपने प्राण न्योछावर करने वाले शहीदों का पुण्य दिवस भी है। देश की स्वतंत्रता के लिए 1857 से लेकर 1947 तक क्रांतिकारियों व आंदोलनकारियों के साथ ही लेखकों, कवियों और पत्रकारों ने भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

उनकी गौरव गाथा हमें प्रेरणा देती है कि हम स्वतंत्रता के मूल्य को बनाए रखने के लिए कृत संकल्पित रहें। प्रेमचंद की रंगभूमि, कर्मभूमि (उपन्यास), भारतेंदु हरिश्चंद्र का भारत-दर्शन (नाटक), जयशंकर प्रसाद का चंद्रगुप्त, स्कंदगुप्त (नाटक) आज भी उठाकर पढ़िए, देशप्रेम की भावना जगाने के लिए बड़े कारगर सिद्ध होंगे। वीर सावरकर की '1857 का प्रथम स्वाधीनता संग्राम' हो या पंडित नेहरू की 'भारत एक खोज' या फिर लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक की 'गीता रहस्य' या शरद बाबू का उपन्यास 'पथ के दावेदार' -जिसने भी इन्हें पढ़ा, उसे घर-परिवार की चिंता छोड़ देश की खातिर अपना सर्वस्व अर्पण करने के लिए स्वतंत्रता के महासमर में कूदते देर नहीं लगी। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने 'भारत-भारती' में देशप्रेम की भावना को सर्वोपरि मानते हुए आह्वान किया –

जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है।
वह नर नहीं, नर-पशु निरा है और मृतक समान है।।

देश पर मर मिटने वाले वीर शहीदों के कटे सिरों के बीच अपना सिर मिलाने की तीव्र चाहत लिए सोहन लाल द्विवेदी ने कहा –

हो जहां बलि शीश अगणित, एक सिर मेरा मिला लो।

वहीं सुभद्रा कुमारी चौहान की 'झांसी की रानी' कविता को कौन भूल सकता है, जिसने अंग्रेजों की चूलें हिला कर रख दीं। वीर सैनिकों में देशप्रेम का अगाध संचार कर जोश भरने वाली अनूठी कृति आज भी प्रासंगिक है –

सिंहासन हिल उठे, राजवंशों ने भृकुटी तानी थी,
बूढ़े भारत में भी आई, फिर से नई जवानी थी,
गुमी हुई आजादी की, कीमत सबने पहिचानी थी,
दूर फिरंगी को करने की सबने मन में ठानी थी,
चमक उठी सन् सत्तावन में वह तलवार पुरानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुंह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी।

'पराधीन सपनेहुं सुख नाहीं' का मर्म स्वाधीनता की लड़ाई लड़ रहे वीर सैनिक ही नहीं वफादार प्राणी भी जान गए, तभी तो पं. श्याम नारायण पांडेय ने महाराणा प्रताप के घोड़े 'चेतक' के लिए 'हल्दी घाटी' में लिखा –

रणबीच चौकड़ी भर-भरकर, चेतक बन गया निराला था,
राणा प्रताप के घोड़े से, पड़ गया हवा का पाला था,

गिरता न कभी चेतक तन पर, राणा प्रताप का कोड़ा था,
वह दौड़ रहा अरि मस्तक पर, या आसमान पर घोड़ा था।

देशप्रेम की भावना जगाने के लिए जयशंकर प्रसाद ने 'अरुण यह मधुमय देश हमारा', सुमित्रानंदन पंत ने 'ज्योति भूमि, जय भारत देश', निराला ने भारती! जय विजय करे। स्वर्ग सस्य कमल धरे', कामता प्रसाद गुप्त ने 'प्राण क्या हैं देश के लिए, देश खोकर जो जिए तो क्या जिए', इकबाल ने 'सारे जहां से अच्छा हिंदोस्तां हमारा', तो बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने 'विप्लव गान' में कहा–

कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ, जिससे उथल-पुथल मच जाए
एक हिलोर इधर से आए, एक हिलोर उधर को जाए
नाश ! नाश! हां महानाश! ! ! की
प्रलयंकारी आंख खुल जाए।

इन कवियों ने यह वीर रस वाली कविताएं सृजित कर रणबांकुरों में नई चेतना का संचार किया। इसीशृंखला में शिवमंगल सिंह 'सुमन', रामनरेश त्रिपाठी, रामधारी सिंह 'दिनकर', राधाचरण गोस्वामी, बद्रीनारायण चौधरी प्रेमघन, राधाकृष्ण दास, श्रीधर पाठक, माधव प्रसाद शुक्ल, नाथूराम शर्मा शंकर, गया प्रसाद शुक्ल स्नेही (त्रिशूल), माखनलाल चतुर्वेदी, सियाराम शरण गुप्त, अज्ञेय जैसे अगणित कवियों के साथ ही बंकिम चंद्र चटर्जी का देशप्रेम से ओत-प्रोत 'वंदे मातरम' गीत आजादी के परवानों को प्रेरित करता है। 'वंदे मातरम' आज हमारा राष्ट्रीय गीत है, जिसकी श्रद्धा, भक्ति व स्वाभिमान की प्रेरणा से लाखों युवक हंसते-हंसते देश की खातिर फांसी के फंदे पर झूल गए। वहीं हमारे राष्ट्रगान 'जन गण मन अधिनायक' के रचयिता रवींद्र नाथ ठाकुर का योगदान अद्वितीय व अविस्मरणीय है। स्वतंत्रता दिवस के सुअवसर पर बाबू गुलाबराय का कथन समीचीन है – '15 अगस्त का शुभ दिन भारत के राजनीतिक इतिहास में सबसे अधिक महत्त्व का है। आज ही हमारी सघन कलुष-कालिमामयी दासता की लौह शृंखला टूटी थी। आज ही स्वतंत्रता के नवोज्ज्वल प्रभात के दर्शन हुए थे। आज ही दिल्ली के लाल किले पर पहली बार यूनियन जैक के स्थान पर सत्य और अहिंसा का प्रतीक तिरंगा झंडा स्वतंत्रता की हवा के झोंकों से लहराया था। आज ही हमारे नेताओं के चिरसंचित स्वप्न चरितार्थ हुए थे। आज ही युगों के पश्चात् शंख-ध्वनि के साथ जयघोष और पूर्ण स्तंत्रता का उद्घोष हुआ था।' 'ऐ मेरे वतन के लोगों जरा आंख में भर लो पानी' गीत को याद करते हुए सभी देशवासियों को स्वतंत्रता दिवस की हार्दिक शुभकामनाएं।

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के प्रमुख वचन और नारे

भारत के स्वतंत्रता संग्राम में नारों की विशेष भूमिका है। स्वतंत्रता के लिए बोले गए हर नारे ने भारतीय क्रांतिकारियों में ऐसी जान फूंक दी कि हर नारा अंग्रेजों के ताबूत में आखिरी कील साबित हुआ। यहां स्वतंत्रता संग्राम के समय के कुछ ऐसे ही नारों का हम ब्यौरा दे रहे हैं –

इन्कलाब जिंदाबाद–भगत सिंह
दिल्ली चलो– सुभाष चंद्र बोस
करो या मरो– महात्मा गांधी
जय हिंद– सुभाष चंद्र बोस
पूर्ण स्वराज्य –
जवाहर लाल नेहरू
हिंदी, हिंदू, हिंदोस्तान –
भारतेंदु हरिश्चंद्र
वेदों की ओर लौटो –
दयानंद सरस्वती
आराम हराम है –
जवाहर लाल नेहरू
हे राम– महात्मा गांधी
भारत छोड़ो– महात्मा गांधी
जय जवान, जय किसान –
लाल बहादुर शास्त्री
मारो फिरंगी को– मंगल पांडे
जय जगत– विनोबा भावे
कर मत दो –
सरदार वल्लभ भाई पटेल
संपूर्ण क्रांति –
जयप्रकाश नारायण
विजयी विश्व तिरंगा प्यारा– श्याम लाल गुप्ता पार्षद
वंदे मातरम्– बंकिमचंद्र चटर्जी
जन–गण–मन अधिनायक जय हे– रवींद्र नाथ टैगोर

साम्राज्यवाद का नाश हो –
भगत सिंह
स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है –
बाल गंगाधर तिलक
सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है –
राम प्रसाद बिस्मिल
सारे जहां से अच्छा हिंदोस्तां हमारा– अल्लामा इकबाल
तुम मुझे खून दो मैं तुम्हें आजादी दूंगा– सुभाष चंद्र बोस
साइमन कमीशन वापस जाओ– लाला लाजपत राय
हू लिव्स इफ इंडिया डाइज– जवाहर लाल नेहरू

मेरे सिर पर लाठी का एक-एक प्रहार, अंग्रेजी शासन के ताबूत की कील साबित होगा –

लाला लाजपत राय

मुसलमान मूर्ख थे, जो उन्होंने सुरक्षा की मांग की और हिंदू उनसे भी मूर्ख थे, जो उन्होंने उस मांग को ठुकरा दिया– अबुल कलाम आजाद

इन कविताओं से आती है वतन की खुशबू

15 अगस्त को हम आजादी की नई वर्षगांठ मनाने जा रहे हैं। आजादी के इस सुखद एहसास के बीच हम लाए हैं आपके लिए छह ऐसी कविताएं, जिनसे मिलती है अपने वतन की खुशबू–

पुष्प की अभिलाषा– माखनलाल चतुर्वेदी

चाह नहीं मैं सुरबाला के, गहनों में गूंथा जाऊं
चाह नहीं, प्रेमी-माला में, बिंध प्यारी को ललचाऊं
चाह नहीं, सम्राटों के शव, पर हे हरि, डाला जाऊं
चाह नहीं, देवों के सिर पर, चढ़ूं भाग्य पर इठलाऊं।
मुझे तोड़ लेना वनमाली!, उस पथ पर देना तुम फेंक,
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने, जिस पथ जावें वीर अनेक।

आह्वान– अशफाकउल्ला खां

कस ली है कमर अब तो, कुछ करके दिखाएंगे,
आजाद ही हो लेंगे, या सर ही कटा देंगे

हटने के नहीं पीछे, डरकर कभी जुल्मों से
तुम हाथ उठाओगे, हम पैर बढ़ा देंगे
बेशस्त्र नहीं हैं हम, बल है हमें चरखे का,
चरखे से जमीं को हम, ता चर्ख गुंजा देंगे
परवाह नहीं कुछ दम की, गम की नहीं, मातम की,
है जान हथेली पर, एक दम में गंवा देंगे
उफ तक भी जुबां से हम हरगिज न निकालेंगे
तलवार उठाओ तुम, हम सर को झुका देंगे
सीखा है नया हमने लड़ने का यह तरीका
चलवाओ गन मशीनें, हम सीना अड़ा देंगे
आजादी–राम प्रसाद बिस्मिल
इलाही खैर! वो हरदम नई बेदाद करते हैं,
हमें तोहमत लगाते हैं, जो हम फरियाद करते हैं
कभी आजाद करते हैं, कभी बेदाद करते हैं
मगर इस पर भी हम सौ जी से उनको याद करते हैं
असीराने–कफस से काश, यह सैयाद कह देता
रहो आजाद होकर, हम तुम्हें आजाद करते हैं
रहा करता है अहले–गम को क्या–क्या इंतजार इसका
कि देखें वो दिले–नाशाद को कब शाद करते हैं
यह कह–कहकर बसर की, उम्र हमने कैदे–उल्फत में
वो अब आजाद करते हैं, वो अब आजाद करते हैं
सितम ऐसा नहीं देखा, जफा ऐसी नहीं देखी,
वो चुप रहने को कहते हैं, जो हम फरियाद करते हैं
यह बात अच्छी नहीं होती, यह बात अच्छी नहीं करते
हमें बेकस समझकर आप क्यों बरबाद करते हैं?
कोई बिस्मिल बनाता है, जो मक तल में हमें 'बिस्मिल'
तो हम डरकर दबी आवाज से फरियाद करते हैं
मेरा वतन वही है– इकबाल
चिश्ती ने जिस जमीं पे पैगामे हक सुनाया
नानक ने जिस चमन में बदहत का गीत गाया
तातारियों ने जिसको अपना वतन बनाया

जिसने हेजाजियों से दश्ते अरब छुड़ाया
मेरा वतन वही है, मेरा वतन वही है
सारे जहां को जिसने इल्मो-हुनर दिया था,
यूनानियों को जिसने हैरान कर दिया था
मिट्टी को जिसकी हकघ ने जर का असर दिया था
तुर्कों का जिसने दामन हीरों से भर दिया था
मेरा वतन वही है, मेरा वतन वही है
जिस देश में गंगा बहती है– शैलेंद्र
होठों पे सच्चाई रहती है, जहां दिल में सफाई रहती है
हम उस देश के वासी हैं, हम उस देश के वासी हैं
जिस देश में गंगा बहती है
मेहमां जो हमारा होता है, वो जान से प्यारा होता है
ज्यादा की नहीं लालच हमको, थोड़े में गुजारा होता है
बच्चों के लिए जो धरती मां, सदियों से सभी कुछ सहती है
हम उस देश के वासी हैं, हम उस देश के वासी हैं
जिस देश में गंगा बहती है
मेरे देश की आंखें–अज्ञेय
नहीं, ये मेरे देश की आंखें नहीं हैं
पुते गालों के ऊपर
नकली भवों के नीचे
छाया प्यार के छलावे बिछाती
मुकुर से उठाई हुई
मुस्कान मुस्कुराती
ये आंखें
नहीं, ये मेरे देश की नहीं हैं
तनाव से झुर्रियां पड़ी कोरों की दरार से
शरारे छोड़ती घृणा से सिकुड़ी पुतलियां
नहीं, ये मेरे देश की आंखें नहीं हैं
और कितने काल-सागरों के पार तैर आईं
मेरे देश की आंखें

2

फणीश्वर नाथ 'रेणु'

फणीश्वर नाथ 'रेणु' (4 मार्च 1921 औराही हिंगना, फारबिसगंज –11 अप्रैल 1977) एक हिन्दी भाषा के साहित्यकार थे। इनके पहले उपन्यास मैला आंचल को बहुत ख्याति मिली थी जिसके लिए उन्हें पद्मश्री पुरस्कार से सम्मानित किया गया था।

जीवनी

फणीश्वर नाथ ' रेणु ' का जन्म 4 मार्च 1921 को बिहार के अररिया जिले में फॉरबिसगंज के पास औराही हिंगना गाँव में हुआ था। उस समय यह पूर्णिया जिले में था। उनकी शिक्षा भारत और नेपाल में हुई। प्रारंभिक शिक्षा फारबिसगंज तथा अररिया में पूरी करने के बाद रेणु ने मैट्रिक नेपाल के विराटनगर के विराटनगर आदर्श विद्यालय से कोईराला परिवार में रहकर की। इन्होंने इन्टरमीडिएट काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से 1942 में की जिसके बाद वे स्वतंत्रता संग्राम में कूद पड़े। बाद में 1950 में उन्होंने नेपाली क्रांतिकारी आन्दोलन में भी हिस्सा लिया जिसके परिणामस्वरूप नेपाल में जनतंत्र की स्थापना हुई। पटना विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों के साथ छात्र संघर्ष समिति में सक्रिय रूप से भाग लिया और जयप्रकाश नारायण की सम्पूर्ण क्रांति में अहम भूमिका निभाई। 1952-53 के समय वे भीषण रूप से रोगग्रस्त रहे थे जिसके बाद लेखन की ओर उनका झुकाव हुआ। उनके इस काल की झलक उनकी

कहानी तबे एकला चलो रे में मिलती है। उन्होंने हिन्दी में आंचलिक कथा की नींव रखी। सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन अज्ञेय, एक समकालीन कवि, उनके परम मित्र थे। इनकी कई रचनाओं में कटिहार के रेलवे स्टेशन का उल्लेख मिलता है।

लेखन-शैली

इनकी लेखन-शैली वर्णणात्मक थी जिसमें पात्र के प्रत्येक मनोवैज्ञानिक सोच का विवरण लुभावने तरीके से किया होता था। पात्रों का चरित्र-निर्माण काफी तेजी से होता था क्योंकि पात्र एक सामान्य-सरल मानव मन (प्रायः) के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता था। इनकी लगभग हर कहानी में पात्रों की सोच घटनाओं से प्रधान होती थी। एक आदिम रात्रि की महक इसका एक सुंदर उदाहरण है।

रेणु की कहानियों और उपन्यासों में उन्होंने आंचलिक जीवन के हर धुन, हर गंध, हर लय, हर ताल, हर सुर, हर सुंदरता और हर कुरूपता को शब्दों में बांधने की सफल कोशिश की है। उनकी भाषा-शैली में एक जादुई सा असर है, जो पाठकों को अपने साथ बांध कर रखता है। रेणु एक अद्‌भुत किस्सागो थे और उनकी रचनाएँ पढ़ते हुए लगता है मानो कोई कहानी सुना रहा हो। ग्राम्य जीवन के लोकगीतों का उन्होंने अपने कथा साहित्य में बड़ा ही सर्जनात्मक प्रयोग किया है।

इनका लेखन प्रेमचंद की सामाजिक यथार्थवादी परंपरा को आगे बढ़ाता है और इन्हें आजादी के बाद का प्रेमचंद की संज्ञा भी दी जाती है। अपनी कृतियों में उन्होंने आंचलिक पदों का बहुत प्रयोग किया है।

साहित्यिक कृतियाँ

उपन्यास

रेणु को जितनी ख्याति हिंदी साहित्य में अपने उपन्यास मैला आँचल से मिली, उसकी मिसाल मिलना दुर्लभ है। इस उपन्यास के प्रकाशन ने उन्हें रातों-रात हिंदी के एक बड़े कथाकार के रूप में प्रसिद्ध कर दिया। कुछ आलोचकों ने इसे गोदान के बाद इसे हिंदी का दूसरा सर्वश्रेष्ठ उपन्यास घोषित करने में भी देर नहीं की। हालाँकि विवाद भी कम नहीं खड़े किये उनकी प्रसिद्धि से जलनेवालों ने। इसे सतीनाथ भादुरी के बंगला उपन्यास 'धोधाई चरित

मानस' की नकल बताने की कोशिश की गयी। पर समय के साथ इस तरह के झूठे आरोप ठंडे पड़ते गए।

रेणु के उपन्यास लेखन में मैला आँचल और परती परिकथा तक लेखन का ग्राफ ऊपर की ओर जाता है पर इसके बाद के उपन्यासों में वो बात नहीं दिखी।

मैला आंचल,
परती परिकथा,
जूलूस,
दीर्घतपा,
कितने चौराहे,
पलटू बाबू रोड,

कथा-संग्रह

एक आदिम रात्रि की महक,
ठुमरी,
अग्निखोर,
अच्छे आदमी,

रिपोर्ताज

ऋणजल-धनजल,
नेपाली क्रांतिकथा,
वनतुलसी की गंध,
श्रुत अश्रुत पूर्वे,

प्रसिद्ध कहानियाँ

मारे गये गुलफाम (तीसरी कसम),
एक आदिम रात्रि की महक,
लाल पान की बेगम,
पंचलाइट,
तबे एकला चलो रे,

ठेस,

संवदिया।

तीसरी कसम पर इसी नाम से राजकपूर और वहीदा रहमान की मुख्य भूमिका में प्रसिद्ध फिल्म बनी जिसे बासु भट्टाचार्य ने निर्देशित किया और सुप्रसिद्ध गीतकार शैलेन्द्र इसके निर्माता थे। यह फिल्म हिंदी सिनेमा में मील का पत्थर मानी जाती है। हीरामन और हीराबाई की इस प्रेम कथा ने प्रेम का एक अद्‌भुत महाकाव्यात्मक पर दुखांत कसक से भरा आख्यान सा रचा जो आज भी पाठकों और दर्शकों को लुभाता है।

सम्मान

अपने प्रथम उपन्यास 'मैला आंचल' के लिये उन्हें पद्‌मश्री से सम्मानित किया गया।

पुस्तक

फणीश्वर नाथ रेणु का कथा शिल्प, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के ग्रांट से प्रकाशित (1990), लेखक– रेणु शाह

भारत रत्न की मांग

वर्ष 2019 में यूथ फॉर बिहार के राष्ट्रीय अध्यक्ष एवं अखिल भारतीय धानुक एकता महासंघ के राष्ट्रीय महासचिव उदय मंडलमृत कड़ियाँ, ने भारत सरकार से फणीश्वरनाथ 'रेणु' को भारत रत्न देने की मांग की।

3

रबीन्द्रनाथ ठाकुर

रबीन्द्रनाथ टैगोर (7 मई, 1861 – 7 अगस्त, 1941) विश्वविख्यात कवि, साहित्यकार, दार्शनिक और भारतीय साहित्य के नोबल पुरस्कार विजेता हैं। उन्हें गुरुदेव के नाम से भी जाना जाता है। बांग्ला साहित्य के माध्यम से भारतीय सांस्कृतिक चेतना में नयी जान फूँकने वाले युगदृष्टा थे। वे एशिया के प्रथम नोबेल पुरस्कार सम्मानित व्यक्ति हैं। वे एकमात्र कवि हैं जिसकी दो रचनाएँ दो देशों का राष्ट्रगान बनीं –भारत का राष्ट्र–गान 'जन गण मन' और बाँग्लादेश का राष्ट्रीय गान 'आमार सोनार बाँग्ला' गुरुदेव की ही रचनाएँ हैं।

जीवन परिचय

रबीन्द्रनाथ टैगोर का जन्म देवेन्द्रनाथ टैगोर और शारदा देवी के सन्तान के रूप में 7 मई 1861 को कोलकाता के जोड़ासाँको बाड़ी में हुआ। उनकी आरम्भिक शिक्षा प्रतिष्ठित सेंट स्कूल में हुई। उन्होंने बैरिस्टर बनने की इच्छा में 1878 में इंग्लैंड के ब्रिजटोन में पब्लिक स्कूल में नाम लिखाया फिर लन्दन विश्वविद्यालय में कानून का अध्ययन किया लेकिन 1880 में बिना डिग्री प्राप्त किए ही स्वदेश वापस लौट आए। सन् 1883 में मृणालिनी देवी के साथ उनका विवाह हुआ।

टैगोर की माता का निधन उनके बचपन में हो गया था और उनके पिता व्यापक रूप से यात्रा करने वाले व्यक्ति थे, अतः उनका लालन–पालन अधिकांशतः नौकरों द्वारा ही किया गया था। टैगोर परिवार बंगाल पुनर्जागरण के

समय अग्रणी था उन्होंने साहित्यिक पत्रिकाओं का प्रकाशन किया, बंगाली और पश्चिमी शास्त्रीय संगीत एवं रंगमंच और पटकथाएं वहां नियमित रूप से प्रदर्शित हुईं थीं। टैगोर के पिता ने कई पेशेवर ध्रुपद संगीतकारों को घर में रहने और बच्चों को भारतीय शास्त्रीय संगीत पढ़ाने के लिए आमंत्रित किया था। टैगोर के सबसे बड़े भाई द्विजेंद्रनाथ एक दार्शनिक और कवि थे एवं दूसरे भाई सत्येंद्रनाथ कुलीन और पूर्व में सभी यूरोपीय सिविल सेवा के लिए पहले भारतीय नियुक्त व्यक्ति थे। एक भाई ज्योतिरिंद्रनाथ, संगीतकार और नाटककार थे एवं इनकी बहिन स्वर्णकुमारी उपन्यासकार थीं। ज्योतिरिंद्रनाथ की पत्नी कादंबरी देवी सम्भवतः टैगोर से थोड़ी बड़ी थीं व उनकी प्रिय मित्र और शक्तिशाली प्रभाव वाली स्त्री थीं जिन्होंने 1884 में अचानक आत्महत्या कर ली। इस कारण टैगोर और इनका शेष परिवार कुछ समय तक काफी समस्याओं से घिरा रहा था।

इसके बाद टैगोर ने बड़े पैमाने पर विद्यालयी कक्षा की पढ़ाई से परहेज किया और मैरर या पास के बोलपुर और पनिहती में घूमने को प्राथमिकता दी, और फिर परिवार के साथ कई जगहों का दौरा किया। उनके भाई हेमेंन्द्रनाथ ने उसे पढ़ाया और शारीरिक रूप से उसे वातानुकूलित किया –गंगा को तैरते हुए या पहाड़ियों के माध्यम से, जिमनास्टिक्स द्वारा, और जूडो और कुश्ती अभ्यास करना उनके भाई ने सिखाया था। टैगोर ने ड्राइंग, शरीर विज्ञान, भूगोल और इतिहास, साहित्य, गणित, संस्कृत और अंग्रेजी को अपने सबसे पसंदीदा विषय का अध्ययन किया था। कई सालों बाद उन्होंने कहा कि उचित शिक्षण चीजों की व्याख्या नहीं करता है, उनके अनुसार उचित शिक्षण, जिज्ञासा है।

ग्यारह वर्ष की उम्र में उनके उपनयन (जनेऊ) संस्कार के बाद, टैगोर और उनके पिता कई महीनों के लिए भारत का दौरा करने के लिए फरवरी 1873 में कलकत्ता छोड़कर अपने पिता के शांतिनिकेतन सम्पत्ति और अमृतसर से डलहौजी के हिमालयी पर्वतीय स्थल तक निकल गए थे। वहां टैगोर ने जीवनी, इतिहास, खगोल विज्ञान, आधुनिक विज्ञान और संस्कृत का अध्ययन किया था और कालिदास की शास्त्रीय कविताओं के बारे में भी पढ़ाई की थी। 1873 में अमृतसर में अपने एक महीने के प्रवास के दौरान, वह सुप्रभात गुरबानी और नानक बनी से बहुत प्रभावित हुए थे, जिन्हें स्वर्ण मंदिर में गाया जाता था जिसके लिए दोनों पिता और पुत्र नियमित रूप से आगंतुक थे। उन्होंने इसके बारे में अपनी पुस्तक मेरी यादों में उल्लेख किया जो 1912 में प्रकाशित हुई थी।

रचनाधर्मिता

बचपन से ही उनकी कविता, छन्द और भाषा में अद्‌भुत प्रतिभा का आभास लोगों को मिलने लगा था। उन्होंने पहली कविता आठ साल की उम्र में लिखी थी और सन् 1877 में केवल सोलह साल की उम्र में उनकी प्रथम लघुकथा प्रकाशित हुई थी। भारतीय सांस्कृतिक चेतना में नई जान फूँकने वाले युगदृष्टा टैगोर के सृजन संसार में गीतांजलि, पूरबी प्रवाहिनी, शिशु भोलानाथ, महुआ, वनवाणी, परिशेष, पुनश्च, वीथिका शेषलेखा, चोखेरबाली, कणिका, नैवेद्य मायेर खेला और क्षणिका आदि शामिल हैं। देश और विदेश के सारे साहित्य, दर्शन, संस्कृति आदि उन्होंने आहरण करके अपने अन्दर समेट लिए थे। पिता के ब्राह्मसमाजी के होने के कारण वे भी ब्रह्म-समाजी थे। पर अपनी रचनाओं व कर्म के द्वारा उन्होंने सनातन धर्म को भी आगे बढ़ाया। मनुष्य और ईश्वर के बीच जो चिरस्थायी सम्पर्क है, उनकी रचनाओं के अन्दर वह अलग-अलग रूपों में उभर आता है। साहित्य की शायद ही ऐसी कोई शाखा हो, जिनमें उनकी रचना न हो –कविता, गान, कथा, उपन्यास, नाटक, प्रबन्ध, शिल्पकला –सभी विधाओं में उन्होंने रचना की। उनकी प्रकाशित कृतियों में गीतांजलि। गीतांजली,,, गीताली, गीतिमाल्य, कथा ओ कहानी, शिशु, भोलानाथ, कणिका, क्षणिका, खेया आदि प्रमुख हैं। उन्होंने कुछ पुस्तकों का अंग्रेजी में अनुवाद भी किया। अंग्रेजी अनुवाद के बाद उनकी प्रतिभा पूरे विश्व में फैली।

कार्य

'वाल्मीकि प्रतिभा' नामक नाटक में शीर्ष भूमिका में रवीन्द्रनाथ ठाकुर (सन 1881), उनकी भतीजी इंदिरा देवी, लक्ष्मी की भूमिका में हैं।

टैगोर ने अपने जीवनकाल में कई उपन्यास, निबंध, लघु कथाएँ, यात्रावृन्त, नाटक और हजारों गाने भी लिखे हैं। रबीन्द्रनाथ टैगोर ज्यादातर अपनी पद्य कविताओं के लिए जाने जाते हैं। टैगोर की गद्य में लिखी उनकी छोटी कहानियों को शायद सबसे अधिक लोकप्रिय माना जाता है, इस प्रकार इन्हें वास्तव में बंगाली भाषा के संस्करण की उत्पत्ति का श्रेय दिया जाता है। उनके काम अक्सर उनके लयबद्ध, आशावादी, और गीतात्मक प्रकृति के लिए काफी उल्लेखनीय हैं। टैगोर ने इतिहास, भाषाविज्ञान और आध्यात्मिकता से जुड़ी कई किताबें लिखी

थीं। टैगोर के यात्रावृन्त, निबंध, और व्याख्यान कई खंडों में संकलित किए गए थे, जिनमें यूरोप के जटरिर पत्रों (यूरोप से पत्र) और 'मनुशर धर्म' (मनुष्य का धर्म) शामिल थे। अल्बर्ट आइंस्टीन के साथ उनकी संक्षिप्त बातचीत, 'वास्तविकता की प्रकृति पर नोट', बाद के उत्तरार्धों के एक परिशिष्ट के रूप में शामिल किया गया है।

टैगोर के 150 वें जन्मदिन के अवसर पर उनके कार्यों का एक (कालनुक्रोमिक रबीन्द्र रचनाबली) नामक एक संकलन वर्तमान में बंगाली कालानुक्रमिक क्रम में प्रकाशित किया गया है। इसमें प्रत्येक कार्य के सभी संस्करण शामिल हैं और लगभग अस्सी संस्करण हैं। 2011 में, हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस ने विश्व-भारती विश्वविद्यालय के साथ अंग्रेजी में उपलब्ध टैगोर के कार्यों की सबसे बड़ी संकलन द एसेंटियल टैगोर, को प्रकाशित करने के लिए सहयोग किया है यह फकराल आलम और राधा चक्रवर्ती द्वारा संपादित की गयी थी और टैगोर के जन्म की 150 वीं वर्षगांठ की निशानी है।

रबीन्द्र संगीत

टैगोर ने करीब 2,230 गीतों की रचना की। रवींद्र संगीत बाँग्ला संस्कृति का अभिन्न अंग है। टैगोर के संगीत को उनके साहित्य से अलग नहीं किया जा सकता। उनकी अधिकतर रचनाएँ तो अब उनके गीतों में शामिल हो चुकी हैं। हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत की ठुमरी शैली से प्रभावित ये गीत मानवीय भावनाओं के अलग-अलग रंग प्रस्तुत करते हैं।

अलग-अलग रागों में गुरुदेव के गीत यह आभास कराते हैं मानो उनकी रचना उस राग विशेष के लिए ही की गई थी। प्रकृति के प्रति गहरा लगाव रखने वाला यह प्रकृति प्रेमी ऐसा एकमात्र व्यक्ति है जिसने दो देशों के लिए राष्ट्रगान लिखा।

दर्शन

गुरुदेव ने जीवन के अंतिम दिनों में चित्र बनाना शुरू किया। इसमें युग का संशय, मोह, क्लान्ति और निराशा के स्वर प्रकट हुए हैं। मनुष्य और ईश्वर के बीच जो चिरस्थायी सम्पर्क है, उनकी रचनाओं में वह अलग-अलग रूपों में उभरकर सामने आया। टैगोर और महात्मा गाँधी के बीच राष्ट्रीयता और मानवता को लेकर हमेशा वैचारिक मतभेद रहा। जहां गान्धी पहले पायदान पर राष्ट्रवाद

को रखते थे, वहीं टैगोर मानवता को राष्ट्रवाद से अधिक महत्त्व देते थे। लेकिन दोनों एक दूसरे का बहुत अधिक सम्मान करते थे। टैगोर ने गान्धीजी को महात्मा का विशेषण दिया था। एक समय था जब शान्तिनिकेतन आर्थिक कमी से जूझ रहा था और गुरुदेव देश भर में नाटकों का मंचन करके धन संग्रह कर रहे थे। उस समय गान्धी जी ने टैगोर को 60 हजार रुपये के अनुदान का चेक दिया था।

जीवन के अन्तिम समय 7 अगस्त 1941 से कुछ समय पहले इलाज के लिए जब उन्हें शान्तिनिकेतन से कोलकाता ले जाया जा रहा था तो उनकी नातिन ने कहा कि आपको मालूम है हमारे यहाँ नया पावर हाउस बन रहा है। इसके जवाब में उन्होंने कहा कि हाँ पुराना आलोक चला जाएगा और नए का आगमन होगा।

सम्मान

उनकी काव्यरचना गीतांजलि के लिये उन्हें सन् 1913 में साहित्य का नोबेल पुरस्कार मिला। सन् 1915 में उन्हें राजा जॉर्ज पंचम ने नाइटहुड की पदवी से सम्मानित किया जिसे उन्होंने सन् 1919 में जलियाँवाला बाग हत्याकांड के विरोध में वापस कर दिया था।

रबीन्द्र साहित्य

गुरुदेव के नाम से रबीन्द्र नाथ टैगोर ने बांग्ला साहित्य को एक नई दिशा दी। उन्होंने बंगाली साहित्य में नए तरह के पद्य और गद्य के साथ बोलचाल की भाषा का भी प्रयोग किया। इससे बंगाली साहित्य क्लासिकल संस्कृत के प्रभाव से मुक्त हो गया। टैगोर की रचनायें बांग्ला साहित्य में एक नई ऊर्जा ले कर आई। उन्होंने एक दर्जन से अधिक उपन्यास लिखे। इनमें चोखेर बाली, घरे बहिरे, गोरा आदि शामिल हैं। उनके उपन्यासों में मध्यम वर्गीय समाज विशेष रूप से उभर कर सामने आया। 1913 ईस्वी में गीतांजलि के लिए इन्हें साहित्य का नोबल पुरस्कार मिला जो कि एशिया में प्रथम विजेता साहित्य में है। मात्र आठ वर्ष की उम्र में पहली कविता और केवल 16 वर्ष की उम्र में पहली लघुकथा प्रकाशित कर बांग्ला साहित्य में एक नए युग की शुरुआत की रूपरेखा तैयार की। उनकी कविताओं में नदी और बादल की अठखेलियों से लेकर अध्यात्मवाद तक के विभिन्न विषयों को बखूबी उकेरा गया है। उनकी कविता पढ़ने से उपनिषद की भावनाएं परिलक्षित होती हैं।

4

यशपाल

यशपाल हिन्दी साहित्य के प्रेमचंदोत्तर युगीन कथाकार हैं। ये विद्यार्थी जीवन से ही क्रांतिकारी आन्दोलन से जुड़े थे। इन्हें साहित्य एवं शिक्षा के क्षेत्र में भारत सरकार द्वारा सन् 1970 में पद्म भूषण से सम्मानित किया गया था।

जीवनी

यशपाल का जन्म 3 दिसम्बर 1903 को पंजाब में, फीरोजपुर छावनी में एक साधारण खत्री परिवार में हुआ था। उनकी माँ श्रीमती प्रेमदेवी वहाँ अनाथालय के एक स्कूल में अध्यापिका थीं। यशपाल के पिता हीरालाल एक साधारण कारोबारी व्यक्ति थे। उनका पैतृक गाँव रंघाड़ था, जहाँ कभी उनके पूर्वज हमीरपुर से आकर बस गए थे। पिता की एक छोटी-सी दुकान थी और लोग उन्हें 'लाला' कहते-पुकारते थे। बीच-बीच में वे घोड़े पर सामान लादकर फेरी के लिए आसपास के गाँवों में भी जाते थे। अपने व्यवसाय से जो थोड़ा-बहुत पैसा उन्होंने इकट्ठा किया था उसे वे, बिना किसी पुख्ता लिखा-पढ़ी के, हथ उधारू तौर पर सूद पर उठाया करते थे। अपने परिवार के प्रति उनका ध्यान नहीं था। इसीलिए यशपाल की माँ अपने दो बेटों-यशपाल और धर्मपाल-को लेकर फिरोजपुर छावनी में आर्य समाज के एक स्कूल में पढ़ाते हुए

अपने बच्चों की शिक्षा-दीक्षा के बारे में कुछ अधिक ही सजग थीं। यशपाल के विकास में गरीबी के प्रति तीखी घृणा आर्य समाज और स्वाधीनता आंदोलन के प्रति उपजे आकर्षण के मूल में उनकी माँ और इस परिवेश की एक निर्णायक भूमिका रही है। यशपाल के रचनात्मक विकास में उनके बचपन में भोगी गई गरीबी की एक विशिष्ट भूमिका थी।

अंग्रेजी राज और यशपाल जी

अपने बचपन में यशपाल ने अंग्रेजों के आतंक और विचित्र व्यवहार की अनेक कहानियाँ सुनी थीं। बरसात या धूप से बचने के लिए कोई हिन्दुस्तानी अंग्रेजों के सामने छाता लगाए नहीं गुजर सकता था। बड़े शहरों और पहाड़ों पर मुख्य सड़कें उन्हीं के लिए थीं, हिन्दुस्तानी इन सड़कों के नीचे बनी कच्ची सड़क पर चलते थे। यशपाल ने अपने होश में इन बातों को सिर्फ सुना, देखा नहीं, क्योंकि तब तक अंग्रेजों की प्रभुता को अस्वीकार करने वाले क्रांतिकारी आंदोलन की चिंगारियाँ जगह-जगह फूटने लगी थीं। लेकिन फिर भी अपने बचपन में यशपाल ने जो भी कुछ देखा, वह अंग्रेजों के प्रति घृणा भर देने को काफी था। वे लिखते हैं, ''मैंने अंग्रेजों को सड़क पर सर्व साधारण जनता से सलामी लेते देखा है। हिन्दुस्तानियों को उनके सामने गिड़गिड़ाते देखा है, इससे अपना अपमान अनुमान किया है और उसके प्रति विरोध अनुभव किया।..'

अंग्रेजों और प्रकारांतर से ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध अपनी घृणा के संदर्भ में यशपाल अपने बचपन की दो घटनाओं का उल्लेख विशेष रूप से करते हैं। इनमें से पहली घटना उनके चार-पाँच वर्ष की आयु की है। तब उनके एक संबंधी युक्तप्रांत के किसी कस्बे में कपास ओटने के कारखाने में मैनेजर थे। कारखाना स्टेशन के पास ही काम करने वाले अंग्रेजों के दो-चार बँगले थे। आसपास ही इन लोगों का खूब आतंक था। इनमें से एक बँगले में मुर्गियाँ पली थीं, जो आसपास की सड़क पर घूमती-फिरती थीं। एक शाम यशपाल उन मुर्गियों से छेड़खानी करने लगे। बँगले में रहने वाली मेम साहिबा ने इस हरकत पर बच्चों को फटकार दिया। शायद 'गधा' या 'उल्लू' जैसी कोई गाली भी दी। चार-पाँच वर्ष के बालक यशपाल ने भी उसकी गाली का प्रत्युत्तर गाली से ही दिया। जब उस स्त्री ने उन्हें मारने की धमकी दी, तो उन्होंने भी उसे वैसे ही धमकाते हुए जवाब दिया और फिर भागकर कारखाने में छिप गए। लेकिन घटना

यूँ ही टाल दी जानेवाली नहीं थी। इसकी शिकायत उनके संबंधी से की गई। उन्होंने यशपाल की माँ से शिकायत की और अनेक आशंकाओं और आतंक के बीच यह भी बताया कि इससे पूरे कारखाने के लोगों पर कैसा संकट आ सकता है। फिर इसके परिणाम का उल्लेख करते हुए यशपाल लिखते हैं, 'मेरी माँ ने एक छड़ी लेकर मुझे खूब पीटा मैं जमीन पर लोट-पोट गया परंतु पिटाई जारी रही। इस घटना के परिणाम से मेरे मन में अंग्रेजों के प्रति कैसी भावना उत्पन्न हुई होगी, यह भाँप लेना कठिन नहीं है।...'

दूसरी घटना कुछ इसके बाद की है। तब यशपाल की माँ युक्तप्रांत में ही नैनीताल जिले में तिराई के कस्बे काशीपुर में आर्य कन्या पाठशाला में मुख्याध्यापिका थीं। शहर से काफी दूर, कारखाने से ही संबंधी को बड़ा-सा आवास मिला था और यशपाल की माँ भी वहीं रहती थी। घर के पास ही श्द्रोण सागर' नामक एक तालाब था। घर की स्त्रियाँ प्राय: ही वहाँ दोपहर में घूमने चली जाती थीं। एक दिन वे स्त्रियाँ वहाँ नहा रही थीं कि उसके दूसरी ओर दो अंग्रेज शायद फौजी गोरे, अचानक दिखाई दिए। स्त्रियाँ उन्हें देखकर भय से चीखने लगीं और आत्मरक्षा में एक-दूसरे से लिपटते हुए, भयभीत होकर उसी अवस्था में अपने कपड़े उठाकर भागने लगीं। यशपाल भी उनके साथ भागे। घटित कुछ विशेष नहीं हुआ लेकिन अंग्रेजों से इस तरह डरकर भागने का दृश्य स्थायी रूप से उनकी बाल-स्मृति में टँक गया।..'अंग्रेज से वह भय ऐसा ही था जैसे बकरियों के झुंड को बाघ देख लेने से भय लगता होगा अर्थात् अंग्रेज कुछ भी कर सकता था। उससे डरकर रोने और चीखने के सिवाय दूसरा कोई उपाय नहीं था।..'

आर्य समाज और कांग्रेस वे पड़ाव थे जिन्हें पार करके यशपाल अंतत: क्रांतिकारी संगठन की ओर आए। उनकी माँ उन्हें स्वामी दयानंद के आदर्शों का एक तेजस्वी प्रचारक बनाना चाहती थीं। इसी उद्देश्य से उनकी आरंभिक शिक्षा गुरुकुल कांगड़ी में हुई। आर्य समाजी दमन के विरुद्ध उग्र प्रतिक्रिया के बीज उनके मन की धरती पर यहीं पड़े। यहीं उन्हें पुनरुत्थानवादी प्रवृत्तियों को भी निकट से देखने-समझने का अवसर मिला। अपनी निर्धनता का कचोट-भरा अनुभव भी उन्हें यहीं हुआ। अपने बचपन में भी गरीब होने के अपराध के प्रति वे अपने को किसी प्रकार उत्तरदायी नहीं समझ पाते। इन्हीं संस्कारों के कारण वे गरीब के अपमान के प्रति कभी उदासीन नहीं हो सके।

कांग्रेस यशपाल का दूसरा पड़ाव थी। अपने दौर के अनेक दूसरे लोगों की तरह वे भी कांग्रेस के माध्यम से ही राजनीति में आए। राजनैतिक दृष्टि से फिरोजपुर छावनी एक शांत जगह थी। छावनी से तीन मील दूर शहर के लेक्चर और जलसे होते रहते थे। खद्दर का प्रचार भी होता था। 1921 में, असहयोग आंदोलन के समय यशपाल अठारह वर्ष के नवयुवक थे–देश–सेवा और राष्ट्रभक्ति के उत्साह से भरपूर, विदेशी कपड़ों की होली के साथ वे कांग्रेस के प्रचार–अभियान में भी भाग लेते थे। घर के ही लुग्गड़ से बने खद्दर के कुर्त्ता–पायजामा और गांधी टोपी पहनते थे। इसी खद्दर का एक कोट भी उन्होंने बनवाया था। बार–बार मैला हो जाने से ऊबकर उन्होंने उसे लाल रँगवा लिया था। इस काल में अपने भाषणों में, ब्रिटिश साम्राज्यवाद विरोधी आँकड़ों के स्रोत के रूप में, वे देश–दर्शन नामक जिस पुस्तक का उल्लेख करते हैं वह संभवत: 1904 में प्रकाशित सखाराम गणेश देउस्कर की बांला पुस्तक देशेरकथा है, भारतीय जन–मानस पर जिसकी छाप व्यापक प्रतिक्रिया और लोकप्रियता के कारण ब्रिटिश सरकार ने जिस पर पाबंदी लगा दी थी।

महात्मा गाँधी और गाँधीवाद से यशपाल के तात्कालिक मोहभंग का कारण भले ही 12 फरवरी सन् 22 को, चौरा–चौरी काण्ड के बाद महात्मा गाँधी द्वारा आंदोलन के स्थगन की घोषणा रहा हो, लेकिन इसकी शुरुआत और पहले हो चुकी थी। यशपाल और उनके क्रांतिकारी साथियों का सशस्त्र क्रांति का जो एजेंडा था, गाँधी का अहिंसा का सिद्धांत उसके विरोध में जाता था। महात्मा गाँधी द्वारा धर्म और राजनीति का घाल–मेल उन्हें कहीं बुनियादी रूप से गलत लगता था। मैट्रिक के बाद लाहौर आने पर यशपाल नेशनल कॉलेज में भगतसिंह, सुखदेव और भगवतीचरण बोहरा के संपर्क में आए। नौजवान भारत सभा की गतिविधियों में उनकी व्यापक और सक्रिय हिस्सेदारी वस्तुत: गाँधी और गाँधीवाद से उनके मोहभंग की एक अनिवार्य परिणाम थी। नौजवान भारत सभा के मुख्य सूत्रधार भगवतीचरण और भगत सिंह थे।

उसके लक्ष्यों पर टप्पणी करते हुए यशपाल लिखते हैं, ‘नौजवान भारत सभा का कार्यक्रम गाँधीवादी कांग्रेस की समझौतावादी नीति की आलोचना करके जनता को उस राजनैतिक कार्यक्रम की प्रेरणा देना और जनता में क्रांतिकारियों और महात्मा गाँधी तथा गाँधीवादियों के बीच एक बुनियादी अंतर की ओर संकेत करना उपयोगी होगा। लाला लाजपतराय की हिन्दूवादी नीतियों

से घोर विरोध के बावजूद उनपर हुए लाठी चार्ज के कारण, जिससे ही अंततः उनकी मृत्यु हुई, भगतसिंह और उनके साथियों ने सांडर्स की हत्या की। इस घटना को उन्होंने एक राष्ट्रीय अपमान के रूप में देखा जिसके प्रतिरोध के लिए आपसी मतभेदों को भुला देना जरूरी था। भगतसिंह द्वारा असेम्बली में बम-कांड इसी सोच की एक तार्किक परिणति थी, लेकिन भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु की फाँसी के विरोध में महात्मा गाँधी ने जनता की ओर से व्यापक दबाव के बावजूद, कोई औपचारिक अपील तक जारी नहीं की।

अपने क्रांतिकारी जीवन के जो संस्मरण यशपाल ने सिंहावलोकन में लिखे, उनमें अपनी दृष्टि से उन्होंने उस आंदोलन और अपने साथियों का मूल्यांकन किया। तार्किकता, वास्तविकता और विश्वसनीयता पर उन्होंने हमेशा जोर दिया है। यह संभव है कि उस मूल्यांकन से बहुतों को असहमति हो या यशपाल पर तथ्यों को तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत करने का आरोप हो। आज भी कुछ लोग ऐसे हैं, जो यशपाल को बहुत अच्छा क्रांतिकारी नहीं मानते। उनके क्रांतिकारी जीवन के प्रसंग में उनके चरित्रहनन की दुरभसंधियों को ही वे पूरी तरह सच मानकर चलते हैं और शायद इसीलिए यशपाल की ओर मेरी निरंतर और बार-बार वापसी को वे 'रेत की मूर्ति' गढ़ने-जैसा कुछ मानते हैं।

'क्रांति' को भी वे बम-पिस्तौलवाली राजनीति क्रांति तक ही सीमित करके देखते हैं। राजनीतिक क्रांति यशपाल के लिए सामाजिक व्यवस्था में क्रांतिकारी परिवर्तन का ही एक हिस्सा थी। साम्राज्यवाद को वे एक शोषणकारी व्यवस्था के रूप में देखते थे, जो भगतसिंह के शब्दों में, 'मनुष्य के हाथों मनुष्य के और राष्ट्र के हाथों राष्ट्र के शोषण का चरम रूप है'..(भगतसिंह और उनके साथियों के दस्तावेज (सं.) जगमोहन और चमनलाल, संस्करण '19, पृ.321) इस व्यवस्था के आधार स्तंभ-जागीरदारी और जमींदारी व्यवस्था भी उसी तरह उनके विरोध के मुख्य एजेंडे के अंतर्गत आते थे। देश में जिस रूप में स्वाधीनता आई और बहुतों की तरह, वे भी संतुष्ट नहीं थे। स्वाधीनता से अधिक वे इसे सत्ता का हस्तांतरण मानते थे। और यह लगभग वैसा ही था जिसे कभी प्रेमचंद ने जॉन की जगह गोविंद को गद्दी पर बैठ जाने के रूप में अपनी आशंका व्यक्त की थी।

क्रांतिकारी राष्ट्र भक्ति और बलिदान की भावना से प्रेरित-संचालित युवक थे। अवसर आने पर उन्होंने हमेशा बलिदान से इसे प्रमाणित भी किया। लेकिन

यशपाल अपने साथियों को ईर्ष्या–द्वेष, स्पर्धा–आकांक्षावाले साधारण मनुष्यों के रूप में देखे जाने पर बल देते हैं। अपने संस्मरणों में आज राजेन्द्र यादव जिसे आदर्श घोषित करते हैं–'वे देवता नहीं हैं'– उसकी शुरुआत हिन्दी में वस्तुतः यशपाल के इन्हीं संस्मरणों से होती है। ये क्रांतिकारी सामान्य मनुष्यों से कुछ अलग, विशिष्ट और अपने लक्ष्यों के लिए एकांतिक रूप से समर्पित होने पर भी सामान्य मानवीय अनुभूतियों से अछूते नहीं थे। हो भी सकते थे। शरतचंद्र ने पथेरदावी में क्रांतिकारियों का जो आदर्श रूप प्रस्तुत किया, यशपाल उसे आवास्तविक मानते थे, जिससे राष्ट्रभक्ति की प्रेरणा मिलती हो, उसे क्रांतिकारी आंदोलन और उस जीवन को वास्तविकता का एक प्रतिनिधि और प्रामाणिक चित्र नहीं माना जा सकता। सुबोधचंद्र सेन गुप्त पथेरदावी में बिजली पानीवाली झंझावाती रात में सव्यसाची के निष्क्रमण को भावी महानायक सुभाषचंद्र बोस के पलायन के एक रूपक के तौर पर देखते हैं, जबकि यशपाल सव्यसाची के अतिमानवीय से लगने वाले कार्य–कलापों और खोह–खंडहरों में बिताए जानेवाले जीवन को वास्तविक और प्रामाणिक नहीं मानते। क्रांतिकारी जीवन के अपने लंबे अनुभवों को ही वे अपनी इस आलोचना के मुख्य आधार के रूप में इस्तेमाल करते हैं।

2, मार्च सन् 38 को जेल से रिहाई के बाद, जब उसी वर्ष नवंबर में यशपाल ने विप्लव का प्रकाशन–संपादन शुरू किया तो अपने इस काम को उन्होंने 'बुलेट बुलेटिन' के रूप में परिभाषित किया। जिस अहिंसक और समतामूलक समाज का निर्माण वे राजनीतिक क्रांतिकारी के माध्यम से करना चाहते थे, उसी अधूरे काम को आगे बढ़ाने के लिए उन्होंने लेखन को अपना आधार बनाया। अपने समय की सामाजिक–राजनीतिक समस्याओं के केन्द्र में रखकर लिखे गए साहित्य को प्रायः हमेशा ही विचारवादी कहकर लांछित किया जाता है। नंद दुलारे वाजपेयी का प्रेमचंद के विरुद्ध बड़ा आरोप यही था। अपने ऊपर लगाए गए प्रचार के आरोप का यशपाल ने उत्तर भी लगभग प्रेमचंद की ही तरह दिया।

अपने पहले उपन्यास दादा कॉमरेड की भूमिका में उन्होंने लिखा, 'कला के प्रेमियों को एक शिकायत मेरे प्रति है कि (मैं) कला को गौण और प्रचार को प्रमुख स्थान देता हूँ। मेरे प्रति दिए गए इस फैसले के विरुद्ध मुझे अपील नहीं करनी। संतोष है अपना अभिप्राय स्पष्ट कर पाता हूं...(दादा कॉमरेड, संस्करण' 59, पृ.4) अपने लेखकीय सरोकारों पर और विस्तार से टिप्पणी करते

हुए बाद में उन्होंने लिखा, 'मनुष्य के पूर्ण विकास और मुक्ति के लिए संघर्ष करना ही लेखक की सार्थकता है। जब लेखक अपनी कला के माध्यम से मनुष्य की मुक्ति के लिए पुरानी व्यवस्था और विचारों में अंतर्विरोध दिखाता है और नए आदर्श सामने रखता है तो उस पर आदर्शहीन और भौतिकवादी होने का लांछन लगाया जाता है। आज के लेखक की जड़ें वास्तविकता में हैं, इसलिए वह भौतिकवादी तो है ही परंतु वह आदर्शहीन भी नहीं है। उसके आदर्श अधिक यथार्थ हैं। आज का लेखक जब अपनी कला द्वारा नए आदर्शों का समर्थन करता है तो उस पर प्रचारक होने का लांछन लगाया जाता है। लेखक सदा ही अपनी कला से किसी विचार या आदर्श के प्रति सहानुभूति या विरोध पैदा करता है। साहित्य विचारपूर्ण होगा।

साहित्य और यशपाल जी

यशपाल के लेखन की प्रमुख विधा उपन्यास है, लेकिन अपने लेखन की शुरुआत उन्होंने कहानियों से ही की। उनकी कहानियाँ अपने समय की राजनीति से उस रूप में आक्रांत नहीं हैं, जैसे उनके उपन्यास। नई कहानी के दौर में स्त्री के देह और मन के कृत्रिम विभाजन के विरुद्ध एक संपूर्ण स्त्री की जिस छवि पर जोर दिया गया, उसकी वास्तविक शुरुआत यशपाल से ही होती है। आज की कहानी के सोच की जो दिशा है, उसमें यशपाल की कितनी ही कहानियाँ बतौर खाद इस्तेमाल हुई हैं। वर्तमान और आगत कथा–परिदृश्य की संभावनाओं की दृष्टि से उनकी सार्थकता असंदिग्ध है। उनके कहानी–संग्रहों में पिंजरे की उड़ान, ज्ञानदान, भस्मावृत्त चिनगारी, फूलों का कुर्ता, धर्मयुद्ध, तुमने क्यों कहा था मैं सुन्दर हूँ और उत्तमी की माँ प्रमुख हैं।

जो और जैसी दुनिया बनाने के लिए यशपाल सक्रिय राजनीति से साहित्य की ओर आए थे, उसका नक्शा उनके आगे शुरू से बहुत कुछ स्पष्ट था। उन्होंने किसी युटोपिया की जगह व्यवस्था की वास्तविक उपलब्धियों को ही अपना आधार बनाया था। यशपाल की वैचारिक यात्रा में यह सूत्र शुरू से अंत तक सक्रिय दिखाई देता है कि जनता का व्यापक सहयोग और सक्रिय भागीदारी ही किसी राष्ट्र के निर्माण और विकास के मुख्य कारक हैं। यशपाल हर जगह जनता के व्यापक हितों के समर्थक और संरक्षक लेखक हैं। अपनी पत्रकारिता और लेखन–कर्म को जब यशपाल 'बुलेट की जगह बुलेटिन' के रूप में परिभाषित करते हैं तो एक तरह से वे अपने रचनात्मक सरोकारों पर ही टिप्पणी कर रहे होते हैं। ऐसे दुर्धर्ष लेखक

के प्रतिनिधि रचनाकर्म का यह संचयन उसे संपूर्णता में जानने-समझने के लिए प्रेरित करेगा, ऐसा हमारा विश्वास है। वर्षों 'विप्लव' पत्र का संपादन-संचालन। समाज के शोषित, उत्पीड़ित तथा सामाजिक बदलाव के लिए संघर्षरत व्यक्तियों के प्रति रचनाओं में गहरी आत्मीयता। धार्मिक ढोंग और समाज की झूठी नैतिकताओं पर करारी चोट। अनेक रचनाओं के देशी-विदेशी भाषाओं में अनुवाद। 'मेरी तेरी उसकी बात' नामक उपन्यास पर साहित्य अकादमी पुरस्कार।

पुरस्कार

'देव पुरस्कार' (1955),
'सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार' (1970),
'मंगला प्रसाद पारितोषिक' (1971),
'पद्‌म भूषण',
साहित्य अकादमी पुरस्कार।

प्रमुख प्रकाशित कृतियाँ

दिव्या, देशद्रोही, झूठा सच, दादा कामरेड, अमिता, मनुष्य के रूप, मेरी तेरी उसकी बात (उपन्यास), पिंजड़े की उड़ानों, फूल का कुर्ता, भस्मावृत चिंगारी, धर्मयुद्ध, सच बोलने की भूल (कहानी-संग्रह) तथा चक्कर क्लब (व्यंग्य-संग्रह)।

उपन्यास

दिव्या,
देशद्रोही,
झूठा सच,
दादा कामरेड,
अमिता,
मनुष्य के रूप,
तेरी मेरी उसकी बात।

कहानी संग्रह

पिंजरे की उड़ान,
फूलों का कुर्ता,

धर्मयुद्ध,
सच बोलने की भूल,
भस्मावृत चिंगारी,
उत्तनी की मां,
चित्र का शीर्षक,
तुमने क्यों कहा था मैं सुंदर हूं,
ज्ञान दान,
वो दुनिया।

व्यंग्य संग्रह

चक्कर क्लब,
कुत्ते की प।

स्वतंत्रता संग्राम में साहित्यकार यशपाल का अहम योगदान

स्वतंत्रता संग्राम में महान क्रातिकारी एवं साहित्यकार यशपाल के योगदान को कभी भुलाया नहीं जा सकता है। कलम के सिपाही के रूप में स्वतंत्रता संग्राम में लोगों को जागृत करने के लिए यशपाल ने सराहनीय कार्य किए हैं तथा वर्तमान में भी उनके विचार प्रासंगिक हैं। मुख्य संसदीय सचिव इद्रदत्त लखनपाल नादौन के संस्कृति सदन में यशपाल जयंती के उपलक्ष्य पर राज्यस्तरीय समारोह में संबोधित कर रहे थे। उन्होंने कहा कि भारतीय समाज और हिदी साहित्य को नवीन दिशा देने वाले हिमाचल के वीर सपूत महान क्रातिकारी साहित्यकार यशपाल का नाम उन गण्यमान्य साहित्यकारों में लिया जाता है जिन्होंने समाज और साहित्य को जीने के लिए नए प्रतिमान और दिशा प्रदान की है।

वो "यशपाल" जिन्होंने भगत सिंह चन्द्रशेखर आजाद, राजगुरु और सुखदेव जैसे महान क्रांतिकारियों के साथ जंग-ए-आजादी में अपना योगदान दिया। भूम्पल गाँव में अत्यंत गरीब घर में पैदा हुए यशपाल के सर से पिता का साया बहुत जल्दी उठ गया था। पढ़ने के लिए उनकी गरीब माँ ने उन्हें बचपन में ही आर्य समाज द्वारा मुफ्त चलाए जाने वाले गुरुकुल हरिद्वार में भेज दिया।

बचपन से ही बच्चा यशपाल सोचता था कि भारत को गुलामी की बेड़ियों से कैसे आजाद करवाया जाए। इसी बात की जब वो सहपाठियों से चर्चा करता

तो उसकी गरीबी का मजाक उड़ाया जाता। आखिर यशपाल ने एक बार बुरी तरह बीमार हो जाने के बाद गुरुकुल छोड़ दिया और उनकी माँ उन्हें लेकर लाहौर चली आईं।

लाहौर शहर उस समय पंजाब की राजधानी और शिक्षा का बहुत बड़ा हब था। मिडल स्कूल की पढ़ाई लाहौर से करने के बाद यशपाल ने हाई स्कूल की पढ़ाई फिरोजपुर से की। 17 साल का किशोर यशपाल अब महात्मा गांधी का फॉलोवर बनकर स्वतन्त्र संग्राम में अपने योगदान के लिए व्याकुल हो चला था।

गांधी जी के असहयोग आंदोलन के सन्देश को गाँव-गाँव में पहुँचाने का काम यशपाल ने शुरू कर दिया था। यहाँ तक की मेट्रिक फर्स्ट क्लास करने के बाद सरकार की तरफ से सरकारी कालेज में पढ़ने हेतु स्कॉलरशिप मिल सकती थी, वो भी यशपाल ने ठुकरा दी और खुद फीस देकर नेशनल कालेज लाहौर में दाखिला ले लिया। नेशनल कालेज लाहौर आर्य समाज से सबंधित था और स्वतंत्रता सेनानी लाला लाजपत राय ने इसकी स्थापना की थी।

यह वो कालेज था जहाँ यशपाल की मुलाकात भगत सिंह, राजगुरु और सुखदेव थापर सरीखे नौजवानों से हुई। यही कालेज पंजाब में क्रांतिकारियों का अड्डा बना। आजादी के लिए मतवाले ये नौजवान यहाँ क्रांति और क्रांतिकारियों के इतिहास से भरी किताबें पढ़ते और आपस में भारत को आजाद करवाने के एजेंडे पर चर्चा करते। यहीं भगत सिंह ने 1928 में स्थापना कर दी Hindustan Socialist Republican Association (HSRA) की। यशपाल भी इसी का हिस्सा हो गए।

भगत सिंह राजगुरु और सुखदेव आजाद सरीखे लोग सामने काम करते वहीं यशपाल परदे के पीछे HSRA को सपोर्ट करते। यशपाल बम एक्सपर्ट के रूप में HSRA के बीच प्रसिद्ध हो गए। 1अप्रैल 1929 को गुप्त रूप से लाहौर में चल रही बम बनाने की फैक्ट्री पर जब ब्रिटिश पुलिस की रेड पड़ी तो यशपाल लाहौर से भूमिगत होकर हिमाचल में अपने पैतृक इलाके कांगड़ा में आ गए।

ऐसे छुपकर काम नहीं चलेगा, संगठन को फिर इकट्ठा करना पड़ेगा, यह सोच मन में लेकर यशपाल जून 1929 को फिर लाहौर पहुँच गए। यशपाल लाहौर तो पहुँचे पर क्रांतिकारियों का कारवाँ बिछड़ चुका था। भगत और सुखदेव अरेस्ट हो चुके थे अन्य साथियों (जो फ्री थे) के पते यशपाल के पास नहीं थे। ये पते दे सकता था जेल में बंद सुखदेव। यशपाल वकील बनकर जेल में सुखदेव से मिले और कुछ लोगों के पते मालूम किए।

परन्तु जब तक वो उन पतों से साथियों को इकट्ठा कर पाते, पुलिस ने सहारनपुर में स्थित HSRA की दूसरी बम बनाने के कारखाने पर भी रेड कर दी और HSRA से जुड़े लोग पकड़े गए। उनमें से कुछ ब्रिटिश पुलिस के मुखबिर बन गए।

यशपाल ने तब अपने ही दम पर आगे बढ़ने का विचार किया। 23 दिसम्बर 1929 को लॉर्ड इरविन को ले जा रही ट्रेन में विस्फोट हुआ। यह बम धमाका यशपाल ने किया था। इस विस्फोट से नुकसान तो हुआ पर लॉर्ड इरविन की जान बच गई। इसके बाद HSRA पर ब्रिटिश पुलिस का शिकंजा कस गया, बहुत से सदस्य गिरफ्तार कर लिए गए लेकिन यशपाल और आजाद अभी भी बाहर थे। 1930 में चंद्रशेखर आजाद ने HSRA को फिर संगठित करने के बीड़ा उठाया। यशपाल को सेंट्रल कमिटी का मेंबर बनाया गया और उन्हें पंजाब का प्रभार सौंपा गया।

यह वो समय था जब यशपाल की मुलाकात 17 साल की लड़की प्रकाशवती कपूर से हुई, जो भविष्य में उनकी पत्नी भी बनीं। परन्तु प्रकाशवती से सबंधों के चलते उन्हें अपने ही साथियों की आलोचना भी सहनी पड़ी क्योंकि HSRA वैचारिक रूप से शादी ब्याह में यकीन नहीं रखती थी। ऊपर से 17 वर्ष की कपूर को संगठन उम्र के हिसाब से भी कम मान रहा था। HSRA में यहाँ तक चर्चा चलने लगी कि यशपाल कहीं रास्ता बदलकर पुलिस के मुखबिर न हो जाएं।

सितम्बर 1930 में आजाद ने फैसला किया की HSRA के सदस्यों को अब क्रान्ति मिलकर एक जगह से नहीं बल्कि अपने-अपने दम पर हर कोने से शुरू कर देनी चाहिये। इस आधार पर आजाद ने बचे संगठन के सब लोगों में हथियार बाँट दिए। 23 मार्च 1931 लाहौर असेंबली में बम फेंकने और सार्जेंट की हत्या के आरोप में भगत सिंह, राजगुरु और सुखदेव को फांसी दे दी गई। HSRA के लिए यह बहुत बड़ा झटका था। इसी बीच यशपाल ने रूस जाकर क्रांति को जिन्दा रखने की कोशिश की पर कामयाब नहीं हुए। चंद्रशेखर आजाद से बेशक उनके मतभेद रहे पर मनभेद कभी नहीं था। यह इस बात से भी प्रमाणित होता है कि आजाद की शहादत तक यशपाल उनके साथ काम करते रहे।

गिरफ्तारी

1932 वह दौर था जब न भगत सिंह थे, न चंद्रशेखर आजाद। HSRA लगभग खत्म हो रहा था। यशपाल ने उसे जिंदा करने की ठानी और सफल भी

हुए जनवरी 1932 में यशपाल एक बार पुनर्जीवित HSRA में कमांडर इन चीफ चुने गए। HSRA खत्म नहीं हुआ है, ऐसे पर्चे छपवाकर देशभर में बांटे गए, जिन पर कमांडर इन चीफ यशपाल का नाम लिखा था। परन्तु जनवरी जाते-जाते यशपाल आखिरकार पहले बार पुलिस की पकड़ में आ गए और 22 जनवरी को गिरफ्तार कर लिए गए।

यशपाल का हर काम परदे के पीछे का रहा था और वो कभी गांधी से प्रभावित होकर सत्याग्रही भी रहे थे। इसलिए नेहरू परिवार से संबंधित श्याम कुमारी नेहरू ने उन्हें राजनीतिक कैदी बनवा दिया। उनपर कानपुर में हत्या और इलाहबाद में पुलिस वाले की हत्या के दो मुकदमे चले थे और दोनों में अलग-अलग सजा सुनाई गई।

कुलमिलाकर उन्हें 14 वर्ष की सजा हुई। बाद में यशपाल की क्रिमिनल हिस्ट्री और गिरते स्वास्थ्य के बावजूद प्रकाशवती कपूर ने उन्हीं से शादी का संकल्प लिया और पूरा भी किया। भारत के इतिहास में पहली बार ऐसा हुआ कि 7 अगस्त 1936 को यशपाल और प्रकाशवती की शादी जेल में ही हुई। बाद में कांग्रेस और ब्रिटिश राज के बीच हुई संधि के तहत राजनीतिक कैदियों को छोड़ने का फैसला लिया गया, जिसमें 6 वर्ष जेल में बिताने के बाद यशपाल 1938 में रिहा हो गए।

क्रांतिकारी यशपाल के बाद लेखक यशपाल का जन्म

यशपाल जेल से रिहा तो हुए परन्तु उनपर बैन लगा दिया गया की अब वो पंजाब नहीं जा सकते। यशपाल कांगड़ा भी नहीं आ पाए क्योंकि वह उस समय पंजाब का हिस्सा था। रिहा होते ही वह पत्नी के साथ लखनऊ चले गए। खराब स्वास्थ्य के कारण उन्होंने अब कलम के जरिये क्रांति की मशाल जलाए रखने का फैसला किया।

यशपाल मार्क्सवादी विचारों पर लिखने लगे। उन्होंने 1939 में पहली रचना लिखी "पिंजरे की उड़ान।" उसके बाद 1941 में अपनी पत्रिका "विप्लव" का प्रकाशन शुरू किया जिसे ब्रटिश राज ने अपने विरुद्ध मानते हुए 1941 में बंद करवा दिया। हालाँकि भारत के आजाद होने पर 1947 में यह मैगजीन फिर शुरू हुई।

यशपाल वो क्रांतिकारी थे जो जिन्हें आजाद भारत में भी जेल में जाना पड़ा। "विप्लव" अपने आक्रामक विचारों और कम्युनिस्ट विचारधारा से मिश्रित

रचनाओं को लिखने के कारण आजाद भारत की उत्तर प्रदेश सरकार ने यशपाल को 1949 में जेल में डाल दिया। ऐसा कहा गया कि रेलवे की हड़ताल जो कम्युनिस्टों द्वारा प्रायोजित थी, उसे भड़काने में यशपाल की रचनाओं का योगदान है। हालांकि 6 महीने बाद यशपाल रिहा हुए मगर "विप्लव" का प्रकाशन हमेशा के लिए बंद हो गया।

यशपाल फिर भी लिखते रहे। उन्होंने कथा-कहानियों, उपन्यास, व्यंग्य, संस्मरण आदि के जरिए समाज की हकीकत और मानव मन की परतों को सामने लाने की भरपूर कोशिश की। इनका उपन्यास 'झूठा-सच' बेहद चर्चित रहा है, जिसमें देश के विभाजन की त्रासदी की जीवंत तस्वीर खींची गई है। 1970 में भारत सरकार ने यशपाल को पद्म भूषण से भी सम्मानित किया।

1976 में "मेरी तेरी उसकी बात" के लिए यशपाल को साहित्य अकादमी पुरस्कार से भी नवाजा गया। "सिंहावलोकन" नाम की कृति से यशपाल ने अपनी जीवन को अभी तीन अध्यायों में ही पिरोया था और चौथा अध्याय पूरा नहीं कर पाए थे कि उनका निधन हो गया। यशपाल के लेखन पर कहा गया है वो प्रेमचंद का रूप थे परन्तु प्रेमचंद जहाँ गाँव पर लिखते थे, वहीँ यशपाल शहरी जीवन पर कहानियां गढ़ते थे।

मरणोपरांत यशपाल 2003 में भारत सरकार द्वारा उनके नाम से जारी एक डाक टिकट पर नजर आए थे। यशपाल तो आज नहीं हैं, परन्तु हिमाचल प्रदेश ने उन्हें कभी उस सत्कार से याद नहीं किया जिसके वो असल में हकदार थे। महान क्रांतिकारियों के साथी रहे यशपाल की जयंती पर क्या आज कहीं सरकारी स्तर पर आयोजन हुआ या होता है? इसकी तो मुझे खबर नहीं। हिमाचली उन्हें कितना जानते हैं, इसकी भी खबर नहीं। पर हां, उनके गांव के स्कूल भूम्पल में उनकी जयंती हर साल मनाई जाती है और आज भी मनाई गई।

बारूद से शुरू करके कलम की स्याही से क्रान्ति की गाथा लिखने वाले "यशपाल" को इस लेख के माध्यम से मैं नमन करता हूँ।

5

दयानन्द सरस्वती

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती (1824–1883) आधुनिक भारत के महान चिन्तक, समाज–सुधारक, अखंड ब्रह्मचारी तथा आर्य समाज के संस्थापक थे। उनके बचपन का नाम 'मूलशंकर' ईश्वर भक्त (आज्ञा पालक) थे, उन्होंने वेदों के प्रचार और आर्यावर्त को स्वतंत्रता दिलाने के लिए मुम्बई में आर्यसमाज की स्थापना की। वे एक संन्यासी तथा एक चिंतक थे। उन्होंने वेदों की सत्ता को सदा सर्वोपरि माना। 'वेदों की ओर लौटो' यह उनका प्रमुख नारा था। स्वामी दयानंद ने वेदों का भाष्य किया इसलिए उन्हें 'ऋषि' कहा जाता है क्योंकि 'ऋषयो मन्त्र दृष्टारः' (वेदमन्त्रों के अर्थ का दृष्टा ऋषि होता है)। उन्होंने कर्म सिद्धान्त, पुनर्जन्म, ब्रह्मचर्य तथा सन्यास को अपने दर्शन के चार स्तम्भ बनाया। उन्होंने ही सबसे पहले 1876 में 'स्वराज्य' का नारा दिया जिसे बाद में लोकमान्य तिलक ने आगे बढ़ाया।

स्वामी दयानन्द के विचारों से प्रभावित महापुरुषों की संख्या असंख्य है, इनमें प्रमुख नाम हैं—मादाम भिकाजी कामा, भगत सिंह पण्डित लेखराम आर्य, स्वामी श्रद्धानन्द, चौधरी छोटूराम, पण्डित गुरुदत्त विद्यार्थी, श्यामजी कृष्ण वर्मा, विनायक दामोदर सावरकर, लाला हरदयाल, मदनलाल ढींगरा, राम प्रसाद 'बिस्मिल', महादेव गोविंद रानडे, महात्मा हंसराज, लाला लाजपत राय इत्यादि। स्वामी दयानन्द के प्रमुख अनुयायियों में लाला हंसराज ने 1886 में लाहौर में

'दयानन्द एंग्लो वैदिक कॉलेज' की स्थापना की तथा स्वामी श्रद्धानन्द ने 1901 में हरिद्वार के निकट कांगड़ी में गुरुकुल की स्थापना की।

प्रारम्भिक जीवन

दयानन्द सरस्वती का जन्म 12 फरवरी टंकारा में सन् 1824 में मोरबी (मुम्बई की मोरवी रियासत) के पास काठियावाड़ क्षेत्र (जिला राजकोट), गुजरात में हुआ था। उनके पिता का नाम करशनजी लालजी तिवारी और माँ का नाम यशोदाबाई था। उनके पिता एक कर-कलेक्टर होने के साथ ब्राह्मण परिवार के एक अमीर, समृद्ध और प्रभावशाली व्यक्ति थे। दयानन्द सरस्वती का असली नाम मूलशंकर था और उनका प्रारम्भिक जीवन बहुत आराम से बीता। आगे चलकर एक पण्डित बनने के लिए वे संस्कृत, वेद, शास्त्रों व अन्य धार्मिक पुस्तकों के अध्ययन में लग गए।

उनके जीवन में ऐसी बहुत सी घटनाएं हुईं, जिन्होंने उन्हें हिन्दू धर्म की पारम्परिक मान्यताओं और ईश्वर के बारे में गंभीर प्रश्न पूछने के लिए विवश कर दिया। एक बार शिवरात्रि की घटना है। तब वे बालक ही थे। शिवरात्रि के उस दिन उनका पूरा परिवार रात्रि जागरण के लिए एक मन्दिर में ही रुका हुआ था। सारे परिवार के सो जाने के पश्चात् भी वे जागते रहे कि भगवान शिव आयेंगे और प्रसाद ग्रहण करेंगे। उन्होंने देखा कि शिवजी के लिए रखे भोग को चूहे खा रहे हैं। यह देख कर वे बहुत आश्चर्यचकित हुए और सोचने लगे कि जो ईश्वर स्वयं को चढ़ाये गये प्रसाद की रक्षा नहीं कर सकता वह मानवता की रक्षा क्या करेगा? इस बात पर उन्होंने अपने पिता से बहस की और तर्क दिया कि हमें ऐसे असहाय ईश्वर की उपासना नहीं करनी चाहिए।

अपनी छोटी बहन और चाचा की हैजे के कारण हुई मृत्यु से वे जीवन-मरण के अर्थ पर गहराई से सोचने लगे और ऐसे प्रश्न करने लगे जिससे उनके माता-पिता चिन्तित रहने लगे। तब उनके माता-पिता ने उनका विवाह किशोरावस्था के प्रारम्भ में ही करने का निर्णय किया (19वीं सदी के आर्यावर्त (भारत) में यह आम प्रथा थी)। लेकिन बालक मूलशंकर ने निश्चय किया कि विवाह उनके लिए नहीं बना है और वे 1846 में सत्य की खोज में निकल पड़े।

महर्षि दयानन्द के हृदय में आदर्शवाद की उच्च भावना, यथार्थवादी मार्ग अपनाने की सहज प्रवृत्ति, मातृभूमि की नियति को नई दिशा देने का अदम्य

उत्साह, धार्मिक-सामाजिक-आर्थिक व राजनैतिक दृष्टि से युगानुकूल चिन्तन करने की तीव्र इच्छा तथा आर्यावर्तीय (भारतीय) जनता में गौरवमय अतीत के प्रति निष्ठा जगाने की भावना थी। उन्होंने किसी के विरोध तथा निन्दा करने की परवाह किये बिना आर्यावर्त (भारत) के हिन्दू समाज का कायाकल्प करना अपना ध्येय बना लिया था।

ज्ञान की खोज

फाल्गुन कृष्ण संवत् 1895 में शिवरात्रि के दिन उनके जीवन में नया मोड़ आया। उन्हें नया बोध हुआ। वे घर से निकल पड़े और यात्रा करते हुए वह गुरु विरजानन्द के पास पहुँचे। गुरुवर ने उन्हें पाणिनी व्याकरण, पातंजल-योगसूत्र तथा वेद-वेदांग का अध्ययन कराया। गुरु दक्षिणा में उन्होंने मांगा–विद्या को सफल कर दिखाओ, परोपकार करो, सत्य शास्त्रों का उद्धार करो, मत मतांतरों की अविद्या को मिटाओ, वेद के प्रकाश से इस अज्ञान रूपी अंधकार को दूर करो, वैदिक धर्म का आलोक सर्वत्र विकीर्ण करो। यही तुम्हारी गुरुदक्षिणा है। उन्होंने आशीर्वाद दिया कि ईश्वर उनके पुरुषार्थ को सफल करे। उन्होंने अंतिम शिक्षा दी –मनुष्यकृत ग्रंथों में ईश्वर और ऋषियों की निंदा है, ऋषिकृत ग्रंथों में नहीं। वेद प्रमाण हैं। इस कसौटी को हाथ से न छोड़ना।

ज्ञान प्राप्ति के पश्चात

स्वामी दयानन्द सरस्वती।

महर्षि दयानन्द ने अनेक स्थानों की यात्रा की। उन्होंने हरिद्वार में कुंभ के अवसर पर 'पाखण्ड खण्डिनी पताका' फहराई। उन्होंने अनेक शास्त्रार्थ किए। वे कलकत्ता में बाबू केशवचन्द्र सेन तथा देवेन्द्र नाथ ठाकुर के संपर्क में आए। यहीं से उन्होंने पूरे वस्त्र पहनना तथा हिन्दी में बोलना व लिखना प्रारंभ किया। यहीं उन्होंने तत्कालीन वाइसराय को कहा था, मैं चाहता हूं विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है। परंतु भिन्न-भिन्न भाषा, पृथक-पृथक शिक्षा, अलग-अलग व्यवहार का छूटना अति दुष्कर है। बिना इसके छूटे परस्पर का व्यवहार पूरा उपकार और अभिप्राय सिद्ध होना कठिन है।

आर्य समाज की स्थापना

ओ३म को आर्य समाज में ईश्वर का सर्वोत्तम और उपयुक्त नाम माना जाता है

महर्षि दयानन्द ने चौत्र शुक्ल प्रतिपदा संवत् 1932 (सन् 1875) को गिरगांव मुम्बई में आर्यसमाज की स्थापना की। आर्यसमाज के नियम और सिद्धांत प्राणिमात्र के कल्याण के लिए है। संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

वैचारिक आन्दोलन, शास्त्रार्थ एवं व्याख्यान

वेदों को छोड़ कर कोई अन्य धर्मग्रन्थ प्रमाण नहीं है –इस सत्य का प्रचार करने के लिए स्वामी जी ने सारे देश का दौरा करना प्रारम्भ किया और जहां-जहां वे गये प्राचीन परम्परा के पण्डित और विद्वान उनसे हार मानते गये। संस्कृत भाषा का उन्हें अगाध ज्ञान था। संस्कृत में वे धाराप्रवाह बोलते थे। साथ ही वे प्रचण्ड तार्किक थे।

उन्होंने ईसाई और मुस्लिम धर्मग्रन्थों का भली-भांति अध्ययन-मन्थन किया था। अतएवं अपने चेलों के संग मिल कर उन्होंने तीन-तीन मोर्चों पर संघर्ष आरंभ कर दिया। दो मोर्चे तो ईसाइयत और इस्लाम के थे किन्तु तीसरा मोर्चा सनातनधर्मी हिन्दुओं का था। दयानन्द ने बुद्धिवाद की जो मशाल जलायी थी, उसका कोई जवाब नहीं था।। मगर सत्य यह था कि पौराणिक ग्रंथ भी वेद आदि शास्त्र में आते हैं।

स्वामी प्रचलित धर्मों में व्याप्त बुराइयों का कड़ा खण्डन करते थे। सर्वप्रथम उन्होंने उसी हिंदू धर्म में फैली बुराइयों व पाखण्डों का खण्डन किया, जिस हिंदू धर्म में उनका जन्म हुआ हुआ था, तत्पश्चात अन्य मत-पंथ व सम्प्रदायों में फैली बुराइयों का विरोध किया। इससे स्पष्ट होता है वे न तो किसी के पक्षधर थे न ही किसी के विरोधी थे। वे केवल सत्य के पक्षधर थे, समाज सुधारक थे व सत्य को बताने वाले थे। स्वामी जी सभी धर्मों में फैली बुराइयों का विरोध किया चाहे वह सनातन धर्म हो या इस्लाम हो या ईसाई धर्म हो। अपने महाग्रंथ सत्यार्थ प्रकाश में स्वामीजी ने सभी मतों में व्याप्त बुराइयों का खण्डन किया है वह भी अपनी बुद्धि के हिसाब से है। उनके समकालीन सुधारकों से अलग, स्वामीजी का मत शिक्षित वर्ग तक ही सीमित नहीं था अपितु आर्य समाज ने आर्यावर्त (भारत) के साधारण जनमानस को भी अपनी ओर आकर्षित किया।

सन् 1872 ई. में स्वामी जी कलकत्ता पधारे। वहां देवेन्द्रनाथ ठाकुर और केशवचन्द्र सेन ने उनका बड़ा सत्कार किया। ब्राह्मो समाजियों से उनका विचार-विमर्श भी हुआ किन्तु ईसाइयत से प्रभावित ब्राह्मो समाजी विद्वान पुनर्जन्म

और वेद की प्रामाणिकता के विषय में स्वामी से एकमत नहीं हो सके। कहते हैं कलकत्ते में ही केशवचन्द्र सेन ने स्वामी जी को यह सलाह दे डाली कि यदि आप संस्कृत छोड़ कर आर्यभाषा (हिन्दी) में बोलना आरम्भ कर दें तो देश का असीम उपकार हो सकता है। ऋषि दयानन्द को स्पष्ट रूप से हिंदी नहीं आती थी। वे संस्कृत में पढ़ते-लिखते व बोलते थे और जन्मभूमि की भाषा गुजराती थी इसलिए उन्हें हिंदी अथार्त आर्यभाषा का विशेष परिज्ञान न था (देखें, सत्यार्थ प्रकाश द्वितीय संस्करण की भूमिका)। तभी से स्वामी जी के व्याख्यानों की भाषा आर्यभाषा (हिन्दी) हो गयी और आर्यभाषी (हिन्दी) प्रान्तों में उन्हें अगणित अनुयायी मिलने लगे। कलकत्ते से स्वामी जी मुम्बई पधारे और वहीं 10 अप्रैल 1875 ई. को उन्होंने 'आर्य समाज' की स्थापना की। मुम्बई में उनके साथ प्रार्थना समाज वालों ने भी विचार-विमर्श किया। किन्तु यह समाज तो ब्राह्मो समाज का ही मुम्बई संस्करण था। अतएवं स्वामी जी से इस समाज के लोग भी एकमत नहीं हो सके।

मुम्बई से लौट कर स्वामी जी इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) आए। वहां उन्होंने सत्यानुसन्धान के लिए ईसाई, मुसलमान और हिन्दू पण्डितों की एक सभा बुलायी। किन्तु दो दिनों के विचार-विमर्श के बाद भी लोग किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सके। इन्द्रप्रस्थ से स्वामी जी पंजाब गए। पंजाब में उनके प्रति बहुत उत्साह जाग्रत हुआ और सारे प्रान्त में आर्यसमाज की शाखाएं खुलने लगीं। तभी से पंजाब आर्यसमाजियों का प्रधान गढ़ रहा है।

समाज सुधार के कार्य

महर्षि दयानन्द ने तत्कालीन समाज में व्याप्त सामाजिक कुरीतियों तथा अन्धविश्वासों और रूढियों-बुराइयों व पाखण्डों का खण्डन व विरोध किया, जिससे वे 'संन्यासी योद्धा' कहलाए। उन्होंने जन्मना जाति का विरोध किया तथा कर्म के आधार पर वेदानुकूल वर्ण-निर्धारण की बात कही। वे दलितोद्धार के पक्षधर थे। उन्होंने स्त्रियों की शिक्षा के लिए प्रबल आन्दोलन चलाया। उन्होंने बाल विवाह तथा सती प्रथा का निषेध किया तथा विधवा विवाह का समर्थन किया। उन्होंने ईश्वर को सृष्टि का निमित्त कारण तथा प्रकृति को अनादि तथा शाश्वत माना। वे तैत्रवाद के समर्थक थे। उनके दार्शनिक विचार वेदानुकूल थे। उन्होंने यह भी माना कि जीव कर्म करने में स्वतन्त्र हैं तथा फल भोगने में परतन्त्र हैं। महर्षि दयानन्द सभी धर्मानुयायियों को एक मंच पर लाकर एकता स्थापित

करने के लिए प्रयत्नशील थे। उन्होंने दिल्ली दरबार के समय 1878 में ऐसा प्रयास किया था। उनके अमर ग्रंथ सत्यार्थ प्रकाश, संस्कार विधि और ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका में उनके मौलिक विचार सुस्पष्ट रूप में प्राप्य हैं। वे योगी थे तथा प्राणायाम पर उनका विशेष बल था। वे सामाजिक पुनर्गठन में सभी वर्णों तथा स्त्रियों की भागीदारी के पक्षधर थे। राष्ट्रीय जागरण की दिशा में उन्होंने सामाजिक क्रान्ति तथा आध्यात्मिक पुनरुत्थान के मार्ग को अपनाया। उनकी शिक्षा सम्बन्धी धारणाओं में प्रदर्शित दूरदर्शिता, देशभक्ति तथा व्यावहारिकता पूर्णतया प्रासंगिक तथा युगानुकूल है। महर्षि दयानन्द समाज सुधारक तथा धार्मिक पुनर्जागरण के प्रवर्तक तो थे ही, वे प्रचण्ड राष्ट्रवादी तथा राजनैतिक आदर्शवादी भी थे। विदेशियों का आर्यावर्त में राज्य होने का सबसे बड़ा कारण आलस्य, प्रमाद, आपस का वैमनस्य (आपस की फूट), मतभेद, ब्रह्मचर्य का सेवन न करना, विधान पढ़ना-पढ़ाना व बाल्यावस्था में अस्वयंवरविवाह, विषयासक्ति, मिथ्या भाषावाद, कुलक्षण, वेद-विद्या का मिथ्या अर्थ करना आदि कुकर्म हैं। जब आपस में भाई-भाई लड़ते हैं तभी तीसरा विदेशी आकर पंच बन बैठता है। उन्होंने राज्याध्यक्ष तथा शासन की विभिन्न परिषदों एवं समितियों के लिए आवश्यक योग्यताओं को भी गिनाया है। उन्होंने न्याय की व्यवस्था ऋषि प्रणीत ग्रन्थों के आधार पर किए जाने का पक्ष लिया।

स्वराज्य के प्रथम सन्देशवाहक

स्वामी दयानन्द सरस्वती को सामान्यतः केवल आर्य समाज के संस्थापक तथा समाज-सुधारक के रूप में ही जाना जाता है। राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के लिए किये गए प्रयत्नों में उनकी उल्लेखनीय भूमिका की जानकारी बहुत कम लोगों को है। वस्तुस्थिति यह है कि पराधीन आर्यावर्त (भारत) में यह कहने का साहस सम्भवतः सर्वप्रथम स्वामी दयानन्द सरस्वती ने ही किया था कि 'आर्यावर्त (भारत), आर्यावर्तियों (भारतीयों) का है'। हमारे प्रथम स्वतन्त्रता समर, सन् 1857 की क्रान्ति की सम्पूर्ण योजना भी स्वामी जी के नेतृत्व में ही तैयार की गई थी और वही उसके प्रमुख सूत्रधार भी थे। वे अपने प्रवचनों में श्रोताओं को प्रायः राष्ट्रवाद का उपदेश देते और देश के लिए मर मिटने की भावना भरते थे। 1855 में हरिद्वार में जब कुम्भ मेला लगा था तो उसमें शामिल होने के लिए स्वामी जी ने आबू पर्वत से हरिद्वार तक पैदल यात्रा की थी। रास्ते में उन्होंने स्थान-स्थान पर प्रवचन किए तथा देशवासियों की नब्ज टटोली। उन्होंने यह

अनुभव किया कि लोग अब अंग्रेजों के अत्याचारी शासन से तंग आ चुके हैं और देश की स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष करने को आतुर हो उठे हैं।

क्रान्ति की विमर्श

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने हरिद्वार पहुँच कर वहां एक पहाड़ी के एकान्त स्थान पर अपना डेरा जमाया। वहीं पर उन्होंने पाँच ऐसे व्यक्तियों से मुलाकात की, जो आगे चलकर सन् 1857 की क्रान्ति के कर्णधार बने। ये पांच व्यक्ति थे नाना साहेब, अजीमुल्ला खां, बाला साहब, तात्या टोपे तथा बाबू कुंवर सिंह। बातचीत काफी लम्बी चली और यहीं पर यह तय किया गया कि फिरंगी सरकार के विरुद्ध सम्पूर्ण देश में सशस्त्र क्रान्ति के लिए आधारभूमि तैयार की जाए और उसके बाद एक निश्चित दिन सम्पूर्ण देश में एक साथ क्रान्ति का बिगुल बजा दिया जाए। जनसाधारण तथा आर्यावर्तीय (भारतीय) सैनिकों में इस क्रान्ति की आवाज को पहुँचाने के लिए 'रोटी तथा कमल' की भी योजना यहीं तैयार की गई। इस सम्पूर्ण विचार विमर्श में प्रमुख भूमिका स्वामी दयानन्द सरस्वती की ही थी।

विचार विमर्श तथा योजना-निर्धारण के उपरान्त स्वामी जी तो हरिद्वार में ही रुक गए तथा अन्य पांचों राष्ट्रीय नेता योजना को यथार्थ रूप देने के लिए अपने-अपने स्थानों पर चले गए। उनके जाने के बाद स्वामी जी ने अपने कुछ विश्वस्त साधु संन्यासियों से सम्पर्क स्थापित किया और उनका एक गुप्त संगठन बनाया। इस संगठन का मुख्यालय इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) में महरौली स्थित योगमाया मन्दिर में बनाया गया। इस मुख्यालय ने स्वाधीनता समर में उल्लेखनीय भूमिका निभायी। स्वामी जी के नेतृत्व में साधुओं ने भी सम्पूर्ण देश में क्रान्ति का अलख जगाया। वे क्रान्तिकारियों के सन्देश एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचाते, उन्हें प्रोत्साहित करते और आवश्यकता पड़ने पर स्वयं भी हथियार उठाकर अंग्रेजों से संघर्ष करते। सन् 1857 की क्रान्ति की सम्पूर्ण अवधि में राष्ट्रीय नेता, स्वामी दयानन्द सरस्वती के निरन्तर सम्पर्क में रहे।

स्वतन्त्रता-संघर्ष की असफलता पर भी स्वामी जी निराश नहीं थे। उन्हें तो इस बात का पहले से ही आभास था कि केवल एक बार प्रयत्न करने से ही स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं हो सकती। इसके लिए तो संघर्ष की लम्बी प्रक्रिया चलानी होगी। हरिद्वार में ही 1855 की बैठक में बाबू कुंवर सिंह ने जब अपने इस संघर्ष में सफलता की संभावना के बारे में स्वामी जी से पूछा तो उनका

बेबाक उत्तर था 'स्वतन्त्रता संघर्ष कभी असफल नहीं होता। भारत धीरे-धीरे एक सौ वर्ष में परतन्त्र बना है। अब इसको स्वतन्त्र होने में भी एक सौ वर्ष लग जाएंगे। इस स्वतन्त्रता प्राप्ति में बहुत से अनमोल प्राणों की आहुतियां डाली जाएंगी।' स्वामी जी की यह भविष्यवाणी कितनी सही निकली, इसे बाद की घटनाओं ने प्रमाणित कर दिया। स्वतन्त्रता-संघर्ष की असफलता के बाद जब तात्या टोपे, नाना साहब तथा अन्य राष्ट्रीय नेता स्वामी जी से मिले तो उन्हें भी उन्होंने निराश न होने तथा उचित समय की प्रतीक्षा करने की ही सलाह दी।

1857 की क्रान्ति के दो वर्ष बाद स्वामी जी ने स्वामी विरजानन्द को अपना गुरु बनाया और उनसे दीक्षा ली। स्वामी विरजानन्द के आश्रम में रहकर उन्होंने वेदों का अध्ययन किया, उन पर चिन्तन किया और उसके बाद अपने गुरु के निर्देशानुसार वे वैदिक ज्ञान के प्रचार-प्रसार में जुट गए। इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उन्होंने आर्य समाज की भी स्थापना की और उसके माध्यम से समाज-सुधार के अनेक कार्य किए। छुआछूत, सती प्रथा, बाल विवाह, नर बलि, धार्मिक संकीर्णता तथा अन्धविश्वासों के विरुद्ध उन्होंने जमकर प्रचार किया और विधवा विवाह, धार्मिक उदारता तथा आपसी भाईचारे का उन्होंने समर्थन किया। इन सबके साथ स्वामी जी लोगों में देशभक्ति की भावना भरने से भी कभी नहीं चूकते थे।

प्रारम्भ में अनेक व्यक्तियों ने स्वामी जी के समाज सुधार के कार्यों में विभिन्न प्रकार के विघ्न डाले और उनका विरोध किया। धीरे-धीरे उनके तर्क लोगों की समझ में आने लगे और विरोध कम हुआ। उनकी लोकप्रियता निरन्तर बढ़ने लगी। इससे अंग्रेज अधिकारियों के मन में यह इच्छा उठी कि अगर इन्हें अंग्रेजी सरकार के पक्ष में कर लिया जाए तो सहज ही उनके माध्यम से जनसाधारण में अंग्रेजों को लोकप्रिय बनाया जा सकता है। इससे पूर्व अंग्रेज अधिकारी इसी प्रकार से अन्य कुछ धर्मोपदेशकों तथा धर्माधिकारियों को विभिन्न प्रकार के प्रलोभन देकर अपनी तरफ मिला चुके थे। उन्होंने स्वामी दयानन्द सरस्वती को भी उन्हीं के समान समझा। तद्नुसार एक ईसाई पादरी के माध्यम से स्वामी जी की तत्कालीन गवर्नर जनरल लॉर्ड नार्थब्रुक से मुलाकात करवायी गई। यह मुलाकात मार्च 1873 में कलकत्ता में हुई।

अंग्रेजों को तीखा जवाब

इधर-उधर की कुछ औपचारिक बातों के उपरान्त लॉर्ड नार्थब्रुक ने विनम्रता से अपनी बात स्वामी जी के सामने रखी-'अपने व्याख्यान के प्रारम्भ

में आप जो ईश्वर की प्रार्थना करते हैं, क्या उसमें आप अंग्रेजी सरकार के कल्याण की भी प्रार्थना कर सकेंगे।'

गर्वनर जनरल की बात सुनकर स्वामी जी सहज ही सब कुछ समझ गए। उन्हें अंग्रेजी सरकार की बुद्धि पर तरस भी आया, जो उन्हें ठीक तरह नहीं समझ सकी। उन्होंने निर्भीकता और दृढ़ता से गवर्नर जनरल को उत्तर दिया–

मैं ऐसी किसी भी बात को स्वीकार नहीं कर सकता। मेरी यह स्पष्ट मान्यता है कि राजनीतिक स्तर पर मेरे देशवासियों की निर्बाध प्रगति के लिए तथा संसार की सभ्य जातियों के समुदाय में आर्यावर्त (भारत) को सम्माननीय स्थान प्रदान करने के लिए यह अनिवार्य है कि मेरे देशवासियों को पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त हो। सर्वशक्तिशाली परमात्मा के समक्ष प्रतिदिन मैं यही प्रार्थना करता हूं कि मेरे देशवासी विदेशी सत्ता के जुए से शीघ्रातिशीघ्र मुक्त हों।

गवर्नर जनरल को स्वामी जी से इस प्रकार के तीखे उत्तर की आशा नहीं थी। मुलाकात तत्काल समाप्त कर दी गई और स्वामी जी वहां से लौट आए। इसके उपरान्त सरकार के गुप्तचर विभाग की स्वामी जी पर तथा उनकी संस्था आर्य–समाज पर गहरी दृष्टि रही। उनकी प्रत्येक गतिविधि और उनके द्वारा बोले गए प्रत्येक शब्द का रिकार्ड रखा जाने लगा। आम जनता पर उनके प्रभाव से सरकार को अहसास होने लगा कि यह बागी फकीर और आर्यसमाज किसी भी दिन सरकार के लिए खतरा बन सकते हैं। इसलिए स्वामी जी को समाप्त करने के लिए भी तरह–तरह के षड्यन्त्र रचे जाने लगे।

हत्या का षड्यन्त्र

स्वामी जी की मृत्यु जिन परिस्थितियों में हुई, उससे भी यही आभास मिलता है कि उसमें निश्चित ही अग्रेजी सरकार का कोई षड्यन्त्र था। स्वामी जी की मृत्यु 30 अक्टूबर 1883 को दीपावली के दिन सन्ध्या के समय हुई थी। उन दिनों वे जोधपुर नरेश महाराज जसवन्त सिंह के निमन्त्रण पर जोधपुर गये हुए थे। वहां उनके नित्य ही प्रवचन होते थे। यदाकदा महाराज जसवन्त सिंह भी उनके चरणों में बैठकर वहां उनके प्रवचन सुनते। दो–चार बार स्वामी जी भी राज्य महलों में गए। वहां पर उन्होंने नन्हीं नामक वेश्या का अनावश्यक हस्तक्षेप और महाराज जसवन्त सिंह पर उसका अत्यधिक प्रभाव देखा। स्वामी जी को यह बहुत बुरा लगा। उन्होंने महाराज को इस बारे में समझाया तो उन्होंने विनम्रता से

उनकी बात स्वीकार कर ली और नन्हीं से सम्बन्ध तोड़ लिए। इससे नन्हीं स्वामी जी के बहुत अधिक विरुद्ध हो गई। उसने स्वामी जी के रसोइए कलिया उर्फ जगन्नाथ को अपनी तरफ मिला कर उनके दूध में पिसा हुआ कांच डलवा दिया। थोड़ी ही देर बाद स्वामी जी के पास आकर अपना अपराध स्वीकार कर लिया और उसके लिए क्षमा मांगी। उदार-हृदय स्वामी जी ने उसे राह-खर्च और जीवन-यापन के लिए पांच सौ रुपए देकर वहां से विदा कर दिया ताकि पुलिस उसे परेशान न करे। बाद में जब स्वामी जी को जोधपुर के अस्पताल में भर्ती करवाया गया तो वहां सम्बन्धित चिकित्सक भी शक के दायरे में रहा। उस पर आरोप था कि वह औषधि के नाम पर स्वामी जी को हल्का विष पिलाता रहा। बाद में जब स्वामी जी की तबियत बहुत खराब होने लगी तो उन्हें अजमेर के अस्पताल में लाया गया। मगर तब तक काफी विलम्ब हो चुका था। स्वामी जी को बचाया नहीं जा सका।

इस सम्पूर्ण घटनाक्रम में आशंका यही है कि वेश्या को उकसाने तथा चिकित्सक को बरगलाने का कार्य अंग्रेजी सरकार के इशारे पर किसी अंग्रेज अधिकारी ने ही किया। अन्यथा एक साधारण वेश्या के लिए यह सम्भव नहीं था कि केवल अपने बलबूते पर स्वामी दयानन्द सरस्वती जैसे सुप्रसिद्ध और लोकप्रिय व्यक्ति के विरुद्ध ऐसा षड्यन्त्र कर सके। बिना किसी प्रोत्साहन और संरक्षण के चिकित्सक भी ऐसा दुस्साहस नहीं कर सकता था।

अंतिम शब्द

स्वधर्म, स्वभाषा, स्वराष्ट्र, स्वसंस्कृति और स्वदेशोन्नति के अग्रदूत स्वामी दयानन्द जी का शरीर सन् 1883 में दीपावली के दिन पंचतत्त्व में विलीन हो गया और वे अपने पीछे छोड़ गए एक सिद्धान्त, कृण्वन्तो विश्वमार्यम् –अर्थात सारे संसार को श्रेष्ठ मानव बनाओ। उनके अन्तिम शब्द थे –'प्रभु! तूने अच्छी लीला की। आपकी इच्छा पूर्ण हो।'

जीवनचरित का लेखन

महर्षि के साहित्य के साथ-साथ उनका जीवन चरित भी अत्यन्त प्रेरणास्पद है। महर्षि पर अनेकों व्यक्तियों ने जीवन चरित्र लिखा, जिनमें पण्डित लेखराम, सत्यानन्द आदि प्रमुख हैं, किन्तु बंगाली सज्जन बाबू श्री देवेन्द्रनाथ

मुखोपाध्याय के द्वारा लिखे गए ऋषि दयानन्द का जीवनचरित की यह विशेषता है कि देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय जी स्वयं आर्यसमाजी नहीं थे फिर भी अत्यन्त श्रद्धावान होकर उन्होनें 15-16 वर्ष लगातार और सहस्रों रुपया व्यय करके ऋषि जीवन की सामग्री को एकत्र करके उन्होंने महर्षि की प्रामाणिक और क्रमबद्ध जीवनी को लिखा। इस जीवनी के लेखन का कार्य दैवयोग से पूर्ण नहीं हो पाया तथा देवेन्द्रनाथ जी की असामायिक मृत्यु हो गई। तत्पश्चात् पं. लेखराम और सत्यानन्द द्वारा संग्रहित सामग्री की सहायता से पं. घासीराम ने इसे पूर्ण किया। यह महर्षि की अत्यन्त प्रमाणिक जीवनी है।

पण्डित लेखराम का अनुसंधान विशेषकर पंजाब, यू.पी. और राजस्थान तक ही सीमित रहा। मुम्बई और बंगाल प्रान्त में न उन्होंने अधिक भ्रमण किया और न अधिक अनुसन्धान किया, अतः इन दोनों प्रान्तों की घटनाओं का उनके ग्रन्थ में उतना विशद वर्णन नहीं है जितना पंजाब और यूपी तथा राजस्थान की घटनाओं का है। देवेन्द्रनाथ जी के ग्रन्थ में मुम्बई और बंगाल का भी विस्तृत वर्णन है।

स्वामी दयानन्द के योगदान के बारे में महापुरुषों के विचार

डॉ. भगवान दास ने कहा था कि स्वामी दयानन्द हिन्दू पुनर्जागरण के मुख्य निर्माता थे।

श्रीमती एनी बेसेन्ट का कहना था कि स्वामी दयानन्द पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने 'आर्यावर्त (भारत) आर्यावर्तियों (भारतीयों) के लिए' की घोषणा की।

सरदार पटेल के अनुसार भारत की स्वतन्त्रता की नींव वास्तव में स्वामी दयानन्द ने डाली थी।

पट्टाभि सीतारमैया का विचार था कि गाँधी जी राष्ट्रपिता हैं, पर स्वामी दयानन्द राष्ट्र-पितामह हैं।

फ्रेंच लेखक रोमां रोलां के अनुसार स्वामी दयानन्द राष्ट्रीय भावना और जन-जागृति को क्रियात्मक रूप देने में प्रयत्नशील थे।

अन्य फ्रेंच लेखक रिचर्ड का कहना था कि ऋषि दयानन्द का प्रादुर्भाव लोगों को कारागार से मुक्त कराने और जाति बन्धन तोड़ने के लिए हुआ था। उनका आदर्श है—आर्यावर्त ! उठ, जाग, आगे बढ़। समय आ गया है, नये युग में प्रवेश कर।

स्वामी जी को लोकमान्य तिलक ने 'स्वराज्य और स्वदेशी का सर्वप्रथम मन्त्र प्रदान करने वाले जाज्व्ल्यमान नक्षत्र थे दयानन्द'

नेताजी सुभाष चन्द्र बोस ने 'आधुनिक भारत का आद्यनिर्माता' माना।

अमरीका की मदाम ब्लेवेट्स्की ने 'आदि शंकराचार्य के बाद 'बुराई पर सबसे निर्भीक प्रहारक' माना।

सैयद अहमद खां के शब्दों में 'स्वामी जी ऐसे विद्वान और श्रेष्ठ व्यक्ति थे, जिनका अन्य मतावलम्बी भी सम्मान करते थे।'

वीर सावरकर ने कहा महर्षि दयानन्द संग्राम के सर्वप्रथम योद्धा थे ।

लाला लाजपत राय ने कहा –स्वामी दयानन्द ने हमें स्वतंत्र विचारना, बोलना और कर्त्तव्यपालन करना सिखाया।

लेखन व साहित्य

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने कई धार्मिक व सामाजिक पुस्तकें अपने जीवन काल में लिखीं। प्रारम्भिक पुस्तकें संस्कृत में थीं, किन्तु समय के साथ उन्होंने कई पुस्तकों को आर्यभाषा (हिन्दी) में भी लिखा, क्योंकि आर्यभाषा की पहुँच संस्कृत से अधिक थी। हिन्दी को उन्होंने 'आर्यभाषा' का नाम दिया था। उत्तम लेखन के लिए आर्यभाषा का प्रयोग करने वाले स्वामी दयानन्द अग्रणी व प्रारम्भिक व्यक्ति थे। यदि ऋषि दयानन्द सरस्वती के ग्रंथों व विचारों (यद्यपि ये विचार ऋषि के स्वयं द्वारा निर्मित थे अपितु वेद द्वारा प्रदत्त थे) पर चला जाये तो राष्ट्र पुनः विश्वगुरु गौरवशाली, वैभवशाली, शक्तिशाली, सम्पन्नशाली, सदाचारी और महान बन जाये।

स्वामी दयानन्द सरस्वती की मुख्य कृतियाँ निम्नलिखित हैं–

सत्यार्थप्रकाश,

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका,

ऋग्वेद भाष्य,

यजुर्वेद भाष्य,

चतुर्वेदविषयसूची,

संस्कारविधि,

पंचमहायज्ञविधि,

आर्याभिविनय,

गोकरुणानिधि,

आर्योद्देश्यरत्नमाला,

भ्रान्तिनिवारण,

अष्टाध्यायीभाष्य,
वेदांगप्रकाश,
संस्कृतवाक्यप्रबोध,
व्यवहारभानु।
आर्योद्देश्यरत्नमाला,

1873 में आर्योद्देश्यरत्नमाला नामक पुस्तक प्रकाशित हुई जिसमें स्वामी जी ने एक सौ शब्दों की परिभाषा वर्णित की है। इनमें से कई शब्द आम बोलचाल में आते हैं पर उनके अर्थ रूढ़ हो गए हैं, उदाहरण के लिए ईश्वर धर्म–कर्म आदि। इनको परिभाषित करके इनकी व्याख्या इस पुस्तक में है। इस लघु पुस्तिका में 8 पृष्ठ हैं।

गोकरुणानिधि

1881 में स्वामी दयानन्द ने गोकरुणानिधि नामक पुस्तक प्रकाशित की जो कि गोरक्षा आन्दोलन को स्थापित करने में प्रमुख भूमिका निभाने का श्रेय भी लेती है। इस पुस्तक में उन्होंने सभी समुदाय के लोगों को अपने प्रतिनिधि सहित गोकृष्यादि रक्षा समिति की सदस्यता लेने को कहा है जिसका उद्देश्य पशु व कृषि की रक्षा है। आधुनिक पर्यावरणवादियों के समान यहाँ विचार व्यक्ति किए गए हैं। इस पुस्तक में समीक्षा, नियम व उपनियम हैं, तथा प्रमुखतः पशुओं को न मार कर उनका पालन करने में होने वाले लाभ वर्णित किए गए हैं।

व्यवहारभानु

वैदिक यन्त्रालय, बनारस द्वारा 1880 में व्यवहारभानु पुस्तक प्रकाशित की गई थी। इसमें धर्मोक्त और उचित व्यवहार के बारे में वर्णन है।

ठ

27 फरवरी 1883 को उदयपुर में स्वामी दयानन्द सरस्वती ने एक स्वीकारपत्र प्रकाशित किया था जिसमें उन्होंने अपनी मृत्योपरान्त 23 व्यक्तियों को परोपकारिणी सभा की जिम्मेदारी सौंपी थी जो कि उनके बाद उनका काम आगे बढ़ा सकें। इनमें महादेव गोविन्द रानाडे का भी नाम है । इस स्वीकारपत्र

पर 13 गणमान्य व्यक्तियों के साक्षी के रूप में हस्ताक्षर हैं। इसके प्रकाशन के कुछ छह माह पश्चात ही उनका देहान्त हो गया था।

संस्कृतवाक्यप्रबोध:

यह संस्कृत सिखाने वाली लघु वार्तालाप पुस्तिका है। विभिन्न विषयों पर लघु वाक्य संस्कृत में दिये गये हैं। उनके अर्थ भी हिन्दी में दिए हैं।

6

भारतेन्दु हरिश्चंद्र

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र आधुनिक हिंदी साहित्य के पितामह कहे जाते हैं। वे हिन्दी में आधुनिकता के पहले रचनाकार थे। इनका मूल नाम 'हरिश्चन्द्र' था, 'भारतेन्दु' उनकी उपाधि थी। उनका कार्यकाल युग की सन्धि पर खड़ा है। उन्होंने रीतिकाल की विकृत सामन्ती संस्कृति की पोषक वृत्तियों को छोड़कर स्वस्थ परम्परा की भूमि अपनाई और नवीनता के बीज बोए। हिन्दी साहित्य में आधुनिक काल का प्रारम्भ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से माना जाता है। भारतीय नवजागरण के अग्रदूत के रूप में प्रसिद्ध भारतेन्दु जी ने देश की गरीबी, पराधीनता, शासकों के अमानवीय शोषण का चित्रण को ही अपने साहित्य का लक्ष्य बनाया। हिन्दी को राष्ट्र-भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने की दिशा में उन्होंने अपनी प्रतिभा का उपयोग किया।

भारतेन्दु बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। हिंदी पत्रकारिता, नाटक और काव्य के क्षेत्र में उनका बहुमूल्य योगदान रहा। हिंदी में नाटकों का प्रारम्भ भारतेन्दु हरिश्चंद्र से माना जाता है। भारतेन्दु के नाटक लिखने की शुरुआत बांग्ला के विद्यासुन्दर (1867) नाटक के अनुवाद से होती है। यद्यपि नाटक उनके पहले भी लिखे जाते रहे किन्तु नियमित रूप से खड़ीबोली में अनेक नाटक लिखकर भारतेन्दु ने ही हिंदी नाटक की नींव को सुदृढ़ बनाया। उन्होंने 'हरिश्चंद्र चन्द्रिका', 'कविवचनसुधा' और 'बाला बोधिनी' पत्रिकाओं का संपादन भी किया। वे एक उत्कृष्ट कवि, सशक्त व्यंग्यकार, सफल नाटककार, जागरूक

पत्रकार तथा ओजस्वी गद्यकार थे। इसके अलावा वे लेखक, कवि, संपादक, निबंधकार, एवं कुशल वक्ता भी थे। भारतेन्दु जी ने मात्र चौंतीस वर्ष की अल्पायु में ही विशाल साहित्य की रचना की। उन्होंने मात्रा और गुणवत्ता की दृष्टि से इतना लिखा और इतनी दिशाओं में काम किया कि उनका समूचा रचनाकर्म पथदर्शक बन गया।

अनुक्रम

जीवन परिचय

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जन्म 9 सितम्बर, 1850 को काशी के एक प्रतिष्ठित वैश्य परिवार में हुआ। उनके पिता गोपालचंद्र एक अच्छे कवि थे और 'गिरधरदास' उपनाम से कविता लिखा करते थे। 1857 में प्रथम भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के समय उनकी आयु 7 वर्ष की होगी। ये दिन उनकी आँख खुलने के थे। भारतेन्दु का कृतित्त्व साक्ष्य है कि उनकी आँखें एक बार खुलीं तो बन्द नहीं हुईं। उनके पूर्वज अंग्रेज-भक्त थे, उनकी ही कृपा से धनवान हुये थे। हरिश्चंद्र पाँच वर्ष के थे तो माता की मृत्यु और दस वर्ष के थे तो पिता की मृत्यु हो गयी। इस प्रकार बचपन में ही माता-पिता के सुख से वंचित हो गये। विमाता ने खूब सताया। बचपन का सुख नहीं मिला। शिक्षा की व्यवस्था प्रथापालन के लिए होती रही। संवेदनशील व्यक्ति के नाते उनमें स्वतन्त्र रूप से देखने-सोचने-समझने की आदत का विकास होने लगा। पढ़ाई की विषय-वस्तु और पद्धति से उनका मन उखड़ता रहा। क्वींस कॉलेज, बनारस में प्रवेश लिया, तीन-चार वर्षों तक कॉलेज आते-जाते रहे पर यहाँ से मन बार-बार भागता रहा। स्मरण शक्ति तीव्र थी, ग्रहण क्षमता अद्भुत। इसलिए परीक्षाओं में उत्तीर्ण होते रहे। बनारस में उन दिनों अंग्रेजी पढ़े-लिखे और प्रसिद्ध लेखक –राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द' थे, भारतेन्दु शिष्य भाव से उनके यहाँ जाते। उन्हीं से अंग्रेजी सीखी। भारतेन्दु ने स्वाध्याय से संस्कृत, मराठी, बंगला, गुजराती, पंजाबी, उर्दू भाषाएँ सीख लीं।

उनको काव्य-प्रतिभा अपने पिता से विरासत के रूप में मिली थी। उन्होंने पांच वर्ष की अवस्था में ही निम्नलिखित दोहा बनाकर अपने पिता को सुनाया और सुकवि होने का आशीर्वाद प्राप्त किया-

लै ब्योढ़ा ठाढ़े भए श्री अनिरुद्ध सुजान।
बाणासुर की सेन को हनन लगे भगवान।।

धन के अत्यधिक व्यय से भारतेंदु जी ऋणी बन गए और दुश्चिंताओं के कारण उनका शरीर शिथिल होता गया। परिणाम स्वरूप 1885 में अल्पायु में ही मृत्यु ने उन्हें ग्रस लिया।

साहित्यिक परिचय

भारतेन्दु के वृहत साहित्यिक योगदान के कारण ही 1857 से 1900 तक के काल को भारतेन्दु युग के नाम से जाना जाता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार–

भारतेन्दु अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा के बल से एक ओर तो पद्माकर, द्विजदेव की परम्परा में दिखाई पड़ते थे, तो दूसरी ओर बंग देश के माइकेल और हेमचन्द्र की श्रेणी में। प्राचीन और नवीन का सुन्दर सामंजस्य भारतेन्दु की कला का विशेष माधुर्य है।

पंद्रह वर्ष की अवस्था से ही भारतेन्दु ने साहित्य सेवा प्रारम्भ कर दी थी। अठारह वर्ष की अवस्था में उन्होंने 'कविवचनसुधा' नामक पत्रिका निकाली, जिसमें उस समय के बड़े-बड़े विद्वानों की रचनाएं छपती थीं। वे बीस वर्ष की अवस्था में ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट बनाए गए और आधुनिक हिन्दी साहित्य के जनक के रूप में प्रतिष्ठित हुए। उन्होंने 1868 में 'कविवचनसुधा', 1873 में 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' और 1874 में स्त्री शिक्षा के लिए 'बाला बोधिनी' नामक पत्रिकाएँ निकालीं। साथ ही उनके समांतर साहित्यिक संस्थाएँ भी खड़ी कीं। वैष्णव भक्ति के प्रचार के लिए उन्होंने 'तदीय समाज' की स्थापना की थी। राजभक्ति प्रकट करते हुए भी, अपनी देशभक्ति की भावना के कारण उन्हें अंग्रेजी हुकूमत का कोपभाजन बनना पड़ा। उनकी लोकप्रियता से प्रभावित होकर काशी के विद्वानों ने 1880 में उन्हें 'भारतेंदु' (भारत का चंद्रमा) की उपाधि प्रदान की। हिन्दी साहित्य को भारतेन्दु की देन भाषा तथा साहित्य दोनों ही क्षेत्रों में है। भाषा के क्षेत्र में उन्होंने खड़ी बोली के उस रूप को प्रतिष्ठित किया जो उर्दू से भिन्न है और हिन्दी क्षेत्र की बोलियों का रस लेकर संवर्धित हुआ है। इसी भाषा में उन्होंने अपने सम्पूर्ण गद्य साहित्य की रचना की। साहित्य सेवा के साथ-साथ भारतेंदु जी की समाज-सेवा भी चलती रही। उन्होंने कई संस्थाओं की स्थापना में अपना योग दिया। दीन-दुखियों, साहित्यिकों तथा मित्रों की सहायता करना वे अपना कर्तव्य समझते थे।

प्रमुख कृतियाँ

मौलिक नाटक

वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति (1873 ई., प्रहसन)
सत्य हरिश्चन्द्र (1875, नाटक),
श्री चंद्रावली (1876, नाटिका),
विषस्य विषमौषधम् (1876, भाण),
भारत दुर्दशा (1880, ब्रजरत्नदास के अनुसार 1876, न्याय रासिक),
नीलदेवी (1881, ऐतिहासिक गीति रूपक)।
अंधेर नगरी (1881, प्रहसन),
प्रेमजोगिनी (1875, प्रथम अंक में चार गर्भांक, नाटिका),
सती प्रताप (1883,अपूर्ण, केवल चार दृश्य, गीति:पक, बाबू राधाकृष्णदास ने पूर्ण किया),

अनूदित नाट्य रचनाएँ

विद्यासुन्दर (1868,नाटक, संस्कृत 'चौरपंचाशिका' के यतीन्द्रमोहन ठाकुर कृत बँगला संस्करण का हिंदी अनुवाद),

पाखण्ड विडम्बन (कृष्ण मिश्र कृत 'प्रबोधचंद्रोदय' नाटक के तृतीय अंक का अनुवाद),

धनंजय विजय (1873, व्यायोग, कांचन कवि कृत संस्कृत नाटक का अनुवाद),

कर्पूर मंजरी (1875, सट्टक, राजशेखर कवि कृत प्राकृत नाटक का अनुवाद),

भारत जननी (1877,नाट्यगीत, बंगला की 'भारतमाता' के हिंदी अनुवाद पर आधारित),

मुद्राराक्षस (1878, विशाखदत्त के संस्कृत नाटक का अनुवाद),

दुर्लभ बंधु (1880, शेक्सपियर के 'मर्चेंट ऑफ वेनिस' का अनुवाद),

निबंध संग्रह

नाटक,
कालचक्र (जर्नल),

लेवी प्राण लेवी,
भारतवर्षोन्नति कैसे हो सकती है?,
कश्मीर कुसुम,
जातीय संगीत,
संगीत सार,
हिंदी भाषा,
स्वर्ग में विचार सभा,

काव्यकृतियां

भक्तसर्वस्व (1870),
प्रेममालिका (1871),
प्रेम माधुरी (1875),
प्रेम-तरंग (1877),
उत्तरार्द्ध भक्तमाल (1876-77),
प्रेम-प्रलाप (1877),
होली (1879),
मधु मुकुल (1881),
राग-संग्रह (1880),
वर्षा-विनोद (1880),
विनय प्रेम पचासा (1881),
फूलों का गुच्छा—खड़ीबोली काव्य (1882),
प्रेम फुलवारी (1883),
कृष्णचरित्र (1883),
दानलीला,
तन्मय लीला,
नये जमाने की मुकरी,
सुमनांजलि,
बन्दर सभा (हास्य व्यंग),
बकरी विलाप (हास्य व्यंग),

कहानी

अद्भुत अपूर्व स्वप्न,
यात्रा वृत्तान्त,
सरयूपार की यात्रा,
लखनऊ,
आत्मकथा,
एक कहानी—कुछ आपबीती, कुछ जगबीती,

उपन्यास

पूर्णप्रकाश,
चन्द्रप्रभा।
वर्ण्य विषय

भारतेंदु जी की यह विशेषता रही कि जहां उन्होंने ईश्वर भक्ति आदि प्राचीन विषयों पर कविता लिखी वहां उन्होंने समाज सुधार, राष्ट्र प्रेम आदि नवीन विषयों को भी अपनाया। भारतेंदु की रचनाओं में अंग्रेजी शासन का विरोध, स्वतंत्रता के लिए उद्दाम आकांक्षा और जातीय भावबोध की झलक मिलती है। सामन्ती जकड़न में फंसे समाज में आधुनिक चेतना के प्रसार के लिए लोगों को संगठित करने का प्रयास करना उस जमाने में एक नई ही बात थी। उनके साहित्य और नवीन विचारों ने उस समय के तमाम साहित्यकारों और बुद्धिजीवियों को झकझोरा और उनके इर्द-गिर्द राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत लेखकों का एक ऐसा समूह बन गया जिसे भारतेन्दु मंडल के नाम से जाना जाता है।

विषय के अनुसार उनकी कविता श्रृंगार-प्रधान, भक्ति-प्रधान, सामाजिक समस्या प्रधान तथा राष्ट्र प्रेम प्रधान है।

श्रृंगार रस प्रधान भारतेंदु जी ने श्रृंगार के संयोग और वियोग दोनों ही पक्षों का सुंदर चित्रण किया है। वियोगावस्था का एक चित्र देखिए-

देख्यो एक बारहूं न नैन भरि तोहि याते
जौन जौन लोक जैहें तही पछतायगी।
बिना प्रान प्यारे भए दरसे तिहारे हाय,
देखि लीजो आंखें ये खुली ही रह जायगी।

भक्ति प्रधान भारतेंदु जी कृष्ण के भक्त थे और पुष्टि मार्ग के मानने वाले थे। उनको कविता में सच्ची भक्ति भावना के दर्शन होते हैं। वे कामना करते हैं-

बोल्यों करै नूपुर स्त्रीननि के निकट सदा
पद तल मांहि मन मेरी बिहरयौ करै।
बाज्यौ करै बंसी धुनि पूरि रोम-रोम,
मुख मन मुस्कानि मंद मनही हास्यौ करै।

सामाजिक समस्या प्रधान भारतेंदु जी ने अपने काव्य में अनेक सामाजिक समस्याओं का चित्रण किया। उन्होंने समाज में व्याप्त कुरीतियों पर तीखे व्यंग्य किए। महाजनों और रिश्वत लेने वालों को भी उन्होंने नहीं छोड़ा-

चूरन अमले जो सब खाते,
दूनी रिश्वत तुरत पचाते।
चूरन सभी महाजन खाते,
जिससे जमा हजम कर जाते।

राष्ट्र-प्रेम प्रधान भारतेंदु जी के काव्य में राष्ट्र-प्रेम भी भावना स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। भारत के प्राचीन गौरव की झांकी वे इन शब्दों में प्रस्तुत करते हैं -

भारत के भुज बल जग रच्छित,
भारत विद्या लहि जग सिच्छित।
भारत तेज जगत विस्तारा,
भारत भय कंपिथ संसारा।

प्राकृतिक चित्रण प्रकृति चित्रण में भारतेंदु जी को अधिक सफलता नहीं मिली, क्योंकि वे मानव-प्रकृति के शिल्पी थे, बाह्य प्रकृति में उनका मर्मपूर्ण रूपेण नहीं रम पाया। अतः उनके अधिकांश प्रकृति चित्रण में मानव हृदय को आकर्षित करने की शक्ति का अभाव है। चंद्रावली नाटिका के यमुना-वर्णन में अवश्य सजीवता है तथा उसकी उपमाएं और उत्प्रेक्षाएं नवीनता लिए हुए हैं-

कै पिय पद उपमान जान यह निज उर धारत,
कै मुख कर बहु भृंगन मिस अस्तुति उच्चारत।
कै ब्रज तियगन बदन कमल की झलकत झांईं,
कै ब्रज हरिपद परस हेतु कमला बहु आईं।

प्रकृति वर्णन का यह उदहारण देखिये, जिसमें युमना की शोभा कितनी दर्शनीय है-

तरनि तनूजा तट तमाल तरुवर बहु छाये ।
झुके कूल सों जल परसन हित मनहूँ सुहाये।

भाषा

भारतेन्दु के समय में राजकाज और संभ्रांत वर्ग की भाषा फारसी थी। वहीं, अंग्रेजी का वर्चस्व भी बढ़ता जा रहा था। साहित्य में ब्रजभाषा का बोलबाला था। फारसी के प्रभाव वाली उर्दू भी चलन में आ गई थी। ऐसे समय में भारतेन्दु ने लोकभाषाओं और फारसी से मुक्त उर्दू के आधार पर खड़ी बोली का विकास किया। आज जो हिंदी हम लिखते-बोलते हैं, वह भारतेंदु की ही देन है। यही कारण है कि उन्हें आधुनिक हिंदी का जनक माना जाता है। केवल भाषा ही नहीं, साहित्य में उन्होंने नवीन आधुनिक चेतना का समावेश किया और साहित्य को 'जन' से जोड़ा।

भारतेन्दु की रचनाधर्मिता में दोहरापन दिखता है। कविता जहां वे ब्रज भाषा में लिखते रहे, वहीं उन्होंने बाकी विधाओं में सफल हाथ खड़ी बोली में आजमाया। सही मायने में कहें तो भारतेंदु आधुनिक खड़ी बोली गद्य के उन्नायक हैं।

भारतेन्दु जी के काव्य की भाषा प्रधानतः ब्रज भाषा है। उन्होंने ब्रज भाषा के अप्रचलित शब्दों को छोड़ कर उसके परिकृष्ट रूप को अपनाया। उनकी भाषा में जहां-तहां उर्दू और अंग्रेजी के प्रचलित शब्द भी जाते हैं।

उनके गद्य की भाषा सरल और व्यावहारिक है। मुहावरों का प्रयोग कुशलतापूर्वक हुआ है।

शैली

भारतेंदु जी के काव्य में निम्नलिखित शैलियों के दर्शन होते हैं -

1. रीति कालीन रसपूर्ण अलंकार शैली -शृंगारिक कविताओं में,
2. भावात्मक शैली –भक्ति के पदों में,
3. व्यंग्यात्मक शैली –समाज-सुधार की रचनाओं में,
4. उद्बोधन शैली –देश-प्रेम की कविताओं में।

रस

भारतेंदु जी ने लगभग सभी रसों में कविता की है। शृंगार और शान्त रसों की प्रधानता है। शृंगार के दोनों पक्षों का भारतेंदु जी ने सुंदर वर्णन किया है। उनके काव्य में हास्य रस की भी उत्कृष्ट योजना मिलती है।

छन्द

भारतेंदु जी ने अपने समय में प्रचलित प्रायः सभी छंदों को अपनाया है। उन्होंने केवल हिंदी के ही नहीं उर्दू, संस्कृत, बंगला भाषा के छंदों को भी स्थान दिया है। उनके काव्य में संस्कृत के वसंत तिलका, शार्दूल विक्रीड़ित, शालिनी आदि हिंदी के चौपाई, छप्पय, रोला, सोरठा, कुंडलियाँ, कवित्त, सवैया, घनाक्षरी आदि, बंगला के पयार तथा उर्दू के रेखता, गजल छंदों का प्रयोग हुआ है। इनके अतिरिक्त भारतेंदु जी कजली, ठुमरी, लावनी, मल्हार, चौती आदि लोक छंदों को भी व्यवहार में लाए हैं।

अलंकार

अलंकारों का प्रयोग भारतेंदु जी के काव्य में सहज रूप से हुआ है। उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक और संदेह अलंकारों के प्रति भारतेंदु जी की अधिक रुचि है। शब्दालंकारों को भी स्थान मिला है। निम्न पंक्तियों में उत्प्रेक्षा और अनुप्रास अलंकार की योजना स्पष्ट दिखाई देती है–

तरनि तनूजा तट तमाल तरुवर बहु छाए।
झुके कूल सों जल परसन हित मनहु सुहाए।

महत्त्वपूर्ण कार्य

नवीन साहित्यिक चेतना और स्वभाषा प्रेम का सूत्रपात

आधुनिक हिन्दी साहित्य में भारतेन्दु जी का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। वे बहूमुखी प्रतिभा के स्वामी थे। कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास, निबंध आदि सभी क्षेत्रों में उनकी देन अपूर्व है। वे हिंदी में नव जागरण का संदेश लेकर अवतरित हुए। उन्होंने हिंदी के सर्वांगीण विकास में महत्त्वपूर्ण कार्य किया। भाव, भाषा और शैली में नवीनता तथा मौलिकता का समावेश करके उन्हें आधुनिक काल के अनुरूप बनाया। आधुनिक हिंदी के वे जन्मदाता माने जाते हैं। हिंदी के नाटकों का सूत्रपात भी उन्हीं के द्वारा हुआ।

भारतेन्दु अपने समय के साहित्यिक नेता थे। उनसे कितने ही प्रतिभाशाली लेखकों को जन्म मिला। मातृ–भाषा की सेवा में उन्होंने अपना जीवन ही नहीं सम्पूर्ण धन भी अर्पित कर दिया। हिंदी भाषा की उन्नति उनका मूलमंत्र था –

निज भाषा उन्नति लहै सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के मिटे न हिय को शूल।
विविध कला शिक्षा अमित, ज्ञान अनेक प्रकार।
सब देसन से लै करहू, भाषा माहि प्रचार।

1882 में शिक्षा आयोग (हन्टर कमीशन) के समक्ष अपनी गवाही में हिन्दी को न्यायालयों की भाषा बनाने की महत्ता पर उन्होंने कहा–

यदि हिन्दी अदालती भाषा हो जाए, तो सम्मन पढ़वाने, के लिए दो–चार आने कौन देगा, और साधारण–सी अर्जी लिखवाने के लिए कोई रुपया–आठ आने क्यों देगा। तब पढ़ने वालों को यह अवसर कहाँ मिलेगा कि गवाही के सम्मन को गिरफ्तारी का वारंट बता दें। सभी सभ्य देशों की अदालतों में उनके नागरिकों की बोली और लिपि का प्रयोग किया जाता है। यही (भारत) ऐसा देश है जहाँ अदालती भाषा न तो शासकों की मातृभाषा है और न प्रजा की। यदि आप दो सार्वजनिक नोटिस, एक उर्दू में, तथा एक हिंदी में, लिखकर भेज दें तो आपको आसानी से मालूम हो जाएगा कि प्रत्येक नोटिस को समझने वाले लोगों का अनुपात क्या है, जो सम्मन जिलाधीशों द्वारा जारी किये जाते हैं उनमें हिंदी का प्रयोग होने से रैयत और जमींदार को हार्दिक प्रसन्नता प्राप्त हुई है। साहूकार और व्यापारी अपना हिसाब–किताब हिंदी में रखते हैं। स्त्रियाँ हिंदी लिपि का प्रयोग करती हैं। पटवारी के कागजात हिंदी में लिखे जाते हैं और ग्रामों के अधिकतर स्कूल हिंदी में शिक्षा देते हैं।

इसी सन्दर्भ में 1868 ई में 'उर्दू का स्यापा' नाम से उन्होंने एक व्यंग्य कविता लिखी–

है है उर्दू हाय हाय । कहाँ सिधारी हाय हाय ।
मेरी प्यारी हाय हाय । मुंशी मुल्ला हाय हाय ।
बल्ला बिल्ला हाय हाय । रोये पीटें हाय हाय ।
टाँग घसीटैं हाय हाय । सब छिन सोचौं हाय हाय ।
डाढ़ी नोचौं हाय हाय । दुनिया उल्टी हाय हाय ।
रोजी बिल्टी हाय हाय । सब मुखतारी हाय हाय ।
किसने मारी हाय हाय । खबर नवीसी हाय हाय ।
दाँत पीसी हाय हाय । एडिटर पोसी हाय हाय ।
बात फरोशी हाय हाय । वह लस्सानी हाय हाय ।

चरब–जुबानी हाय हाय । शोख बयानि हाय हाय ।
फिर नहीं आनी हाय हाय ।

अपनी इन्हीं कार्यों के कारण भारतेन्दु हिन्दी साहित्याकाश के एक दैदीप्यमान नक्षत्र बन गए और उनका युग भारतेन्दु युग के नाम से प्रसिद्ध हुआ। हरिश्चन्द्र चन्द्रिका, कविवचनसुधा, हरिश्चन्द्र मैग्जीन, स्त्री बाला बोधिनी जैसे प्रकाशन उनके विचारशील और प्रगतिशील सम्पादकीय दृष्टिकोण का परिचय देते हैं।

साम्राज्य-विरोधी चेतना तथा स्वदेश प्रेम का विकास

भारतेन्दु का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य यह है कि उन्होंने हिन्दी साहित्य को, और उसके साथ समाज को साम्राज्य–विरोधी दिशा में बढ़ने की प्रेरणा दी। 1870 में जब कविवचनसुधा में उन्होंने लॉर्ड मेयो को लक्ष्य करके 'लेवी प्राण लेवी' नामक लेख लिखा तब से हिन्दी साहित्य में एक नयी साम्राज्य–विरोधी चेतना का प्रसार आरम्भ हुआ। 6 जुलाई 1874 को कविवचनसुधा में लिखा कि जिस प्रकार अमेरिका उपनिवेशित होकर स्वतन्त्र हुआ उसी प्रकार भारत भी स्वतन्त्रता लाभ कर सकता है। उन्होंने तदीय समाज की स्थापना की जिसके सदस्य स्वदेशी वस्तुओं के व्यवहार और विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार की प्रतिज्ञा करते थे। भारतेन्दु ने विलायती कपड़ों के बहिष्कार की अपील करते हुए स्वदेशी का जो प्रतिज्ञा पत्र 23 मार्च, 1874 के 'कविवचनसुधा' में प्रकाशित किया, वह समूचे हिंदी समाज का प्रतिज्ञा पत्र बन गया। उसमें भारतेंदु ने कहा था,

हम लोग सर्वान्तर्यामी, सब स्थल में वर्तमान, सर्वद्रष्टा और नित्य सत्य परमेश्वर को साक्षी देकर यह नियम मानते हैं और लिखते हैं कि हम लोग आज के दिन से कोई विलायती कपड़ा न पहिरेंगे और जो कपड़ा कि पहिले से मोल ले चुके हैं और आज की मिती तक हमारे पास हैं उनको तो उनके जीर्ण हो जाने तक काम में लावेंगे पर नवीन मोल लेकर किसी भाँति का भी विलायती कपड़ा न पहिरेंगे, हिंदुस्तान का ही बना कपड़ा पहिरेंगे। हम आशा रखते हैं कि इसको बहुत ही क्या प्रायः सब लोग स्वीकार करेंगे और अपना नाम इस श्रेणी में होने के लिए श्रीयुत बाबू हरिश्चंद्र को अपनी मनीषा प्रकाशित करेंगे और सब देश हितैषी इस उपाय के बाद में अवश्य उद्योग करेंगे।

सबसे पहले भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने ही साहित्य में जन भावनाओं और आकांक्षाओं को स्वर दिया था। पहली बार साहित्य में 'जन' का समावेश भारतेन्दु ने ही किया। उनके पहले काव्य में रीतिकालीन प्रवृत्तियों का ही बोलबाला था। साहित्य पतनशील सामन्ती संस्कृति का पोषक बन गया था, पर भारतेन्दु ने साहित्य को जनता की गरीबी, पराधीनता, विदेशी शासकों के अमानवीय शोषण के चित्रण और उसके विरोध का माध्यम बना दिया। अपने नाटकों, कवित्त, मुकरियों और प्रहसनों के माध्यम से उन्होंने अंग्रेजी राज पर कटाक्ष और प्रहार किए, जिसके चलते उन्हें अंग्रेजों का कोपभाजन भी बनना पड़ा।

भारतेंदु अंग्रेजों के शोषण तंत्र को भली-भांति समझते थे। अपनी पत्रिका कविवचनसुधा में उन्होंने लिखा था -

जब अंग्रेज विलायत से आते हैं प्राय: कैसे दरिद्र होते हैं और जब हिंदुस्तान से अपने विलायत को जाते हैं तब कुबेर बनकर जाते हैं। इससे सिद्ध हुआ कि रोग और दुष्काल इन दोनों के मुख्य कारण अंग्रेज ही हैं।

यही नहीं, 20वीं सदी की शुरुआत में दादाभाई नौरोजी ने धन के अपवहन (ड्रेन ऑफ वेल्थ) के जिस सिद्धान्त को प्रस्तुत किया था, भारतेन्दु ने बहुत पहले ही शोषण के इस रूप को समझ लिया था। उन्होंने लिखा था -

अंगरेजी राज सुखसाज सजे अति भारी, पर सब धन विदेश चलि जात ये ख्वारी।

अंग्रेज भारत का धन अपने यहां लेकर चले जाते हैं और यही देश की जनता की गरीबी और कष्टों का मूल कारण है, इस सच्चाई को भारतेंदु ने समझ लिया था। कविवचनसुधा में उन्होंने जनता का आह्वान किया था-

भाइयो! अब तो सन्नद्ध हो जाओ और ताल ठोक के इनके सामने खड़े तो हो जाओ। देखो भारतवर्ष का धन जिसमें जाने न पावे वह उपाय करो।"

भारत की सामाजिक और आर्थिक उन्नति के लिए प्रयत्न

1976 में भारत सरकार ने भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी की स्मृति में एक डाक-टिकट जारी किया

भारतेन्दु की वैश्विक चेतना भी अत्यन्त प्रखर थी। उन्हें अच्छी तरह पता था कि विश्व के कौन से देश कैसे और कितनी उन्नति कर रहे हैं। इसलिए उन्होंने सन् 1884 में बलिया के दादरी मेले में 'भारत वर्षोन्नति कैसे हो सकती

है' पर अत्यन्त सारगर्भित भाषण दिया था। यह लेख उनकी अत्यन्त प्रगतिशील सोच का परिचायक भी है। इसमें उन्होंने लोगों से कुरीतियों और अंधविश्वासों को त्यागकर अच्छी-से-अच्छी शिक्षा प्राप्त करने, उद्योग-धंधों को विकसित करने, सहयोग एवं एकता पर बल देने तथा सभी क्षेत्रों में आत्मनिर्भर होने का आह्वान किया था। दादरी जैसे धार्मिक और लोक मेले के साहित्यिक मंच से भारतेंदु का यह उद्‌बोधन अगर देखा जाए तो आधुनिक भारतीय सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक चिंतन का प्रस्थानबिंदु है। भाषण का एक छोटा सा अंश देखिए-

हम नहीं समझते कि इनको लाज भी क्यों नहीं आती कि उस समय में जबकि इनके पुरखों के पास कोई भी सामान नहीं था तब उन लोगों ने जंगल में पत्ते और मिट्‌टी की कुटियों में बैठ करके बाँस की नालियों से जो ताराग्रह आदि बेध करके उनकी गति लिखी है वह ऐसी ठीक है कि सोलह लाख रुपये के लागत की विलायत में जो दूरबीन बनी है उनसे उन ग्रहों को बेध करने में भी वही गति ठीक आती है और जब आज इस काल में हम लोगों को अंगरेजी विद्या के और जनता की उन्नति से लाखों पुस्तकें और हजारों यंत्र तैयार हैं तब हम लोग निरी चुंगी के कतवार फेंकने की गाड़ी बन रहे हैं। यह समय ऐसा है कि उन्नति की मानो घुड़दौड़ हो रही है। अमेरिकन अंगरेज फरासीस आदि तुरकी ताजी सब सरपट्‌ट दौड़े जाते हैं। सबके जी में यही है कि पाला हमीं पहले छू लें। उस समय हिन्दू काठियावाड़ी खाली खड़े-खड़े टाप से मिट्‌टी खोदते हैं। इनको औरों को जाने दीजिए जापानी टट्‌टुओं को हाँफते हुए दौड़ते देख करके भी लाज नहीं आती। यह समय ऐसा है कि जो पीछे रह जायेगा फिर कोटि उपाय किये भी आगे न बढ़ सकेगा। इस लूट में इस बरसात में भी जिसके सिर पर कम्बख्ती का छाता और आँखों में मूर्खता की पट्‌टी बँधी रहे उन पर ईश्वर का कोप ही कहना चाहिए।

विचारों की स्पष्टता और उसे विनोदप्रियता के साथ किस तरह प्रस्तुत किया जा सकता है, इसका यह निबन्ध बेजोड़ उदाहरण है। देखिए, किस तरह भारत की चिंता इस निबन्ध में भारतेंदु व्यक्त करते हैं-

बहुत लोग यह कहेंगे कि हमको पेट के धंधे के मारे छुट्‌टी ही नहीं रहती बाबा, हम क्या उन्नति करैं? तुम्हरा पेट भरा है तुमको दून की सूझती है। यह कहना उनकी बहुत भूल है। इंगलैंड का पेट भी कभी यों ही खाली था। उसने एक हाथ से पेट भरा, दूसरे हाथ से उन्नति की राह के कांटों को साफ किया।

वास्तव में उनका यह लेख भारत दुर्दशा नामक उनके नाटक का एक तरह से वैचारिक विस्तार है। भारत दुर्दशा में वे कहते हैं,

रोअहुं सब मिलिकै आवहुं भारत भाई।
हा, हा ! भारत दुर्दशा देखी न जाई।

भारतेन्दु अच्छी तरह समझ चुके थे कि 'अंग्रेजी शासन भारतीयों के लाभ के लिए है' यह पूर्णतः खोखला दावा था और दुष्प्रचार था। अँग्रेज किस तरह भारत की संपदा लूट रहे थे, इसका संकेत भारतेन्दु ने 'कविवचनसुधा' के 7 मार्च, 1874 के अंक में अपनी टिप्पणी में दिया–

सरकारी पक्ष का कहना है कि हिंदुस्तान में पहले सब लोग लड़ते-भिड़ते थे और आपस में गमनागमन न हो सकता था। यह सब सरकार की कृपा से हुआ। हिंदुस्तानियों का कहना है कि उद्योग और व्यापार बाकी नहीं। रेल आदि से भी द्रव्य के बढ़ने की आशा नहीं है। रेलवे कंपनी वाले जो द्रव्य व्यय किया है, उसका ब्याज सरकार को देना पड़ता है और उसे लेने वाले बहुधा विलायत के लोग हैं। कुल मिलाकर 26 करोड़ रुपया बाहर जाता है।

भारतेन्दु स्त्री-पुरुष की समानता के इतने बड़े पैरोकार थे कि 'कविवचनसुधा' के 3 नवंबर, 1873 के अंक में उन्होंने लिखा–

यह बात सिद्ध है कि पश्चिमोत्तर देश की कदापि उन्नति नहीं होगी, जब तक यहाँ की स्त्रियों की भी शिक्षा न होगी क्योंकि यदि पुरुष विद्वान होंगे और उनकी स्त्रियाँ मूर्ख तो उनमें आपस में कभी स्नेह न होगा और नित्य कलह होगी।

भारतेन्दु ने अपने 'सत्य हरिश्चन्द्र नाटक' का समापन इस भरत-वाक्य से किया है-

खलगनन सों सज्जन दुखी मत होइ, हरि पद रति रहै।
उपधर्म छूटै सत्व निज भारत गहै, कर-दुःख बहै।
बुध तजहिं मत्सर नारि-नर सम होंहिं, सब जग सुख लहै।
तजि ग्राम कविता सुकवि जन की अमृत बानी सब कहैं।

7

कमलेश्वर

कमलेश्वर हिन्दी लेखक कमलेश्वर बीसवीं शती के सबसे सशक्त लेखकों में से एक समझे जाते हैं। कहानी, उपन्यास, पत्रकारिता, स्तंभ लेखन, फिल्म पटकथा जैसी अनेक विधाओं में उन्होंने अपनी लेखन प्रतिभा का परिचय दिया। कमलेश्वर का लेखन केवल गंभीर साहित्य से ही जुड़ा नहीं रहा बल्कि उनके लेखन के कई तरह के रंग देखने को मिलते हैं। उनका उपन्यास 'कितने पाकिस्तान' हो या फिर भारतीय राजनीति का एक चेहरा दिखाती फिल्म 'आंधी' हो, कमलेश्वर का काम एक मानक के तौर पर देखा जाता रहा है। उन्होंने मुंबई में जो टीवी पत्रकारिता की, वो बेहद मायने रखती है। 'कामगार विश्व' नाम के कार्यक्रम में उन्होंने गरीबों, मजदूरों की पीड़ा–उनकी दुनिया को अपनी आवाज दी। कमलेश्वर की अनेक कहानियों का उर्दू में भी अनुवाद हुआ है।

कमलेश्वर का जन्म 6 जनवरी 1932 को उत्तरप्रदेश के मैनपुरी जिले में हुआ। उन्होंने 1954 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से हिन्दी साहित्य में एम.ए. किया। उन्होंने फिल्मों के लिए पटकथाएँ तो लिखी ही, उनके उपन्यासों पर फिल्में भी बनी। आंधी', 'मौसम (फिल्म)', 'सारा आकाश', 'रजनीगंधा',, 'मिस्टर नटवरलाल', 'सौतन', 'लैला', 'रामबलराम' की पटकथाएँ उनकी कलम से ही लिखी गईं थीं। लोकप्रिय टीवी सीरियल 'चन्द्रकांता' के अलावा 'दर्पण' और 'एक कहानी' जैसे धारावाहिकों की पटकथा लिखने वाले भी कमलेश्वर ही थे। उन्होंने कई वृतचित्रों और कार्यक्रमों का निर्देशन भी किया।

1995 में कमलेश्वर को 'पद्मभूषण' से नवाजा गया और 2003 में उन्हें 'कितने पाकिस्तान' (उपन्यास) के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया। वे 'सारिका' 'धर्मयुग', 'जागरण' और 'दैनिक भास्कर' जैसे प्रसिद्ध पत्र–पत्रिकाओं के संपादक भी रहे। उन्होंने दूरदर्शन के अतिरिक्त महानिदेशक जैसा महत्त्वपूर्ण दायित्व भी निभाया। कमलेश्वर ने अपने 75 साल के जीवन में 12 उपन्यास, 17 कहानी संग्रह और करीब 100 फिल्मों की पटकथाएँ लिखीं।

कमलेश्वर की अंतिम अधूरी रचना अंतिम सफर उपन्यास है, जिसे कमलेश्वर की पत्नी गायत्री कमलेश्वर के अनुरोध पर तेजपाल सिंह धामा ने पूरा किया और हिन्द पाकेट बुक्स ने उसे प्रकाशित किया और बेस्ट सेलर रहा। 27 जनवरी 2007 को उनका निधन हो गया।

अनुक्रम

कृतियाँ

उपन्यास –

एक सड़क सत्तावन गलियाँ,
तीसरा आदमी,
डाक बंगला,
समुद्र में खोया हुआ आदमी,
काली आँधी,
आगामी अतीत,
सुबह...दोपहर...शाम,
रेगिस्तान,
लौटे हुए मुसाफिर,
वही बात,
एक और चंद्रकांता,
कितने पाकिस्तान,
अंतिम सफर।

पटकथा एवं संवाद

कमलेश्वर ने 99 फिल्मों के संवाद, कहानी या पटकथा लेखन का काम किया। कुछ प्रसिद्ध फिल्मों के नाम हैं-

1. सौतन की बेटी (1989)-संवाद,
2. लैला (1984)–संवाद, पटकथा,
3. यह देश (1984) -संवाद,
4. रंग बिरंगी (1983) -कहानी,
5. सौतन (1983)–संवाद,
6. साजन की सहेली (1981)–संवाद, पटकथा,
7. राम बलराम (1980)–संवाद, पटकथा,
8. मौसम (1975)–कहानी,
9. आंधी (1975)–उपन्यास।

संपादन

अपने जीवनकाल में अलग-अलग समय पर उन्होंने सात पत्रिकाओं का संपादन किया-

विहान-पत्रिका (1954),
नई कहानियाँ-पत्रिका (1958-66),
सारिका-पत्रिका (1967-78),
कथायात्रा-पत्रिका (1978-79),
गंगा-पत्रिका (1984-88),
इंगित-पत्रिका (1961-68),
श्रीवर्षा-पत्रिका (1979-80)।

अखबारों में भूमिका

वे हिन्दी दैनिक ़दैनिक जागरण' में 1990 से 1992 तक तथा 'दैनिक भास्कर' में 1997 से लगातार स्तंभलेखन का काम करते रहे।'

कहानियाँ

कमलेश्वर ने तीन सौ से अधिक कहानियाँ लिखीं। उनकी कुछ प्रसिद्ध कहानियाँ हैं -

राजा निरबंसिया,
मांस का दरिया,

नीली झील,
तलाश,
बयान,
नागमणि,
अपना एकांत,
आसक्ति,
जिंदा मुर्दे,
जॉर्ज पंचम की नाक,
मुर्दों की दुनिया,
कस्बे का आदमी,
स्मारक।

नाटक

उन्होंने तीन नाटक लिखे –
अधूरी आवाज,
रेत पर लिखे नाम,
हिंदोस्ता हमारा।

8

प्रेमचंद

धनपत राय श्रीवास्तव जो प्रेमचंद नाम से जाने जाते हैं, वे हिन्दी और उर्दू के सर्वाधिक लोकप्रिय उपन्यासकार, कहानीकार एवं विचारक थे। उन्होंने सेवासदन, प्रेमाश्रम, रंगभूमि, निर्मला, गबन, कर्मभूमि, गोदान आदि लगभग डेढ़ दर्जन उपन्यास तथा कफन, पूस की रात, पंच परमेश्वर, बड़े घर की बेटी, बूढ़ी काकी, दो बैलों की कथा आदि तीन सौ से अधिक कहानियाँ लिखीं। उनमें से अधिकांश हिंदी तथा उर्दू दोनों भाषाओं में प्रकाशित हुईं। उन्होंने अपने दौर की सभी प्रमुख उर्दू और हिंदी पत्रिकाओं जमाना, सरस्वती, माधुरी, मर्यादा, चाँद, सुधा आदि में लिखा। उन्होंने हिंदी समाचार पत्र जागरण तथा साहित्यिक पत्रिका हंस का संपादन और प्रकाशन भी किया। इसके लिए उन्होंने सरस्वती प्रेस खरीदा जो बाद में घाटे में रहा और बंद करना पड़ा। प्रेमचंद फिल्मों की पटकथा लिखने मुंबई आए और लगभग तीन वर्ष तक रहे। जीवन के अंतिम दिनों तक वे साहित्य सृजन में लगे रहे। महाजनी सभ्यता उनका अंतिम निबंध, साहित्य का उद्देश्य अंतिम व्याख्यान, कफन अंतिम कहानी, गोदान अंतिम पूर्ण उपन्यास तथा मंगलसूत्र अंतिम अपूर्ण उपन्यास माना जाता है।

1906 से 1936 के बीच लिखा गया प्रेमचंद का साहित्य इन तीस वर्षों का सामाजिक सांस्कृतिक दस्तावेज है। इसमें उस दौर के समाजसुधार आंदोलनों, स्वाधीनता संग्राम तथा प्रगतिवादी आंदोलनों के सामाजिक प्रभावों का स्पष्ट चित्रण है। उनमें दहेज, अनमेल विवाह, पराधीनता, लगान, छूआछूत, जाति भेद,

विधवा विवाह, आधुनिकता, स्त्री-पुरुष समानता, आदि उस दौर की सभी प्रमुख समस्याओं का चित्रण मिलता है। आदर्शोन्मुख यथार्थवाद उनके साहित्य की मुख्य विशेषता है। हिंदी कहानी तथा उपन्यास के क्षेत्र में 1918 से 1936 तक के कालखंड को 'प्रेमचंद युग' कहा जाता है।

प्रेमचंद का जन्म 31 जुलाई 1880 को वाराणसी जिले (उत्तर प्रदेश) के लमही गाँव में एक कायस्थ परिवार में हुआ था। उनकी माता का नाम आनन्दी देवी तथा पिता का नाम मुंशी अजायबराय था जो लमही में डाकमुंशी थे। उनका वास्तविक नाम धनपत राय श्रीवास्तव था। प्रेमचंद की आरंभिक शिक्षा फारसी में हुई। प्रेमचंद के माता-पिता के संबंध में रामविलास शर्मा लिखते हैं कि-'जब वे सात साल के थे, तभी उनकी माता का स्वर्गवास हो गया। जब पंद्रह साल के हुए तब उनकी शादी कर दी गई और सोलह साल के होने पर उनके पिता का भी देहांत हो गया।'

प्रेमचंद का बचपन गाँव में बीता था। वे नटखट और खिलाड़ी बालक थे और खेतों से शाक-सब्जी और पेड़ों से फल चुराने में दक्ष थे। उन्हें मिठाई का बड़ा शौक था और विशेष रूप से गुड़ से उन्हें बहुत प्रेम था। बचपन में उनकी शिक्षा-दीक्षा लमही में हुई और एक मौलवी साहब से उन्होंने उर्दू और फारसी पढ़ना सीखा। एक रुपया चुराने पर 'बचपन' में उन पर बुरी तरह मार पड़ी थी। उनकी कहानी, 'कजाकी', उनकी अपनी बाल-स्मृतियों पर आधारित है। कजाकी डाक-विभाग का हरकारा था और बड़ी लम्बी-लम्बी यात्राएँ करता था। वह बालक प्रेमचंद के लिए सदैव अपने साथ कुछ सौगात लाता था। कहानी में वह बच्चे के लिये हिरन का छौना लाता है और डाकघर में देरी से पहुँचने के कारण नौकरी से अलग कर दिया जाता है। हिरन के बच्चे के पीछे दौड़ते-दौड़ते वह अति विलम्ब से डाक घर लौटा था। कजाकी का व्यक्तित्त्व अतिशय मानवीयता में डूबा है। वह शालीनता और आत्मसम्मान का पुतला है, किन्तु मानवीय करुणा से उसका हृदय भरा है।

पारिवारिक जीवन

प्रेमचंद का कुल दरिद्र कायस्थों का था, जिनके पास करीब छह बीघे जमीन थी और जिनका परिवार बड़ा था। प्रेमचंद के पितामह, मुंशी गुरुसहाय लाल, पटवारी थे। उनके पिता, मुंशी अजायब लाल, डाकमुंशी थे और उनका वेतन लगभग पच्चीस रुपये मासिक था। उनकी माँ, आनन्द देवी, सुन्दर सुशील

और सुघड़ महिला थीं। छह महीने की बीमारी के बाद प्रेमचंद की माँ की मृत्यु हो गई। तब वे आठवीं कक्षा में पढ़ रहे थे। दो वर्ष के बाद उनके पिता ने फिर विवाह कर लिया और उनके जीवन में विमाता का अवतरण हुआ। प्रेमचंद के इतिहास में विमाता के अनेक वर्णन हैं। यह स्पष्ट है कि प्रेमचंद के जीवन में माँ के अभाव की पूर्ति विमाता द्वारा न हो सकी थी।

विवाह

जब प्रेमचंद पंद्रह वर्ष के थे, उनका विवाह हो गया। वह विवाह उनके सौतेले नाना ने तय किया था। उस काल के विवरण से लगता है कि लड़की न तो देखने में सुंदर थी, न वह स्वभाव से शीलवती थी। वह झगड़ालू भी थी। प्रेमचंद के कोमल मन का कल्पना-भवन मानो नींव रखते-रखते ही ढह गया। प्रेमचंद का यह पहला विवाह था। इस विवाह का टूटना आश्चर्य न था। प्रेमचंद की पत्नी के लिए यह विवाह एक दु:खद घटना रहा होगा। जीवन पर्यन्त यह उनका अभिशाप बन गया। इस सब का दोष भारत की परम्पराग्रस्त विवाह-प्रणाली पर है, जिसके कारण यह व्यवस्था आवश्यकता से भी अधिक जुए का खेल बन जाती है। प्रेमचंद ने निश्चय किया कि अपना दूसरा विवाह वे किसी विधवा कन्या से करेंगे। यह निश्चय उनके उच्च विचारों और आदर्शों के ही अनुरूप था।

प्रेमचन्द का दूसरा विवाह

पत्नी शिवरानी के साथ प्रेमचंद

सन 1905 के अन्तिम दिनों में आपने शिवरानी देवी से शादी कर ली। शिवरानी देवी बाल-विधवा थीं। उनके पिता फतेहपुर के पास के इलाके में एक साहसी जमीदार थे और शिवरानी जी के पुनर्विवाह के लिए उत्सुक थे। सन् 1916 के आदिम युग में ऐसे विचार-मात्र की साहसिकता का अनुमान किया जा सकता है। यह कहा जा सकता है कि दूसरी शादी के पश्चात् इनके जीवन में परिस्थितियाँ कुछ बदलीं और आय की आर्थिक तंगी कम हुई। इनके लेखन में अधिक सजगता आई। प्रेमचन्द की पदोन्नति हुई तथा यह स्कूलों के डिप्टी इन्सपेक्टर बना दिये गए।

Blockquote-open-gif प्रेमचंद जी कहते हैं कि समाज में जिन्दा रहने में जितनी कठिनाइयों का सामना लोग करेंगे उतना ही वहाँ गुनाह होगा। अगर समाज में लोग खुशहाल होंगे तो समाज में अच्छाई ज्यादा होगी और समाज में

गुनाह नहीं के बराबर होगा। प्रेमचन्द ने शोषितवर्ग के लोगों को उठाने का हरसंभव प्रयास किया। उन्होंने आवाज लगाई 'ए लोगों जब तुम्हें संसार में रहना है तो जिन्दों की तरह रहो, मुर्दों की तरह जिन्दा रहने से क्या फायदा।' Blockquote&close-gif

इसी खुशहाली के जमाने में प्रेमचन्द की पाँच कहानियों का संग्रह सोजे वतन प्रकाश में आया। यह संग्रह काफी मशहूर हुआ। शिवरानी जी की पुस्तक 'प्रेमचंद-घर में', प्रेमचंद के घरेलू जीवन का सजीव और अंतरंग चित्र प्रस्तुत करती है। प्रेमचंद अपने पिता की तरह पेचिश के शिकार थे और निरंतर पेट की व्याधियों से पीड़ित रहते थे। प्रेमचंद स्वभाव से सरल, आदर्शवादी व्यक्ति थे। वे सभी का विश्वास करते थे, किन्तु निरंतर उन्हें धोखा खाना पड़ा। उन्होंने अनेक लोगों को धन-राशि कर्ज दी, किन्तु बहुधा यह धन लौटा ही नहीं। शिवरानी देवी की दृष्टि कुछ अधिक सांसारिक और व्यवहार-कुशल थी। वे निरंतर प्रेमचंद की उदार-हृदयता पर ताने कसती थीं, क्योंकि अनेक बार कुपात्र ने ही इस उदारता का लाभ उठाया। प्रेमचंद स्वयं सम्पन्न न थे और अपनी उदारता के कारण अर्थ-संकट में फंस जाते थे। 'ढपोरशंख' शीर्षक कहानी में प्रेमचंद एक कपटी साहित्यिक द्वारा अपने ठगे जाने की मार्मिक कथा कहते हैं।

शिक्षा

गरीबी से लड़ते हुए प्रेमचन्द ने अपनी पढ़ाई मैट्रिक तक पहुँचाई। जीवन के आरंभ में ही इनको गाँव से दूर वाराणसी पढ़ने के लिए नंगे पाँव जाना पड़ता था। इसी बीच में इनके पिता का देहान्त हो गया। प्रेमचन्द को पढ़ने का शौक था, आगे चलकर यह वकील बनना चाहते थे, मगर गरीबी ने इन्हें तोड़ दिया। प्रेमचन्द ने स्कूल आने-जाने के झंझट से बचने के लिए एक वकील साहब के यहाँ ट्यूशन पकड़ लिया और उसी के घर में एक कमरा लेकर रहने लगे। इनको ट्यूशन का पाँच रुपया मिलता था। पाँच रुपये में से तीन रुपये घर वालों को और दो रुपये से प्रेमचन्द अपनी जिन्दगी की गाड़ी को आगे बढ़ाते रहे। प्रेमचन्द महीना भर तंगी और अभाव का जीवन बिताते थे। इन्हीं जीवन की प्रतिकूल परिस्थितियों में प्रेमचन्द ने मैट्रिक पास किया। उन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से अंग्रेजी साहित्य, पर्शियन (फारसी) और इतिहास विषयों से स्नातक की उपाधि द्वितीय श्रेणी में प्राप्त की थी। इंटरमीडिएट कक्षा में भी उन्होंने अंग्रेजी साहित्य एक विषय के रूप में पढा था।

इसके कारण उनका प्रारंभिक जीवन संघर्षमय रहा। प्रेमचंद के जीवन का साहित्य से क्या संबंध है इस बात की पुष्टि रामविलास शर्मा के इस कथन से होती है कि–'सौतेली माँ का व्यवहार, बचपन में शादी, पंडे-पुरोहित का कर्मकांड, किसानों और क्लर्कों का दुखी जीवन-यह सब प्रेमचंद ने सोलह साल की उम्र में ही देख लिया था। इसीलिए उनके ये अनुभव एक जबर्दस्त सचाई लिए हुए उनके कथा-साहित्य में झलक उठे थे।' उनकी बचपन से ही पढ़ने में बहुत रुचि थी। 13 साल की उम्र में ही उन्होंने तिलिस्म-ए-होशरुबा पढ़ लिया और उन्होंने उर्दू के मशहूर रचनाकार रतननाथ 'शरसार', मिर्जा हादी रुस्वा और मौलाना शरर के उपन्यासों से परिचय प्राप्त कर लिया । उनका पहला विवाह पंद्रह साल की उम्र में हुआ। 1906 में उनका दूसरा विवाह शिवरानी देवी से हुआ जो बाल-विधवा थीं। वे सुशिक्षित महिला थीं जिन्होंने कुछ कहानियाँ और प्रेमचंद घर में शीर्षक पुस्तक भी लिखी। उनकी तीन संताने हुईं-श्रीपत राय, अमृत राय और कमला देवी श्रीवास्तव। 1898 में मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद वे एक स्थानीय विद्यालय में शिक्षक नियुक्त हो गए। नौकरी के साथ ही उन्होंने पढ़ाई जारी रखी। उनकी शिक्षा के संदर्भ में रामविलास शर्मा लिखते हैं कि–'1910 में अंग्रेजी, दर्शन, फारसी और इतिहास लेकर इंटर किया और 1919 में अंग्रेजी, फारसी और इतिहास लेकर बी. ए. किया।' 1919 में बी.ए. पास करने के बाद वे शिक्षा विभाग के इंस्पेक्टर पद पर नियुक्त हुए।

1921 ई. में असहयोग आंदोलन के दौरान महात्मा गाँधी के सरकारी नौकरी छोड़ने के आह्वान पर स्कूल इंस्पेक्टर पद से 23 जून को त्यागपत्र दे दिया। इसके बाद उन्होंने लेखन को अपना व्यवसाय बना लिया। मर्यादा, माधुरी आदि पत्रिकाओं में वे संपादक पद पर कार्यरत रहे। इसी दौरान उन्होंने प्रवासीलाल के साथ मिलकर सरस्वती प्रेस भी खरीदा तथा हंस और जागरण निकाला। प्रेस उनके लिए व्यावसायिक रूप से लाभप्रद सिद्ध नहीं हुआ। 1933 ई. में अपने ऋण को पटाने के लिए उन्होंने मोहनलाल भवनानी के सिनेटोन कंपनी में कहानी लेखक के रूप में काम करने का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। फिल्म नगरी प्रेमचंद को रास नहीं आई। वे एक वर्ष का अनुबंध भी पूरा नहीं कर सके और दो महीने का वेतन छोड़कर बनारस लौट आए। उनका स्वास्थ्य निरंतर बिगड़ता गया। लम्बी बीमारी के बाद 8 अक्टूबर 1936 को उनका निधन हो गया।

साहित्यिक जीवन

भित्तिलेख

प्रेमचंद के साहित्यिक जीवन का आरंभ 1901 से हो चुका था आरंभ में वे नवाब राय के नाम से उर्दू में लिखते थे। प्रेमचंद की पहली रचना के संबंध में रामविलास शर्मा लिखते हैं कि–'प्रेमचंद की पहली रचना, जो अप्रकाशित ही रही, शायद उनका वह नाटक था जो उन्होंने अपने मामा जी के प्रेम और उस प्रेम के फलस्वरूप चमारों द्वारा उनकी पिटाई पर लिखा था। इसका जिक्र उन्होंने 'पहली रचना' नाम के अपने लेख में किया है।' उनका पहला उपलब्ध लेखन उर्दू उपन्यास 'असरारे मआबिद' है, जो धारावाहिक रूप में प्रकाशित हुआ। इसका हिंदी रूपांतरण देवस्थान रहस्य नाम से हुआ। प्रेमचंद का दूसरा उपन्यास 'हमखुर्मा व हमसवाब' है जिसका हिंदी रूपांतरण 'प्रेमा' नाम से 1907 में प्रकाशित हुआ। 1908 ई. में उनका पहला कहानी संग्रह सोजे-वतन प्रकाशित हुआ। देशभक्ति की भावना से ओतप्रोत इस संग्रह को अंग्रेज सरकार ने प्रतिबंधित कर दिया और इसकी सभी प्रतियाँ जब्त कर लीं और इसके लेखक नवाब राय को भविष्य में लेखन न करने की चेतावनी दी। इसके कारण उन्हें नाम बदलकर प्रेमचंद के नाम से लिखना पड़ा। उनका यह नाम दयानारायन निगम ने रखा था। 'प्रेमचंद' नाम से उनकी पहली कहानी बड़े घर की बेटी जमाना पत्रिका के दिसम्बर 1910 के अंक में प्रकाशित हुई।

1915 ई. में उस समय की प्रसिद्ध हिंदी मासिक पत्रिका सरस्वती के दिसम्बर अंक में पहली बार उनकी कहानी सौत नाम से प्रकाशित हुई। 1918 ई. में उनका पहला हिंदी उपन्यास सेवासदन प्रकाशित हुआ। इसकी अत्यधिक लोकप्रियता ने प्रेमचंद को उर्दू से हिंदी का कथाकार बना दिया। हालाँकि उनकी लगभग सभी रचनाएँ हिंदी और उर्दू दोनों भाषाओं में प्रकाशित होती रहीं। उन्होंने लगभग 300 कहानियाँ तथा डेढ़ दर्जन उपन्यास लिखे।

1921 में असहयोग आंदोलन के दौरान सरकारी नौकरी से त्यागपत्र देने के बाद वे पूरी तरह साहित्य सृजन में लग गए। उन्होंने कुछ महीने मर्यादा नामक पत्रिका का संपादन किया। इसके बाद उन्होंने लगभग छह वर्षों तक हिंदी पत्रिका माधुरी का संपादन किया। 1922 में उन्होंने बेदखली की समस्या पर आधारित प्रेमाश्रम उपन्यास प्रकाशित किया। 1925 ई. में उन्होंने रंगभूमि नामक वृहद

उपन्यास लिखा, जिसके लिए उन्हें मंगलप्रसाद पारितोषिक भी मिला। 1926-27 ई. के दौरान उन्होंने महादेवी वर्मा द्वारा संपादित हिंदी मासिक पत्रिका चाँद के लिए धारावाहिक उपन्यास के रूप में निर्मला की रचना की। इसके बाद उन्होंने कायाकल्प, गबन, कर्मभूमि और गोदान की रचना की। उन्होंने 1930 में बनारस से अपना मासिक पत्रिका हंस का प्रकाशन शुरू किया। 1932 ई. में उन्होंने हिंदी साप्ताहिक पत्र जागरण का प्रकाशन आरंभ किया। उन्होंने लखनऊ में 1936 में अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ के सम्मेलन की अध्यक्षता की। उन्होंने मोहन दयाराम भवनानी की अजंता सिनेटोन कंपनी में कथा-लेखक की नौकरी भी की। 1934 में प्रदर्शित फिल्म मजदूर की कहानी उन्होंने ही लिखी थी।

1920-36 तक प्रेमचंद लगभग दस या अधिक कहानी प्रतिवर्ष लिखते रहे। मरणोपरांत उनकी कहानियाँ 'मानसरोवर' नाम से 8 खंडों में प्रकाशित हुईं। उपन्यास और कहानी के अतिरिक्त वैचारिक निबंध, संपादकीय, पत्र के रूप में भी उनका विपुल लेखन उपलब्ध है।

रचनाएँ

उपन्यास

सेवासदन–1918 ई. में प्रकाशित सेवासदन प्रेमचंद का हिंदी में प्रकाशित होने वाला पहला उपन्यास था। यह मूल रूप से उन्होंने 'बाजारे-हुस्न' नाम से पहले उर्दू में लिखा गया लेकिन इसका हिंदी रूप 'सेवासदन' पहले प्रकाशित हुआ। यह स्त्री समस्या पर केंद्रित उपन्यास है जिसमें दहेज-प्रथा, अनमेल विवाह, वेश्यावृत्ति, स्त्री-पराधीनता आदि समस्याओं के कारण और प्रभाव शामिल हैं। डॉ रामविलास शर्मा 'सेवासदन' की मुख्य समस्या भारतीय नारी की पराधीनता को मानते हैं।

प्रेमाश्रम (1922)–यह किसान जीवन पर उनका पहला उपन्यास है। इसका मसौदा भी पहले उर्दू में 'गोशाए-आफियत' नाम से तैयार हुआ था लेकिन इसे पहले हिंदी में प्रकाशित कराया। यह अवध के किसान आंदोलनों के दौर में लिखा गया।

रंगभूमि (1925)–इसमें प्रेमचंद एक अंधे भिखारी सूरदास को कथा का नायक बनाकर हिंदी कथा साहित्य में क्रांतिकारी बदलाव का सूत्रपात करते हैं।

निर्मला (1925)–यह अनमेल विवाह की समस्याओं को रेखांकित करने वाला उपन्यास है।

कायाकल्प (1926)

प्रतिज्ञा (1927)–यह विधवा जीवन तथा उसकी समस्याओं को रेखांकित करने वाला उपन्यास है।

गबन (1928)–उपन्यास की कथा रमानाथ तथा उसकी पत्नी जालपा के दांपत्य जीवन, रमानाथ द्वारा सरकारी दफ्तर में गबन, जालपा का उभरता व्यक्तित्त्व इत्यादि घटनाओं के इर्द-गिर्द घूमती है।

कर्मभूमि (1932)–यह अछूत समस्या, उनका मंदिर में प्रवेश तथा लगान इत्यादि की समस्या को उजागर करने वाला उपन्यास है।

गोदान (1936)–यह उनका अंतिम पूर्ण उपन्यास है, जो किसान-जीवन पर लिखी अद्वितीय रचना है। इस पुस्तक का अंग्रेजी अनुवाद 'द गिफ्ट ऑफ काओ' नाम से प्रकाशित हुआ।

मंगलसूत्र (अपूर्ण)–यह प्रेमचंद का अधूरा उपन्यास है जिसे उनके पुत्र अमृतराय ने पूरा किया। इसके प्रकाशन के संदर्भ में अमृतराय प्रेमचंद की जीवनी में लिखते हैं कि इसका–'प्रकाशन लेखक के देहान्त के अनेक वर्ष बाद 1948 में हुआ।'

कहानी

इनकी अधिकतर कहानियाँ में निम्न व मध्यम वर्ग का चित्रण है। डॉ. कमलकिशोर गोयनका ने प्रेमचंद की संपूर्ण हिंदी-उर्दू कहानी को प्रेमचंद कहानी रचनावली नाम से प्रकाशित कराया है। उनके अनुसार प्रेमचंद ने कुल 301 कहानियाँ लिखी हैं जिनमें 3 अभी अप्राप्य हैं। प्रेमचंद का पहला कहानी संग्रह सोजे वतन(राष्ट्र का विलाप) नाम से जून 1908 में प्रकाशित हुआ। इसी संग्रह की पहली कहानी दुनिया का सबसे अनमोल रतन को आम तौर पर उनकी पहली प्रकाशित कहानी माना जाता रहा है। डॉ. गोयनका के अनुसार कानपुर से निकलने वाली उर्दू मासिक पत्रिका जमाना के अप्रैल अंक में प्रकाशित सांसारिक प्रेम और देश-प्रेम (इश्के दुनिया और हुब्बे वतन) वास्तव में उनकी पहली प्रकाशित कहानी है।

उनकी कुछ कहानियों की सूची नीचे दी गयी है–

1. अन्धेर,
2. अनाथ लड़की,
3. अपनी करनी,
4. अमृत,
5. अलग्योझा,
6. आखिरी तोहफा,
7. आखिरी मंजिल,
8. आत्म–संगीत,
9. आत्माराम,
10. दो बैलों की कथा,
11. आल्हा,
12. इज्जत का खून,
13. इस्तीफा,
14. ईदगाह,
15. ईश्वरीय न्याय,
16. उद्धार,
17. एक आँच की कसर,
18. एक्ट्रेस,
19. कप्तान साहब,
20. कर्मों का फल,
21. क्रिकेट मैच,
22. कवच,
23. कातिल,
24. कोई दुख न हो तो बकरी खरीद ला,
25. कौशल,
26. खुद,
27. गैरत की कटार,
28. गुल्ली डण्डा,
29. घमण्ड का पुतला,
30. ज्योति,

31. जेल,
32. जुलूस,
33. झांकी,
34. ठाकुर का कुआं,
35. तेंतर,
36. त्रिया-चरित्र,
37. तांगेवाले की बड़,
38. तिरसूल,
39. दण्ड,
40. दुर्गा का मन्दिर,
41. देवी,
42. देवी –एक और कहानी,
43. दूसरी शादी,
44. दिल की रानी,
45. दो सखियाँ,
46. धिक्कार,
47 धिक्कार –एक और कहानी,
48. नेउर,
49. नेकी,
50. नबी का नीति-निर्वाह,
51. नरक का मार्ग,
52. नैराश्य,
53. नैराश्य लीला,
54. नशा,
55. नसीहतों का दफ्तर,
56. नाग-पूजा,
57. नादान दोस्त,
58. निर्वासन,
59. पंच परमेश्वर,
60. पत्नी से पति,

61. पुत्र-प्रेम,
62. पैपुजी,
63. प्रतिशोध,
64. प्रेम-सूत्र,
65. पर्वत-यात्रा,
66. प्रायश्चित,
67. परीक्षा,
68. पूस की रात,
69. बैंक का दिवाला,
70. बेटोंवाली विधवा,
71. बड़े घर की बेटी,
72. बड़े बाबू,
73. बड़े भाई साहब,
74. बन्द दरवाजा,
75. बाँका जमींदार,
76. बोहनी,
77. मैकू,
78. मन्त्र,
79. मन्दिर और मस्जिद,
80. मनावन,
81. मुबारक बीमारी,
82. ममता,
83. माँ,
84. माता का हृदय,
85. मिलाप,
86. मोटेराम जी शास्त्री,
87. स्वर्ग की देवी,
88. राजहठ,
89. राष्ट्र का सेवक,
90. लैला,

91. वफा का खजर,
92. वासना की कड़ियाँ,
93. विजय,
94. विश्वास,
95. शंखनाद,
96. शूद्र,
97. शराब की दुकान,
98. शान्ति,
99. शादी की वजह,
100. शान्ति,
101. स्त्री और पुरूष,
102. स्वर्ग की देवी,
103. स्वांग,
104. सभ्यता का रहस्य,
105. समर यात्रा,
106. समस्या,
107. सैलानी बन्दर,
108. स्वामिनी,
109. सिर्फ एक आवाज,
110. सोहाग का शव,
111. सौत,
112. होली की छुट्टी,
113. नमक का दरोगा,
114. गृह–दाह,
115. सवा सेर गेहूँ नमक का दरोगा,
116. दूध का दाम,
117. मुक्तिधन,
118. कफन।

कहानी संग्रह–

सप्तसरोज–1917 में इसके पहले संस्करण की भूमिका लिखी गई थी। सप्तसरोज में प्रेमचंद की सात कहानियाँ संकलित हैं। उदाहरणत: बड़े घर की

बेटी , सौत, सज्जनता का दण्ड, पंच परमेश्वर, नमक का दारोगा, उपदेश तथा परीक्षा आदि।

नवनिधि–यह प्रेमचंद की नौ कहानियों का संग्रह है। जैसे–राजा हरदौल, रानी सारन्धा, मर्यादा की वेदी, पाप का अग्निकुण्ड, जुगुनू की चमक, धोखा, अमावस्या की रात्रि, ममता, पछतावा आदि।

'प्रेमपूर्णिमा',

'प्रेम–पचीसी',

'प्रेम–प्रतिमा',

'प्रेम–द्वादशी',

समरयात्रा–इस संग्रह के अंतर्गत प्रेमचंद की 11 राजनीतिक कहानियों का संकलन किया गया है। उदाहरणस्वरूप–जेल, कानूनी कुमार, पत्नी से पति, लांछन, ठाकुर का कुआँ, शराब की दुकान, जुलूस, आहुति, मैकू, होली का उपहार, अनुभव, समर–यात्रा आदि।

मानसरोवर'– भाग एक व दो और 'कफन'। उनकी मृत्यु के बाद उनकी कहानियाँ 'मानसरोवर' शीर्षक से 8 भागों में प्रकाशित हुई।

नाटक

संग्राम (1923)–यह किसानों के मध्य व्याप्त कुरीतियाँ तथा किसानों की फिजूलखर्ची के कारण हुआ कर्ज और कर्ज न चुका पाने के कारण अपनी फसल निम्न दाम में बेचने जैसी समस्याओं पर विचार करने वाला नाटक है।

कर्बला (1924),

प्रेम की वेदी (1933)।

ये नाटक शिल्प और संवेदना के स्तर पर अच्छे हैं, लेकिन उनकी कहानियों और उपन्यासों ने इतनी ऊँचाई प्राप्त कर ली थी कि नाटक के क्षेत्र में प्रेमचंद को कोई खास सफलता नहीं मिली। ये नाटक वस्तुतः संवादात्मक उपन्यास ही बन गए हैं।

कथेतर साहित्य

प्रेमचंद– विविध प्रसंग–यह अमृतराय द्वारा संपादित प्रेमचंद की कथेतर रचनाओं का संग्रह है। इसके पहले खंड में प्रेमचंद के वैचारिक निबंध, संपादकीय आदि प्रकाशित हैं। इसके दूसरे खंड में प्रेमचंद के पत्रों का संग्रह है।

प्रेमचंद के विचार—तीन खंडों में प्रकाशित यह संग्रह भी प्रेमचंद के विभिन्न निबंधों, संपादकीय, टिप्पणियों आदि का संग्रह है।

साहित्य का उद्देश्य—इसी नाम से उनका एक निबंध-संकलन भी प्रकाशित हुआ है जिसमें 40 लेख हैं।

चिट्ठी-पत्री—यह प्रेमचंद के पत्रों का संग्रह है। दो खंडों में प्रकाशित इस पुस्तक के पहले खंड के संपादक अमृतराय और मदनगोपाल हैं। इस पुस्तक में प्रेमचंद के दयानारायन निगम, जयशंकर प्रसाद, जैनेंद्र आदि समकालीन लोगों से हुए पत्र-व्यवहार संग्रहित हैं। संकलन का दूसरा भाग अमृतराय ने संपादित किया है।

प्रेमचंद के कुछ निबंधों की सूची निम्नलिखित है-

पुराना जमाना नया जमाना,
स्वराज के फायदे,
कहानी कला (1,2,3),
कौमी भाषा के विषय में कुछ विचार,
हिंदी-उर्दू की एकता,
महाजनी सभ्यता,
उपन्यास,
जीवन में साहित्य का स्थान।

अनुवाद

प्रेमचंद एक सफल अनुवादक भी थे। उन्होंने दूसरी भाषाओं के जिन लेखकों को पढ़ा और जिनसे प्रभावित हुए, उनकी कृतियों का अनुवाद भी किया। उन्होंने 'टॉलस्टॉय की कहानियाँ' (1923), गाल्सवर्दी के तीन नाटकों का हड़ताल (1930), चाँदी की डिबिया (1931) और न्याय (1931) नाम से अनुवाद किया। उनका रतननाथ सरशार के उर्दू उपन्यास फसान-ए-आजाद का हिंदी अनुवाद आजाद कथा बहुत मशहूर हुआ।

विविध

बाल साहित्य– रामकथा, कुत्ते की कहानी, दुर्गादास
विचार-प्रेमचंद– विविध प्रसंग, प्रेमचंद के विचार (तीन खंडों में)
संपादन

प्रेमचन्द ने 'जागरण' नामक समाचार पत्र तथा 'हंस' नामक मासिक साहित्यिक पत्रिका का सम्पादन किया था। उन्होंने सरस्वती प्रेस भी चलाया था। वे उर्दू की पत्रिका 'जमाना' में नवाब राय के नाम से लिखते थे।

विशेषताएँ

बी.बी.सी. हिंदी में प्रकाशित विनोद वर्मा के साथ हुए साक्षात्कार रचना दृष्टि की प्रासंगिकता–मन्नू भंडारी में मन्नू भंडारी प्रेमचंद के विषय में बताती हैं कि–'साहित्य के प्रति और साहित्य के हर दृष्टि के प्रति यानी चाहे राजनीतिक, सामाजिक, पारिवारिक सभी को उन्होंने जिस तरह अपनी रचनाओं में समेटा और खास करके एक आम आदमी को, एक किसान को, एक आम दलित वर्ग के लोगों को वह अपने आप में एक उदाहरण था। साहित्य में दलित विमर्श की शुरुआत शायद प्रेमचंद की रचनाओं से हुई थी।'

विचारधारा

प्रेमचंद साहित्य की वैचारिक यात्रा आदर्श से यथार्थ की ओर उन्मुख है। सेवासदन के दौर में वे यथार्थवादी समस्याओं को चित्रित तो कर रहे थे लेकिन उसका एक आदर्श समाधान भी निकाल रहे थे। 1936 तक आते–आते महाजनी सभ्यता, गोदान और कफन जैसी रचनाएँ अधिक यथार्थपरक हो गईं, किंतु उसमें समाधान नहीं सुझाया गया। अपनी विचारधारा को प्रेमचंद ने आदर्शोन्मुख यथार्थवादी कहा है। इसके साथ ही प्रेमचंद स्वाधीनता संग्राम के सबसे बड़े कथाकार हैं। इस अर्थ में उन्हें राष्ट्रवादी भी कहा जा सकता है। प्रेमचंद मानवतावादी भी थे और मार्क्सवादी भी। प्रगतिवादी विचारधारा उन्हें प्रेमाश्रम के दौर से ही आकर्षित कर रही थी। प्रेमचंद ने 1936 में उन्होंने प्रगतिशील लेखक संघ के पहले सम्मेलन को सभापति के रूप में संबोधन किया था। उनका यही भाषण प्रगतिशील आंदोलन के घोषणा पत्र का आधार बना। इस अर्थ में प्रेमचंद निश्चित रूप से हिंदी के पहले प्रगतिशील लेखक कहे जा सकते हैं।

विरासत

प्रेमचंद की परंपरा को आगे बढ़ाने में कई रचनाकारों ने भूमिका अदा की है। उनके नामों का उल्लेख करते हुए रामविलास शर्मा प्रेमचंद और उनका युग में लिखते हैं कि–'प्रेमचंद की परंपरा को 'अलका', 'कुल्ली भाट', 'बिल्लेसुर

बकरिहा' के निराला ने अपनाया। उसे 'चकल्लस' और 'क्या-से-क्या' आदि कहानियों के लेखक पढ़ीस ने अपनाया। उस परंपरा की झलक नरेंद्र शर्मा, अमृतलाल नागर आदि की कहानियों और रेखाचित्रों में मिलती है।' बी.बी.सी. हिंदी में प्रकाशित लेख स्वस्थ साहित्य किसी की नकल नहीं करता में निर्मल वर्मा लिखते हैं कि—50-60 के दशक में रेणु, नागार्जुन और इनके बाद श्रीनाथ सिंह ने ग्रामीण परिवेश की कहानियाँ लिखी हैं, वो एक तरह से प्रेमचंद की परंपरा के तारतम्य में आती हैं।

प्रेमचंद संबंधी रचनाएँ

जीवनी

प्रेमचंद की तीन जीवनीपरक पुस्तकें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं—

प्रेमचंद घर में—1944 ई. में प्रकाशित यह पुस्तक प्रेमचंद की पत्नी शिवरानी देवी द्वारा लिखी गई है जिसमें उनके व्यक्तित्त्व के घरेलू पक्ष को उजागर किया है। 2005 ई. में प्रेमचंद के नाती प्रबोध कुमार ने इस पुस्तक तो दोबारा संशोधित करके प्रकाशित कराया।

प्रेमचंद कलम का सिपाही—1962 ई. में प्रकाशित प्रेमचंद के पुत्र अमृतराय द्वारा लिखी गई यह प्रेमचंद वृहद जीवनी है जिसे प्रामाणिक बनाने के लिए उन्होंने प्रेमचंद के पत्रों का बहुत उपयोग किया है।

कलम का मजदूर—प्रेमचन्द—1964 ई. में प्रकाशित इस कृति की भूमिका रामविलास शर्मा के अनुसार-'29 मई, 1962' में लिखी गई थी किंतु उसका प्रकाशन बाद में किया गया था। मदन गोपाल द्वारा रचित यह जीवनी मूलतः अंग्रेजी में लिखी गई थी जिसका बाद में हिंदी रूपांतरण भी प्रकाशित हुआ। यह प्रेमचंद के परिवार के बाहर के व्यक्ति द्वारा रचित जीवनी है, जो प्रेमचंद संबंधी तथ्यों का अधिक तटस्थ रूप से मूल्यांकन करती है।

आलोचनात्मक पुस्तकें

रामविलास शर्मा ने प्रेमचंद और उनका युग में प्रेमचंद के जीवन तथा उनके साहित्य का आलोचनात्मक मूल्यांकन किया है। प्रेमचंद पर हुए नए अध्ययनों में कमलकिशोर गोयनका और डॉ. धर्मवीर का नाम उल्लेखनीय है। कमलकिशोर गोयनका ने प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य (दो भाग) व 'प्रेमचंद

विश्वकोश' (दो भाग) का संपादन भी किया है। डॉ. धर्मवीर ने दलित दृष्टि से प्रेमचंद साहित्य का मूलयांकन करते हुए प्रेमचंद– सामंत का मुंशी व प्रेमचंद की नीली आँखें नाम से पुस्तकें लिखी हैं।

प्रेमचंद और सिनेमा

प्रेमचंद हिन्दी सिनेमा के सबसे अधिक लोकप्रिय साहित्यकारों में से हैं। सत्यजित राय ने उनकी दो कहानियों पर यादगार फिल्में बनाईं। 1977 में शतरंज के खिलाड़ी और 1981 में सद्गति। उनके देहांत के दो वर्षों बाद सुब्रमण्यम ने 1938 में सेवासदन उपन्यास पर फिल्म बनाई जिसमें सुब्बालक्ष्मी ने मुख्य भूमिका निभाई थी। 1977 में मृणाल सेन ने प्रेमचंद की कहानी कफन पर आधारित ओका ऊरी कथा नाम से एक तेलुगू फिल्म बनाई, जिसको सर्वश्रेष्ठ तेलुगू फिल्म का राष्ट्रीय पुरस्कार भी मिला। 1963 में गोदान और 1966 में गबन उपन्यास पर लोकप्रिय फिल्में बनीं। 1980 में उनके उपन्यास पर बना टीवी धारावाहिक निर्मला भी बहुत लोकप्रिय हुआ था।

स्मृतियाँ

लमही में प्रेमचंद की प्रतिमा

प्रेमचंद की स्मृति में भारतीय डाकतार विभाग की ओर से 30 जुलाई 1980 को उनकी जन्मशती के अवसर पर 30 पैसे मूल्य का एक डाक टिकट जारी किया गया। गोरखपुर के जिस स्कूल में वे शिक्षक थे, वहाँ प्रेमचंद साहित्य संस्थान की स्थापना की गई है। प्रेमचंद की 125वीं सालगिरह पर सरकार की ओर से घोषणा की गई कि वाराणसी से लगे इस गाँव में प्रेमचंद के नाम पर एक स्मारक तथा शोध एवं अध्ययन संस्थान बनाया जाएगा।

विवाद

प्रेमचंद के अध्येता कमलकिशोर गोयनका ने अपनी पुस्तक 'प्रेमचंद–अध्ययन की नई दिशाएं' में प्रेमचंद के जीवन पर कुछ आरोप लगाए हैं। जैसे–प्रेमचंद ने अपनी पहली पत्नी को बिना वजह छोड़ा और दूसरे विवाह के बाद भी उनके अन्य किसी महिला से संबंध रहे (जैसा कि शिवरानी देवी ने 'प्रेमचंद घर में' में उद्धृत किया है), प्रेमचंद ने 'जागरण विवाद' में विनोदशंकर व्यास के साथ धोखा किया, प्रेमचंद ने अपनी प्रेस के वरिष्ठ कर्मचारी प्रवासीलाल वर्मा के साथ

धोखाधड़ी की, प्रेमचंद की प्रेस में मजदूरों ने हड़ताल की, प्रेमचंद ने अपनी बेटी के बीमार होने पर झाड़-फूंक का सहारा लिया आदि।

'हंस' के संपादक प्रेमचंद तथा कन्हैयालाल मुंशी थे। परन्तु कालांतर में पाठकों ने 'मुंशी' तथा 'प्रेमचंद' को एक समझ लिया और 'प्रेमचंदश–'मुंशी प्रेमचंद' बन गए।

हिन्दी विकिस्रोत पर उपलब्ध प्रेमचन्द साहित्य,
सप्तसरोज,
गोदान,
प्रेमाश्रम,
सेवासदन,
कायाकल्प,
कर्मभूमि,
गबन,
समर यात्रा,
साहित्य का उद्देश्य,
नव-निधि,
पाँच फूल,
प्रेमचंद रचनावली (खण्ड 5),
निर्मला।

प्रेमचंद का स्वर्णिम युग

प्रेमचंद की उपन्यास-कला का यह स्वर्ण युग था। सन् 1931 के आरम्भ में गबन प्रकाशित हुआ था। 16 अप्रैल, 1931 को प्रेमचंद ने अपनी एक और महान् रचना, कर्मभूमि शुरू की। यह अगस्त, 1932 में प्रकाशित हुई। प्रेमचंद के पत्रों के अनुसार सन् 1932 में ही वह अपना अन्तिम महान् उपन्यास, गोदान लिखने में लग गये थे, यद्यपि 'हंस' और 'जागरण' से सम्बंधित अनेक कठिनाइयों के कारण इसका प्रकाशन जून, 1936 में ही सम्भव हो सका। अपनी अन्तिम बीमारी के दिनों में उन्होंने एक और उपन्यास, 'मंगलसूत्र', लिखना शुरू किया था, किन्तु अकाल मृत्यु के कारण यह अपूर्ण रह गया। 'गबन', 'कर्मभूमि' और 'गोदान'–उपन्यासत्रयी पर विश्व के किसी भी कृतिकार को गर्व हो सकता है। 'कर्मभूमि' अपनी क्रांतिकारी चेतना के कारण विशेष महत्त्वपूर्ण है। लाहौर

कांग्रेस के अधिवेशन में अध्यक्ष-पद से भाषण देते हुए जवाहरलाल नेहरू ने घोषित किया था। 'मैं गणतंत्रवादी और समाजवादी हूँ।' कर्मभूमि इस अशान्त काल की प्रतिध्वनियों से भरा हुआ उपन्यास है। गोर्की के उपन्यास, 'माँ' के समान ही यह उपन्यास भी क्रान्ति की कला पर लगभग एक प्रबंध-ग्रन्थ है। यह उपन्यास अद्भुत पात्रों की एक सम्पूर्ण शृंखला प्रस्तुत करता है। अमर कांत, समरकान्त, सकीना, सुखदा, पठानिन, मुन्नी। अमरकान्त और समरकान्त पाठकों को पिता और पुत्र, नेहरू-द्वय का स्मरण दिलाते हैं। मुन्नी, पठानिन, सकीना और लाला समरकान्त सभी की परिणति घटनाओं द्वारा होती है।

रूढ़िवाद का विरोध

जिस समय मुंशी प्रेमचन्द का जन्म हुआ वह युग सामाजिक-धार्मिक रूढ़िवाद से भरा हुआ था। इस रूढ़िवाद से स्वयं प्रेमचन्द भी प्रभावित हुए। तब प्रेमचन्द ने कथा-साहित्य का सफर शुरू किया, और अनेकों प्रकार के रूढ़िवाद से ग्रस्त समाज को यथा शक्ति कला के शस्य से मुक्त कराने का संकल्प लिया। अपनी कहानी के बालक के माध्यम से यह घोषणा करते हुए कहा कि 'मैं निरर्थक रूढ़ियों और व्यर्थ के बन्धनों का दास नहीं हूँ।'

साहित्य के भावों की जो उच्चता, भाषा की प्रौढ़ता और स्पष्टता, सुन्दरता की जो साधना होती है, वह हमें सिनेमा में नहीं मिलती।

—प्रेमचंद

समाज में व्याप्त रुढ़ियाँ

सामाजिक रुढियों के संदर्भ में प्रेमचन्द ने वैवाहिक रुढियों जैसे बेमेल विवाह, बहुविवाह, अभिभावकों द्वारा आयोजित विवाह, पुनर्विवाह, दहेज प्रथा, विधवा विवाह, पर्दाप्रथा, बाल विवाह, वृद्धविवाह, पतिव्रत धर्म तथा वारंगना वृद्धि के संबंध में बड़ी संवेदना और सचेतना के साथ लिखा है। तत्कालीन समाज में यह बात घर कर गई थी कि तीन पुत्रों के बाद जन्म लेने वाली पुत्री अपशकुन होती है। उन्होंने इस रूढ़ि का अपनी कहानी तेंतर के माध्यम से कड़ा विरोध किया है। होली के अवसर पर पाये जाने वाली रूढ़ि की निन्दा करते हुए वह कहते हैं कि अगर पीने-पिलाने के बावजूद होली एक पवित्र त्योहार है तो चोरी और रिश्वतखोरी को भी पवित्र मानना चाहिए। उनके अनुसार त्योहारों का मतलब है अपने भाइयों से प्रेम और सहानुभूति करना ही है। आर्थिक जटिलताओं

के बावजूद आतिथ्य–सत्कार को मर्यादा एवं प्रतिष्ठा का प्रश्न मान लेने जैसे रूढ़ि की भी उन्होंने निन्दा की है।

प्रेमचंद उनका साहित्यिक नाम था और बहुत वर्षों बाद उन्होंने यह नाम अपनाया था। उनका वास्तविक नाम 'धनपत राय' था। जब उन्होंने सरकारी सेवा करते हुए कहानी लिखना आरम्भ किया, तब उन्होंने नवाब राय नाम अपनाया। बहुत से मित्र उन्हें जीवन–पर्यन्त 'नवाब' के नाम से ही सम्बोधित करते रहे।

धार्मिक रुढ़ियाँ

प्रेमचन्द महान् साहित्यकार के साथ–साथ एक महान् दार्शनिक भी थे। मुंशीजी की दार्शनिक निगाहों ने धर्म की आड़ में लोगों का शोषण करने वालों को अच्छी तरह भाँप लिया था। वह उनके बाह्य विधि–विधानों एवं आंतरिक अशुद्धियों को पहचान चुके थे। इन सब को परख कर प्रेमचन्द ने प्रण ले लिया था कि वह धार्मिक रूढ़िवादिता को खत्म करने का प्रयास करेंगे।

प्रेमचंद मुंशी कैसे बने

सुप्रसिद्ध साहित्यकारों के मूल नाम के साथ कभी–कभी कुछ उपनाम या विशेषण ऐसे घुल–मिल जाते हैं कि साहित्यकार का मूल नाम तो पीछे रह जाता है और यह उपनाम या विशेषण इतने प्रसिद्ध हो जाते हैं कि उनके बिना कवि या रचनाकार का नाम अधूरा–सा लगने लगता है। साथ ही मूल नाम अपनी पहचान ही खोने लगता है। भारतीय जनमानस की संवेदना में बसे उपन्यास सम्राट 'प्रेमचंद' जी भी इस पारंपरिक तथ्य से अछूते नहीं रह सके। उनका नाम यदि मात्र प्रेमचंद लिया जाय तो अधूरा सा प्रतीत होता है। प्रेमचंद जी के नाम के साथ 'मुंशी' कब और कैसे जुड़ गया? इस विषय में अधिकांश लोग यही मान लेते हैं कि प्रारम्भ में प्रेमचंद अध्यापक रहे। अध्यापकों को प्राय: उस समय मुंशी जी कहा जाता था। इसके अतिरिक्त कायस्थों के नाम के पहले सम्मान स्वरूप 'मुंशी' शब्द लगाने की परम्परा रही है। संभवत: प्रेमचंद जी के नाम के साथ मुंशी शब्द जुड़कर रूढ़ हो गया। इस जिज्ञासा की पूर्ति हेतु प्रेमचंद जी के सुपुत्र एवं सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्री अमृत राय जी के अनुसार प्रेमचंद जी ने अपने नाम के आगे 'मुंशी' शब्द का प्रयोग स्वयं कभी नहीं किया। उनका यह भी मानना है कि मुंशी शब्द सम्मान सूचक है, जिसे प्रेमचंद के प्रशंसकों ने कभी लगा दिया होगा। यह तथ्य अनुमान पर आधारित है। यह बात सही है कि मुंशी शब्द सम्मान

सूचक है। यह भी सच है कि कायस्थों के नाम के आगे मुंशी लगाने की परम्परा रही है तथा अध्यापकों को भी 'मुंशी जी' कहा जाता था।

यह मेरी मातृभूमि है–प्रेमचंद

आज पूरे 60 वर्ष के बाद मुझे मातृभूमि –प्यारी मातृभूमि के दर्शन प्राप्त हुए हैं। जिस समय मैं अपने प्यारे देश से विदा हुआ था और भाग्य मुझे पश्चिम की ओर ले चला था उस समय मैं पूर्ण युवा था। मेरी नसों में नवीन रक्त संचारित हो रहा था। हृदय उमंगों और बड़ी-बड़ी आशाओं से भरा हुआ था। मुझे अपने प्यारे भारतवर्ष से किसी अत्याचारी के अत्याचार या न्याय के बलवान हाथों ने नहीं जुदा किया था। अत्याचारी के अत्याचार और कानून की कठोरताएँ मुझसे जो चाहे सो करा सकती हैं मगर मेरी प्यारी मातृभूमि मुझसे नहीं छुड़ा सकतीं। वे मेरी उच्च अभिलाषाएँ और बड़े-बड़े ऊँचे विचार ही थे जिन्होंने मुझे देश-निकाला दिया था।

मैंने अमेरिका जा कर वहाँ खूब व्यापार किया और व्यापार से धन भी खूब पैदा किया तथा धन से आनंद भी खूब मनमाने लूटे। सौभाग्य से पत्नी भी ऐसी मिली जो सौंदर्य में अपना सानी आप ही थी। उसकी लावण्यता और सुन्दरता की ख्याति तमाम अमेरिका में फैली। उसके हृदय में ऐसे विचार की गुंजाइश भी न थी जिसका सम्बन्ध मुझसे न हो मैं उस पर तन-मन से आसक्त था और वह मेरी सर्वस्व थी। मेरे पाँच पुत्र थे जो सुन्दर हृष्ट-पुष्ट और ईमानदार थे। उन्होंने व्यापार को और भी चमका दिया था। मेरे भोले-भाले नन्हे-नन्हे पौत्र गोद में बैठे हुए थे, जब कि मैंने प्यारी मातृभूमि के अंतिम दर्शन करने को अपने पैर उठाये। मैंने अनंत धन प्रियतमा पत्नी सपूत बेटे और प्यारे-प्यारे जिगर के टुकड़े नन्हे-नन्हे बच्चे आदि अमूल्य पदार्थ केवल इसीलिए परित्याग कर दिया कि मैं प्यारी भारत-जननी का अंतिम दर्शन कर लूँ। मैं बहुत बूढ़ा हो गया हूँ, दस वर्ष के बाद पूरे सौ वर्ष का हो जाऊँगा। अब मेरे हृदय में केवल एक ही अभिलाषा बाकी है कि मैं अपनी मातृभूमि का रजकण बनूँ।

यह अभिलाषा कुछ आज ही मेरे मन में उत्पन्न नहीं हुई बल्कि उस समय भी थी जब मेरी प्यारी पत्नी अपनी मधुर बातों और कोमल कटाक्षों से मेरे हृदय को प्रफुल्लित किया करती थी। और जब कि मेरे युवा पुत्र प्रातःकाल आ कर अपने वृद्ध पिता को सभक्ति प्रणाम करते उस समय भी मेरे हृदय में एक काँटा-सा खटखता रहता था कि मैं अपनी मातृभूमि से अलग हूँ। यह देश मेरा देश नहीं है और मैं इस देश का नहीं हूँ।

मेरे पास धन था, पत्नी थी, लड़के थे और जायदाद थी, मगर न मालूम क्यों मुझे रह-रह कर मातृभूमि के टूटे झोंपड़े चार-छै बीघा मौरुसी जमीन और बालपन के लँगोटिया यारों की याद अक्सर सता जाया करती। प्रायः अपार प्रसन्नता और आनंदोत्सवों के अवसर पर भी यह विचार हृदय में चुटकी लिया करता था कि यदि मैं अपने देश में होता।

जिस समय मैं बम्बई में जहाज से उतरा मैंने पहिले काले कोट-पतलून पहने टूटी-फूटी अँग्रेजी बोलते हुए मल्लाह देखे। फिर अँग्रेजी दुकान ट्राम और मोटरगाड़ियाँ दीख पड़ीं। इसके बाद रबरटायर वाली गाड़ियों की ओर मुँह में चुरट दाबे हुए आदमियों से मुठभेड़ हुई। फिर रेल का विक्टोरिया टर्मिनस स्टेशन देखा। बाद में मैं रेल में सवार होकर हरी-भरी पहाड़ियों के मध्य में स्थित अपने गाँव को चल दिया। उस समय मेरी आँखों में आँसू भर आये और मैं खूब रोया क्योंकि यह मेरा देश न था। यह वह देश न था जिसके दर्शनों की इच्छा सदा मेरे हृदय में लहराया करती थी। यह तो कोई और देश था। यह अमेरिका या इंग्लैंड था मगर प्यारा भारत नहीं था।

रेलगाड़ी जंगलों, पहाड़ों, नदियों और मैदानों को पार करती हुई मेरे प्यारे गाँव के निकट पहुँची जो किसी समय में फूल, पत्तों और फलों की बहुतायत तथा नदी-नालों की अधिकता से स्वर्ग की होड़ कर रहा था। मैं उस गाड़ी से उतरा तो मेरा हृदय बाँसों उछल रहा था –अब अपना प्यारा घर देखूँगा –अपने बालपन के प्यारे साथियों से मिलूँगा। मैं इस समय बिलकुल भूल गया था कि मैं 90 वर्ष का बूढ़ा हूँ। ज्यों-ज्यों मैं गाँव के निकट आता था, मेरे पग शीघ्र-शीघ्र उठते थे और हृदय में अकथनीय आनंद का स्रोत उमड़ रहा था। प्रत्येक वस्तु पर आँखें फाड़-फाड़ कर दृष्टि डालता। अहा ! यह वही नाला है जिसमें हम रोज घोड़े नहलाते थे और स्वयं भी डुबकियाँ लगाते थे किंतु अब उसके दोनों ओर काँटेदार तार लगे हुए थे। सामने एक बँगला था जिसमें दो अँग्रेज बंदूकें लिये इधर-उधर ताक रहे थे। नाले में नहाने की सख्त मनाही थी।

गाँव में गया और निगाहें बालपन के साथियों को खोजने लगीं किन्तु शोक! वे सब के सब मृत्यु के ग्रास हो चुके थे। मेरा घर-मेरा टूटा-फूटा झोंपड़ा –जिसकी गोद में मैं बरसों खेला था, जहाँ बचपन और बेफिक्री के आनंद लूटे थे और जिसका चित्र अभी तक मेरी आँखों में फिर रहा था, वही मेरा प्यारा घर अब मिट्टी का ढेर हो गया था।

यह स्थान गैर-आबाद न था। सैकड़ों आदमी चलते-चलते दृष्टि आते थे जो अदालत-कचहरी और थाना-पुलिस की बातें कर रहे थे उनके मुखों से चिंता निर्जीवता और उदासी प्रदर्शित होती थी और वे अब सांसारिक चिंताओं से व्यथित मालूम होते थे। मेरे साथियों के समान हृष्ट-पुष्ट बलवान लाल चेहरे वाले नवयुवक कहीं न देख पड़ते थे। उस अखाड़े के स्थान पर जिसकी जड़ मेरे हाथों ने डाली थी अब एक टूटा-फूटा स्कूल था। उसमें दुर्बल तथा कांतिहीन रोगियों की-सी सूरतवाले बालक फटे कपड़े पहिने बैठे ऊँघ रहे थे। उनको देख कर सहसा मेरे मुख से निकल पड़ा कि नहीं-नहीं यह मेरा प्यारा देश नहीं है। यह देश देखने मैं इतनी दूर से नहीं आया हूँ –यह मेरा प्यारा भारतवर्ष नहीं है।

बरगद के पेड़ की ओर मैं दौड़ा जिसकी सुहावनी छाया में मैंने बचपन के आनंद उड़ाये थे, जो हमारे छुटपन का क्रीड़ास्थल और युवावस्था का सुखप्रद वासस्थान था। आह ! इस प्यारे बरगद को देखते ही हृदय पर एक बड़ा आघात पहुँचा और दिल में महान् शोक उत्पन्न हुआ। उसे देख कर ऐसी-ऐसी दु:खदायक तथा हृदय-विदारक स्मृतियाँ ताजी हो गयीं कि घंटों पृथ्वी पर बैठे-बैठे मैं आँसू बहाता रहा। हाँ! यही बरगद है जिसकी डालों पर चढ़ कर मैं फुनगियों तक पहुँचता था, जिसकी जटाएँ हमारा झूला थीं और जिसके फल हमें सारे संसार की मिठाइयों से अधिक स्वादिष्ट मालूम होते थे। मेरे गले में बाँहें डाल कर खेलने वाले लँगोटिया यार जो कभी रूठते थे, कभी मनाते थे, कहाँ गये, हाय! बिना घरबार का मुसाफिर अब क्या अकेला ही हूँ? क्या मेरा कोई भी साथी नहीं? इस बरगद के निकट अब थाना था और बरगद के नीचे कोई लाल साफा बाँधे बैठा था। उसके आसपास दस-बीस लाल पगड़ी वाले करबद्ध खड़े थे! वहाँ फटे-पुराने कपड़े पहने दुर्भिक्षग्रस्त पुरुष जिस पर अभी चाबुकों की बौछार हुई थी, पड़ा सिसक रहा था। मुझे ध्यान आया कि यह मेरा प्यारा देश नहीं है, कोई और देश है। यह योरोप है, अमेरिका है, मगर मेरी प्यारी मातृभूमि नहीं है –कदापि नहीं है।

इधर से निराश हो कर मैं उस चौपाल की ओर चला जहाँ शाम के वक्त पिता जी गाँव के अन्य बुजुर्गों के साथ हुक्का पीते और हँसी-कहकहे उड़ाते थे। हम भी उस टाट के बिछौने पर कलाबाजियाँ खाया करते थे। कभी-कभी वहाँ पंचायत भी बैठती थी, जिसके सरपंच सदा पिता जी ही हुआ करते थे। इसी चौपाल के पास एक गोशाला थी, जहाँ गाँव भर की गायें रखी जाती थीं और

बछड़ों के साथ हम यहीं किलोलें किया करते थे। शोक! कि अब उस चौपाल का पता तक न था। वहाँ अब गाँवों में टीका लगाने की चौकी और डाकखाना था।

उस समय इसी चौपाल से लगा एक कोल्हवाड़ा था, जहाँ जाड़े के दिनों में ईख पेरी जाती थी और गुड़ की सुगंध से मस्तिष्क पूर्ण हो जाता था। हम और हमारे साथी वहाँ गंडरियों के लिए बैठे रहते और गंडरियाँ करने वाले मजदूरों के हस्तलाघव को देख कर आश्चर्य किया करते थे। वहाँ हजारों बार मैंने कच्चा रस और पक्का दूध मिला कर पिया था और वहाँ आसपास के घरों की स्त्रियाँ और बालक अपने-अपने घड़े ले कर आते थे और उनमें रस भर कर ले जाते थे। शोक है कि वे कोल्हू अब तक ज्यों के त्यों खड़े थे किन्तु कोल्हवाड़े की जगह पर अब एक सन लपेटने वाली मशीन लगी थी और उसके सामने एक तम्बोली और सिगरेट वाले की दूकान थी। इन हृदय-विदारक दृश्यों को देखकर मैंने दुखित हृदय से एक आदमी से जो देखने में सभ्य मालूम होता था पूछा —महाशय, मैं एक परदेशी यात्री हूँ। रात भर लेटे रहने की मुझे आज्ञा दीजिएगा इस आदमी ने मुझे सिर से पैर तक गहरी दृष्टि से देखा और कहने लगा कि आगे जाओ यहाँ जगह नहीं है। मैं आगे गया और वहाँ से भी यही उत्तर मिला—आगे जाओ। पाँचवीं बार एक सज्जन से स्थान माँगने पर उन्होंने एक मुट्ठी चने मेरे हाथ पर रख दिये। चने मेरे हाथ से छूट पड़े और नेत्रों से अविरल अश्रु-धारा बहने लगी। मुख से सहसा निकल पड़ा कि हाय! यह मेरा देश नहीं है यह कोई और देश है। यह हमारा अतिथि-सत्कारी प्यारा भारत नहीं है —कदापि नहीं।

मैंने एक सिगरेट की डिबिया खरीदी और एक सुनसान जगह पर बैठकर सिगरेट पीते हुए पूर्व समय की याद करने लगा कि अचानक मुझे धर्मशाला का स्मरण हो आया जो मेरे विदेश जाते समय बन रही थी मैं उस ओर लपका कि रात किसी प्रकार वहीं काट लूँ मगर शोक! शोक!! महान् शोक!!! धर्मशाला ज्यों की त्यों खड़ी थी किंतु उसमें गरीब यात्रियों के टिकने के लिए स्थान न था। मदिरा दुराचार और द्यूत ने उसे अपना घर बना रखा था। यह दशा देख कर विवशतः मेरे हृदय से एक सर्द आह निकल पड़ी और मैं जोर से चिल्ला उठा कि नहीं, नहीं, नहीं और हजार बार नहीं है —यह मेरा प्यारा भारत नहीं है। यह कोई और देश है। यह योरोप है, अमेरिका है, मगर भारत कदापि नहीं है।

अँधेरी रात थी। गीदड़ और कुत्ते अपने-अपने कर्कश स्वर में उच्चारण कर रहे थे। मैं अपना दुखित हृदय ले कर उसी नाले के किनारे जा कर बैठ गया और सोचने लगा –अब क्या करूँ! फिर अपने पुत्रों के पास लौट जाऊँ और अपना यह शरीर अमेरिका की मिट्टी में मिलाऊँ। अब तक मेरी मातृभूमि थी। मैं विदेश में जरूर था किंतु मुझे अपने प्यारे देश की याद बनी थी, पर अब मैं देश-विहीन हूँ। मेरा कोई देश नहीं है। इसी सोच-विचार में मैं बहुत देर तक घुटनों पर सिर रखे मौन रहा। रात्रि नेत्रों में ही व्यतीत की। घंटे वाले ने तीन बजाये और किसी के गाने का शब्द कानों में आया। हृदय गद्गद हो गया कि यह तो देश का ही राग है यह तो मातृभूमि का ही स्वर है। मैं तुरंत उठ खड़ा हुआ और क्या देखता हूँ कि 15-20 वृद्धा स्त्रियाँ सफेद धोतियाँ पहिने हाथों में लोटे लिये स्नान को जा रही हैं और गाती जाती हैं–

हमारे प्रभु अवगुन चित्त न धरो...

मैं इस गीत को सुन कर तन्मय हो ही रहा था कि इतने में मुझे बहुत से आदमियों की बोलचाल सुन पड़ी। उनमें से कुछ लोग हाथों में पीतल के कमंडल लिये हुए शिव-शिव, हर-हर गंगे-गंगे, नारायण-नारायण आदि शब्द बोलते हुए चले जाते थे। आनंददायक और प्रभावोत्पादक राग से मेरे हृदय पर जो प्रभाव हुआ उसका वर्णन करना कठिन है।

मैंने अमेरिका की चंचल से चंचल और प्रसन्न से प्रसन्न चित्तवाली लावण्यवती स्त्रियों का आलाप सुना था। सहर्षों बार उनकी जिह्वा से प्रेम और प्यार के शब्द सुने थे। हृदयाकर्षक वचनों का आनंद उठाया था। मैंने सुरीले पक्षियों का चहचहाना भी सुना था, किंतु जो आनंद जो मजा और जो सुख मुझे इस राग में आया, वह मुझे जीवन में कभी प्राप्त नहीं हुआ था। मैंने खुद गुनगुना कर गायाः

हमारे प्रभु अवगुन चित न धरो...

मेरे हृदय में फिर उत्साह आया कि ये तो मेरे प्यारे देश की ही बातें हैं। आनंदातिरेक से मेरा हृदय आनंदमय हो गया। मैं भी इन आदमियों के साथ हो लिया और 6 मील तक पहाड़ी मार्ग पार करके उसी नदी के किनारे पहुँचा, जिसका नाम पतित-पावनी है, जिसकी लहरों में डुबकी लगाना और जिसकी गोद में मरना प्रत्येक हिंदू अपना परम सौभाग्य समझता है। पतित-पावनी भागीरथी गंगा मेरे प्यारे गाँव से छै-सात मील पर बहती थी। किसी समय में घोड़े पर चढ़

कर गंगा माता के दर्शनों की लालसा मेरे हृदय में सदा रहती थी। यहाँ मैंने हजारों मनुष्यों को इस ठंडे पानी में डुबकी लगाते हुए देखा। कुछ लोग बालू पर बैठे गायत्री-मंत्र जप रहे थे। कुछ लोग हवन करने में संलग्न थे। कुछ माथे पर तिलक लगा रहे थे और कुछ लोग सस्वर वेदमंत्र पढ़ रहे थे। मेरा हृदय फिर उत्साहित हुआ और मैं जोर से कह उठा—हाँ हाँ यही मेरा प्यारा देश है, यही मेरी पवित्र मातृभूमि है, यही मेरा सर्वश्रेष्ठ भारत है और इसी के दर्शनों की मेरी उत्कट इच्छा थी तथा इसी की पवित्र धूलि के कण बनने की मेरी प्रबल अभिलाषा है।

मैं विशेष आनंद में मग्न था। मैंने अपना पुराना कोट और पतलून उतार कर फेंक दिया और गंगा माता की गोद में जा गिरा जैसे कोई भोलाभाला बालक दिन भर निर्दय लोगों के साथ रहने के बाद संध्या को अपनी प्यारी माता की गोद में दौड़ कर चला आये और उसकी छाती से चिपट जाय। हाँ अब मैं अपने देश में हूँ। यह मेरी प्यारी मातृभूमि है। ये लोग मेरे भाई हैं और गंगा मेरी माता है।

मैंने ठीक गंगा के किनारे एक छोटी-सी कुटी बनवा ली है। अब मुझे सिवा राम-नाम जपने के और कोई काम नहीं है। मैं नित्य प्रातः-सायं गंगा-स्नान करता हूँ और मेरी प्रबल इच्छा है कि इसी स्थान पर मेरे प्राण निकलें और मेरी अस्थियाँ गंगा माता की लहरों की भेंट हों।

मेरी स्त्री और मेरे पुत्र बार-बार बुलाते हैं, मगर अब मैं यह गंगा माता का तट और अपना प्यारा देश छोड़ कर वहाँ नहीं जा सकता। अपनी मिट्टी गंगा जी को ही सौंपूँगा। अब संसार की कोई आकांक्षा मुझे इस स्थान से नहीं हटा सकती क्योंकि यह मेरा प्यारा देश और यही प्यारी मातृभूमि है। बस मेरी उत्कट इच्छा यही है कि मैं अपनी प्यारी मातृभूमि में ही अपने प्राण विसर्जन करूँ।

9

प्रतापनारायण मिश्र

प्रतापनारायण मिश्र भारतेन्दु मण्डल, के प्रमुख लेखक, कवि और पत्रकार थे। वह भारतेंदु निर्मित एवं प्रेरित हिंदी लेखकों की सेना के महारथी, उनके आदर्शो के अनुगामी और आधुनिक हिंदी भाषा तथा साहित्य के निर्माणक्रम में उनके सहयोगी थे। भारतेंदु पर उनकी अनन्य श्रद्धा थी, वह अपने आप को उनका शिष्य कहते तथा देवता की भाँति उनका स्मरण करते थे। भारतेंदु जैसी रचनाशैली, विषयवस्तु और भाषागत विशेषताओं के कारण मिश्र जी 'प्रति-भारतेंदु' और 'द्वितीय हरिश्चंद्र' कहे जाने लगे थे।

जीवनी

मिश्र जी उत्तर प्रदेश के कानपुर जिले के अंतर्गत बैजे गाँव बेथर के निवासी, थे कात्यायन गोत्रीय, कान्यकुब्ज ब्राह्मण पं. संकटा प्रसाद मिश्र के पुत्र थे। बड़े होने पर वह पिता के साथ कानपुर में रहने लगे और अक्षरारंभ के पश्चात उनसे ही ज्योतिष पढ़ने लगे। किंतु उधर रुचि न होने से पिता ने उन्हें अंग्रेजी स्कूल में भरती करा दिया। तब से कई स्कूलों का चक्कर लगाने पर भी वह पिता की लालसा के विपरीत पढ़ाई-लिखाई से विरत ही रहे और पिता की मृत्यु के पश्चात् 18-19 वर्ष की अवस्था में उन्होंने स्कूली शिक्षा से अपना पिंड छुड़ा लिया।

इस प्रकार मिश्रजी की शिक्षा अधूरी ही रह गई। किंतु उन्होंने प्रतिभा और स्वाध्याय के बल से अपनी योग्यता पर्याप्त बढ़ा ली थी। वह हिंदी, उर्दू और

बँगला तो अच्छी जानते ही थे, फारसी, अँगरेजी और संस्कृत में भी उनकी अच्छी गति थी।

मिश्र जी छात्रावस्था से ही 'कविवचनसुधा' के गद्य-पद्य-मय लेखों का नियमित पाठ करते थे, जिससे हिंदी के प्रति उनका अनुराग उत्पन्न हुआ। लावनी गायकों की टोली में आशु रचना करने तथा ललितजी की रामलीला में अभिनय करते हुए उनसे काव्यरचना की शिक्षा ग्रहण करने से वह स्वयं मौलिक रचना का अभ्यास करने लगे। इसी बीच वह भारतेंदु के संपर्क में आए। उनका आशीर्वाद तथा प्रोत्साहन पाकर वह हिंदी गद्य तथा पद्य रचना करने लगे। 1882 के आसपास 'प्रेमपुष्पावली' प्रकाशित हुई और भारतेंदु जी ने उसकी प्रशंसा की तो उनका उत्साह बहुत बढ़ गया।

15 मार्च 1883 को, होली के दिन, अपने कई मित्रों के सहयोग से मिश्रजी ने 'ब्राह्मण' नामक मासिक पत्र निकाला। यह अपने रूप-रंग में ही नहीं, विषय और भाषाशैली की दृष्टि से भी भारतेंदु युग का विलक्षण पत्र था। सजीवता, सादगी, बाँकपन और फक्कड़पन के कारण भारतेंदुकालीन साहित्यकारों में जो स्थान मिश्रजी का था, वही तत्कालीन हिंदी पत्रकारिता में इस पत्र का था, किंतु यह कभी नियत समय पर नहीं निकलता था। दो-तीन बार तो इसके बंद होने तक की नौबत आ गई थी। इसका कारण मिश्रजी का व्याधिमंदिर शरीर और अर्थाभाव था। रामदीन सिंह आदि की सहायता से यह येनकेन प्रकारेण संपादक के जीवनकाल तक निकलता रहा। उनकी मृत्यु के बाद भी रामदीन सिंह के संपादकत्व में कई वर्षों तक निकला, परंतु पहले जैसा आकर्षण उसमें न रहा।

1889 में मिश्र जी 25 रु. मासिक पर 'हिंदोस्थान' के सहायक संपादक होकर कालाकाँकर आए। उन दिनों पं. मदनमोहन मालवीय उसके संपादक थे। यहाँ बालमुकुंद गुप्त ने मिश्रजी से हिंदी सीखी। मालवीय जी के हटने पर मिश्रजी अपनी स्वच्छंद प्रवृत्ति के कारण वहाँ न टिक सके। कालाकाँकर से लौटने के बाद वह प्राय: रुग्ण रहने लगे। फिर भी समाजिक, राजनीतिक, धार्मिक कार्यो में पूर्ववत रुचि लेते रहे और 'ब्राह्मण' के लिए लेख आदि प्रस्तुत करते रहे। 1891 में उन्होंने कानपुर में 'रसिक समाज' की स्थापना की। कांग्रेस के कार्यक्रमों के अतिरिक्त भारतधर्ममंडल, धर्मसभा, गोरक्षिणी सभा और अन्य सभा-समितियों के सक्रिय कार्यकर्ता और सहायक बने रहे। कानपुर की कई नाट्य सभाओं और गोरक्षिणी समितियों की स्थापना उन्हीं के प्रयत्नों से हुई थी।

मिश्रजी जितने परिहासप्रिय और जिंदादिल व्यक्ति थे उतने ही अनियमित, अनियंत्रित, लापरवाह और काहिल थे। रोग के कारण उनका शरीर युवावस्था में ही जर्जर हो गया था। तो भी स्वास्थ्यरक्षा के नियमों का वह सदा उल्लंघन करते रहे। इससे उनका स्वास्थ्य दिनों-दिन गिरता गया। 1892 के अंत में वह गंभीर रूप से बीमार पड़े और लगातार डेढ़ वर्षो तक बीमार ही रहे। अंत में 38 वर्ष की आयु में 6 जुलाई 1894 को दस बजे रात में भारतेंदु मंडल के इस नक्षत्र का अवसान हो गया।

रचनाएँ

प्रतापनारायण मिश्र भारतेंदु के विचारों और आदर्शों के महान प्रचारक और व्याख्याता थे। वह प्रेम को परमधर्म मानते थे। हिंदी, हिंदू, हिदुस्तान उनका प्रसिद्ध नारा था। समाजसुधार को दृष्टि में रखकर उन्होंने सैकड़ों लेख लिखे हैं। बालकृष्ण भट्ट की तरह वह आधुनिक हिंदी निबंधों को परंपरा को पुष्ट कर हिंदी साहित्य के सभी अंगों की पूर्णता के लिये रचनारत रहे। एक सफल व्यंग्यकार और हास्यपूर्ण गद्य-पद्य-रचनाकार के रूप में हिंदी साहित्य में उनका विशिष्ट स्थान है। मिश्र जी की मुख्य कृतियाँ निम्नांकित हैं –

(क) **नाटक–** गो संकट, भारत दुर्दशा, कलिकौतुक, कलिप्रभाव, हठी हम्मीर। जुआरी-खुआरी (प्रहसन)। संगीत शाकुंतल (कालिदास के 'अभिज्ञानशाकुंतम्' का अनुवाद)।

(ख) निबंध संग्रह निबंध नवनीत, प्रताप पीयूष, प्रताप समीक्षा

(ग) **अनूदित गद्य कृतियाँ–** राजसिंह, अमरसिंह, इन्दिरा, राधारानी, युगलांगुरीय, चरिताष्टक, पंचामृत, नीतिरत्नमाला, बात

(घ) **कविता–**प्रेम पुष्पावली, मन की लहर, ब्रैडला स्वागत, दंगल खंड, तृप्यन्ताम्, लोकोक्तिशतक, दीवो बरहमन (उर्दू)।

वर्ण्य-विषय

मिश्रजी के निबंधों में विषय की पर्याप्त विविधता है। देव-प्रेम, समाज-सुधार एवं साधारण मनोरंजन आदि मिश्रजी के निबंधों के मुख्य विषय थे। उन्होंने 'ब्राह्मण' मासिक पत्र में हर प्रकार के विषय पर निबंध लिखे। जैसे –घूरे के लत्ता बीने-कनातन के डोल बांधे, समझदार की मौत है, आप, बात, मनोयोग, बृद्ध, भौं, मुच्छ, ह, ट, द आदि।

मिश्रजी 'हिंदी, हिंदू, हिंदुस्तान' के कट्टर समर्थक थे, अतः उनकी रचनाओं में इनके प्रति विशेष मोह प्रकट हुआ है।

भाषा

खड़ीबोली के रूप में प्रचलित जनभाषा का प्रयोग मिश्रजी ने अपने साहित्य में किया। प्रचलित मुहावरों, कहावतों तथा विदेशी शब्दों का प्रयोग इनकी रचनाओं में हुआ है। भाषा की दृष्टि से मिश्रजी ने भारतेंदु का अनुसरण किया और जन साधारण की भाषा को अपनाया। भारतेंदुजी के समान ही मिश्रजी भाषा की कृत्रिमता से दूर रहे। उनकी भाषा स्वाभाविक है। उसमें पंडिताऊपन और पूर्वीपन अधिक है तथा ग्रामीण शब्दों का प्रयोग स्वच्छंदता पूर्वक हुआ है। संस्कृत, अरबी, फारसी, उर्दू, अंग्रेजी, आदि के प्रचलित शब्दों का भी प्रयोग है। भाषा विषय के अनुकूल है। गंभीर विषयों पर लिखते समय भाषा और गंभीर हो गई है। कहावतों और मुहावरों के प्रयोग में मिश्रजी बड़े कुशल थे। मुहावरों का जितना सुंदर प्रयोग उन्होंने किया है, वैसा बहुत कम लेखकों ने किया है। कहीं-कहीं तो उन्होंने मुहावरों की झड़ी-सी लगा दी है।

शैली

मिश्रजी की शैली वर्णनात्मक, विचारात्मक तथा हास्य-व्यंग्यात्मक है।

विचारात्मक शैली—साहित्यिक और विचारात्मक निबंधों में मिश्रजी ने इस शैली को अपनाया है। कहीं-कहीं इस शैली में हास्य और व्यंग्य का पुट भी मिलता है। इस शैली की भाषा संयत और गंभीर है। 'मनोयोग' शीर्षक निबंध का एक अंश देखिए-इसी से लोगों ने कहा है कि मन शरीर रूपी नगर का राजा है। और स्वभाव उसका चंचल है। यदि स्वच्छ रहे तो बहुधा कुत्सित ही मार्ग में धावमान रहता है।

व्यंग्यात्मक शैली —इस शैली में मिश्रजी ने अपने हास्य-व्यंग्यपूर्ण निबंध लिखे हैं। यह शैली मिश्रजी की प्रतिनिधि शैली है, जो सर्वथा उनके अनुकूल है। वे हास्य-विनोद प्रिय व्यक्ति थे। अतः प्रत्येक विषय का प्रतिपादन हास्य और विनोदपूर्ण ढंग से करते थे। हास्य और विनोद के साथ-साथ इस शैली में व्यंग्य के दर्शन होते हैं। विषय के अनुसार व्यंग्य कहीं-कहीं बड़ा तीखा और मार्मिक हो गया है। इस शैली में भाषा सरल, सरस और प्रवाहमयी है। उसमें उर्दू, फारसी, अंग्रेजी और ग्रामीण शब्दों का प्रयोग हुआ है। लोकोक्तियों और मुहावरों के प्रयोग

के कारण यह शैली अधिक प्रभावपूर्ण हो गई है। एक उदाहरण देखिए–दो–एक बार धोखा खाके धोखेबाजों की हिकमत सीख लो और कुछ अपनी ओर से झपकी–फुंदनी जोड़ कर उसी की जूती उसी का सर कर दिखाओ तो बड़े भारी अनुभवशाली वरंच 'गुरु गुड़ ही रहा और चेला शक्कर हो गया' का जीवित उदाहरण कहलाओगे।

समालोचना

मिश्रजी भारतेंदु मंडल के प्रमुख लेखकों में से एक हैं। उन्होंने हिंदी साहित्य की विविध रूपों में सेवा की। वे कवि होने के साथ–साथ उच्चकोटि के मौलिक निबंध लेखक और नाटककार थे। हिंदी गद्य के विकास में मिश्रजी का बड़ा योगदान रहा है। आचार्य शुक्ल जी ने पं. बालकृष्ण भट्ट के साथ मिश्रजी को भी महत्त्व देते हुए अपने हिंदी–साहित्य के इतिहास में लिखा है—पं. प्रतापनारायण मिश्र और पं. बालकृष्ण भट्ट ने हिंदी गद्य साहित्य में वही काम किया जो अंग्रेजी गद्य साहित्य में एडीसन और स्टील ने किया।

आप

प्रतापनारायण मिश्र

ले भला बतलाइए तो आप क्या हैं? आप कहते होंगे, वाह आप तो आप ही हैं। यह कहाँ की आपदा आई? यह भी कोई पूछने का ढंग है? पूछा होता कि आप कौन हैं तो बतला देते कि हम आपके पत्र के पाठक हैं और आप 'ब्राह्मण'–संपादक हैं अथवा आप पंडितजी हैं, आप राजा जी हैं, आप सेठ जी हैं, आप लाला जी हैं, आप बाबू साहब हैं, आप मियाँ साहब हैं, आप निरे साहब हैं। आप क्या हैं? यह तो प्रश्न की कोई रीति ही नहीं है। वाह महाशय! यह हम भी जानते हैं कि आप आप ही हैं, और हम भी वही हैं, तथा इन साहबों की भी लंबी धोती, चमकीली पोशाक, खुंटिहई अंगरखी (मीरजई), सीधी माँग, बिलायती चाल, लंबी दाढ़ी और साहबनी हवस ही कहे देती है —कि

किस रोग की हैं आप दवा कुछ न पूछिए

अच्छा साहब, फिर हमने पूछा तो क्यों पूछा? इसीलिए कि देखें कि आप 'आप' का ज्ञान रखते हैं वा नहीं? जिस आपको आप अपने लिए तथा औरों के प्रतिदिन रात मुँह पर धरे रहते हैं, वह आप क्या हैं? इसके उत्तर में आप कहिएगा

कि एक सर्वनाम है। जैसे मैं, तू, हम, वह, यह आदि हैं वैसे ही आप भी हैं, और क्या है। पर इतना कह देने से न हमीं संतुष्ट होंगे न आप ही के शब्दशास्त्र ज्ञान का परिचय होगा। इससे अच्छे प्रकार कहिए कि जैसे 'मैं' का शब्द अपनी नम्रता दिखलाने के लिए बिल्ली की बोली का अनुकरण है, 'तू' का शब्द मध्यम पुरुष की तुच्छता वा प्रीत सूचित करने के अर्थ में कुत्ते के संबोधन की नकल है, हम तुम संस्कृत के अहं, त्वं का अपभ्रंश हैं, यह वह निकट और दूर की वस्तु वा व्यक्ति के द्योतनार्थ स्वाभाविक उच्चारण हैं, वैसे 'आप' क्या है? किस भाषा के किस शब्द का शुद्ध वा अशुद्ध रूप हैं और आदर ही में बहुधा क्यों प्रयुक्त होता है?

हुजूर की मुलाजमत से अक्ल ने इस्तेअफा दे दिया हो तो दूसरी बात है नहीं तो आप यह कभी न कह सकेंगे कि 'आप लफ्ज या अरबीस्त' अथवा 'ओरू इटिज ऐन इंग्लिश वर्ड'। जब यह नहीं है तो खामखाह यह हिंदी शब्द है, पर कुछ सिर-पैर, मूड़-गौड़ भी है कि यों ही? आप छूटते ही सोच सकते हैं कि संस्कृत में आप कहते हैं जल को। और शास्त्रों में लिखा है कि विधाता ने सृष्टि के आदि में उसी को बनाया था, यथा-'आप एवं ससर्जादौ तासु वीर्यमवासृजत' तथा हिंदी में पानी और फारसी में आब का अर्थ शोभा अथच प्रतिष्ठा आदि हुआ करता है। जैसे 'पानी उतरि गा तरवारिन को उई करछुलि के मोल बिकाएँ' तथा पानी उतरिगा रजपूती का उइ फिर बिसुओं ते (बेश्या से भी) बहि जाए' और फारसी में 'आवरू खाक में मिला बैठे' इत्यादि।

इस प्रकार पानी की ज्येष्ठता और श्रेष्ठता का विचार करके लोग पुरुषों को भी उसी के नाम से आप पुकारने लगे होंगे। यह आपका समझना निरर्थक तो न होगा, बड़प्पन और आदर का अर्थ अवश्य निकल आवैगा, पर खींच-खाँच कर, और साथ ही यह शंका भी कोई कर बैठे तो अयोग्य न होगी कि पानी के जल, बारि, अंबु, नीर, तोय इत्यादि और भी तो कई नाम हैं, उनका प्रयोग क्यों नहीं करते 'आप' ही के सुर्खाब का पर कहाँ लगा है? अथवा पानी की सृष्टि सबके आदि में होने के कारण बृद्ध ही लोगों को उसके नाम से पुकारिए तो युक्तियुक्त हो सकता पर आप तो अवस्था में छोटों को भी आप-आप कहा करते हैं, यह आपकी कौन सी विज्ञता है? या हम यों भी कह सकते हैं कि पानी में गुण चाहे जितने हों, पर गति उसकी नीच ही होती है। तो क्या हमको मुँह से आप-आप करके अधोगामी बनाया चाहते हैं? हमें निश्चय है कि आप पानीदार होंगे तो इस बात के उठते ही पानी-पानी हो जाएंगे, और फिर कभी यह शब्द मुँह पर न लावेंगे।

सहृदय सुहृद्गण आपस में आप-आप की बोली बोलते ही नहीं हैं। एक हमारे उर्दूदाँ मुलाकाती मौखिक मित्र बनने की अभिलाषा से आते जाते थे। पर जब ऊपरी व्यवहार मित्रता का सा देखा तो हमने उनसे कहा कि बाहरी लोगों के सामने की बात न्यारी है, अकेले में अथवा अपनायत वालों के आगे आप-आप न किया करो, इसमें भिन्नता की भिनभिनाहट पाई जाती है। पर वह इस बात को न माने, हमने दो चार बार समझाया पर वह 'आप' थे, क्यों मानने लगे! इस पर हमें झुँझलाहट छूटी तो एक दिन उनके आते ही और आप का शब्द मुँह पर लाते ही हमने कह दिया कि 'आपकी ऐसी तैसी'। यह क्या बात है कि तुम मित्र बनकर हमारा कहना नहीं मानते? प्यार के साथ तू कहने में जितना स्वादु आता है उतना बनावट से आप साँप कहो तो कभी सपने में नहीं आने का। इस उपदेश को वह मान गए। सच तो यह है कि प्रेमशास्त्र में, कोई बंधन न होने पर भी, इस शब्द का प्रयोग बहुत ही कम, बरंच नहीं के बराबर होता है।

हिंदी कविता में हमने दो ही कवित्त इससे युक्त पाए हैं, एक तो 'आपको न चाहै ताकि बाप को न चाहिए'। पर यह न तो किसी प्रतिष्ठित ग्रंथ का है और न इसका आशय स्नेह संबद्ध है। किसी जले भुने कवि ने कहा मारा हो तो यह काई नहीं कह सकता कि कविता में भी आप की पूछ है। दूसरी घनानंद जी की यह सवैया है –'आप ही तौ मन हेरि हर्यौ तिरछे करि नैनन नेह के चाव में' इत्यादि। पर यह भी निराशापूर्ण उपालंभ है, इससे हमारा यह कथन कोई खंडन नहीं कर सकता कि प्रेम-समाज में 'आप' का आदर नहीं है, 'तू' ही प्यारा है।

संस्कृत फारसी के कवि भी त्वं और तू के आगे भवान् और शुमा (तू का बहुवचन) का बहुत आदर नहीं करते, पर इससे आपको क्या मतलब? आप अपनी हिंदी के 'आप' का पता लगाइए, और न लगै तो हम बतला देंगे। संस्कृत में एक आप्त शब्द है, जो सर्वथा माननीय ही अर्थ में आता है, यहाँ तक कि न्याय शास्त्र में प्रमाण चतुष्टय (प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, और शब्द) के अंतर्गत शाब्द-प्रमाण का लक्षण ही यह लिखा है कि 'आप्तोदेश: शब्द:' अर्थात् आप्त पुरुष का वचन प्रत्यक्षादि प्रमाणों के समान ही प्रामाणिक होता है, वा यों समझ लो कि आप्त जन प्रत्यक्ष, अनुमान और उपमान प्रमाण से सर्वथा प्रमाणित ही विषय को शब्दबद्ध करते हैं।

इससे जान पड़ता है कि जो सब प्रकार की विद्या, बुद्धि, सत्यभाषणादि सद्गुणों से संयुक्त हो वह आप्त है, और देवनागरी भाषा में आप्तशब्द उसके

उच्चारण में सहजतया नहीं आ सकता। इससे उसे सरल करके आप बना लिया गया है, और मध्यम पुरुष तथा अन्य पुरुष के अत्यंत आदर का द्योतन करने के काम में आता है। 'तुम अघ्छुत अच्छे मनुष्य हो' और 'यह सज्जन हैं' —ऐसा कहने से सच्चे मित्र, बनावट के शत्रु चाहे जैसे 'पुलक प्रफुल्लित पूरित गाता' हो जाए, पर व्यवहारकुशल लोकाचारी पुरुष तभी अपना उचित सम्मान समझेंगे जब कहा जाए कि, 'आपका क्या कहना है, आप तो बस सभी बातों में एक ही हैं, इत्यादि।

अब तो आप समझ गए होंगे कि आप कहाँ के हैं, कौन हैं, कैसे हैं, यदि इतने बड़े बात के बतंगड़ से भी न समझे हो तो इस छोटे से कथन में हम क्या समझ सकेंगे कि आप संस्कृत के आप्त शब्द का हिंदी रूपांतर है, और माननीय अर्थ के सूचनार्थ उन लोगों (अथवा एक ही व्यक्ति) के प्रति प्रयोग में लाया जाता है, जो सामने विद्यमान हो, चाहे बातें करते हों, चाहें बात करने वालों के द्वारा पूछे बताए जा रहे हों, अथवा दो वा अधिक जनों में जिनकी चर्चा हो रही हो। कभी-कभी उत्तम पुरुष के द्वारा भी इसका प्रयोग होता है, वहाँ भी शब्द और अर्थ वही रहता है, पर विशेषता यह रहती है कि एक तो सब कोई अपने मन से आपको (अपने तईं) आप ही (आप्त ही) समझता है। और विचार कर देखिए तो आत्मा और परमात्मा की अभिन्नता या तद्रुपता कहीं लेने भी नहीं जानी पड़ती, पर बाह्य व्यवहार में अपने को आप कहने से यदि अहंकार की गंध समझिए तो यों समझ लीजिए कि जो काम अपने हाथ से किया जाता है और जो बात अपनी समझ स्वीकार कर लेती है उसमें पूर्ण निश्चय अवश्य ही हो जाता है और उसी के विदित करने को हम और आप तथा यह एवं वो कहते हैं कि 'हम आप कर लेंगे' अर्थात् कोई संदेह नहीं है कि हमसे यह कार्य संपादित हो जाएगा। 'हम आप जानते हैं', अर्थात् दूसरे के बतलाने की आवश्यकता नहीं है, इत्यादि।

महाराष्ट्रीय भाषा के आपा जी भी उन्नीस बिस्वा आप्त और आर्य के मिलने से इस रूप में हो गए हैं, तथा कोई माने या न माने, पर हम मना सकने का साहस रखते हैं कि अरती के अब्ब (पिता, बोलने में अब्बा) और योरोपिय भाषाओं के पापा (पिता) पोप (धर्म-पिता) आदि भी इसी आप से निकले हैं। हाँ इसके समझने समझाने में भी जी ऊबे तो अँगरेजी के एबाट (Apat egar) तो इसके हई है, क्योंकि उस बोली में ह्रस्व और दीर्ध दोनों प्रकार का स्थानापन्न । है, और पकार का बकार से बदल लेना कई भाषाओं की चाल है। रही टी (T) सो वह तो 'तकार' हुई है। फिर क्या न मान लीजिएगा कि एबाट साहब हमारे 'आप' बरंच शुद्ध आप्त से बने हैं!

हमारे प्रांत में बहुत से उच्च वंश के बालक भी अपने पिता को अप्पा कहते हैं, उसे कोई-कोई लोग समझते हैं कि मुसलमानों के सहवास का फल है। पर उनकी यह समझ ठीक नहीं है। मुसलमान भाइयों के लड़के कहते हैं अब्बा और हिंदू संतान के पक्ष में 'बकार' का उच्चारण तनिक भी कठिन नहीं होता, यह अँगरेजों की तकार और फारस वालों की टकार नहीं है कि मुँह से ही न निकले, और सदा मोती का मोटी अर्थात स्थूलांगी स्त्री और खस की टट्टी का तत्ती अर्थात् गरम ही हो जाए। फिर अब्बा को अप्पा कहना किस नियम से होगा! हाँ आप्त से आप और अप्पा तथा आपा की सृष्टि हुई है, उसी को अरबवालों ने अब्बा में रूपांतरित कर लिया होगा। क्योंकि उनकी वर्णमाला में 'पकार' (पे) नहीं होती।

सौ बिस्वा बप्पा, बाप, बापू, बब्बा, बाबू आदि भी इसी से निकले हैं क्योंकि जैसे एशिया की कई बोलियों में 'पकार' को 'बकार' व फकार से बदल देते हैं, जैसे पादशाह-बादशाह और पारसी-फारसी आदि, वैसे ही कई भाषाओं में शब्द के आदि में बकार भी मिला देते हैं, जैसे वक्ते शब बवक्ते शब तथा तंग आमद-बतंग आमद इत्यादि, और शब्द के आदि को ह्रस्व अकार का कोप भी हो जाता है, जैसे अमावस का मावस (सतसई आदि ग्रंथ में देखो) ह्रस्व अकारांत शब्दों में अकार के बदले ह्रस्व वा दीर्घ उकार भी हो जाती है, जैसे एक-एकु, स्वाद-स्वादु आदि। अथच ह्रस्व को दीर्ध, दीर्ध को ह्रस्व अ, इ, उ आदि की वृद्धि वा लोप भी हुवा ही करता है, फिर हम क्यों न कहें कि जिन शब्दों में अकार और पकार का संपर्क हो, एवं अर्थ से श्रेष्ठता की ध्वनि निकलती हो वह प्रायः समस्त संसार के शब्द हमारे आप्त महाशय वा आप ही उलट-फेस से बने हैं।

अब तो आप समझ गए न कि आप क्या हैं? अब भी न समझो तो हम नहीं कह सकते कि आप समझदारी के कौन हैं? हाँ, आप ही को उचित होगा कि दमड़ी छदाम की समझ किसी पंसारी के यहाँ से मोल ले आइए, फिर आप ही समझने लगिएगा कि 'आप को हैं? कहाँ के हैं?' यदि यह भी न हो सके और लेख पढ़ के आपे से बाहर हो जाइए तो हमारा क्या अपराध है? हम केवल जी में कह लेंगे, 'शाब! आप न समझो तो आपा को के पड़ी छै।' ऐं! अब भी नहीं समझे? वाह रे आप!

बात

प्रतापनारायण मिश्र

यदि हम वैद्य होते तो कफ और पित्त के सहवर्ती बात की व्याख्या करते तथा भूगोलवेत्ता होते तो किसी देश के जल बात का वर्णन करते। किंतु इन दोनों विषयों में हमें एक बात कहने का भी प्रयोजन नहीं है। इससे केवल उसी बात के ऊपर दो चार बात लिखते हैं, जो हमारे सम्भाषण के समय मुख से निकल-निकल के परस्पर हृदयस्थ भाव प्रकाशित करती रहती हैं। सच पूछिए तो इस बात की भी क्या बात है जिसके प्रभाव से मानव जाति समस्त जीवधारियों की शिरोमणि (अशरफुल मखलूकात) कहलाती है। शुकसारिकादि पक्षी केवल थोड़ी सी समझने योग्य बातें उच्चरित कर सकते हैं इसी से अन्य नभचारियों की अपेक्षा आद्रित समझे जाते हैं। फिर कौन न मान लेगा कि बात की बड़ी बात है। हाँ, बात की बात इतनी बड़ी है कि परमात्मा को सब लोग निराकार कहते हैं तो भी इसका संबंध उसके साथ लगाए रहते हैं। वेद ईश्वर का बचन है, कुरआनशरीफ कलामुल्लाह है, होली बाइबिल वर्ड आफ गाड है यह बचन, कलाम और वर्ड बात ही के पर्याय हैं सो प्रत्यक्ष में मुख के बिना स्थिति नहीं कर सकती। पर बात की महिमा के अनुरोध से सभी धर्मावलंबियों ने 'बिन बानी वक्त बड़ योगी' वाली बात मान रक्खी है। यदि कोई न माने तो लाखों बातें बना के मनाने पर कटिबद्ध रहते हैं।

यहाँ तक कि प्रेम सिद्धांती लोग निरवयव नाम से मुँह बिचकावैंगे। 'अपाणिपादो जवनो गृहीता' इत्यादि पर हठ करने वाले को यह कहके बात में उड़ावेंगे कि 'हम लँगड़े लूले ईश्वर को नहीं मान सकते। हमारा प्यारा तो कोटि काम सुंदर श्याम बरण विशिष्ट है।' निराकार शब्द का अर्थ श्री शालिग्राम शिला है, जो उसकी स्यामता को द्योतन करती है अथवा योगाभ्यास का आरंभ करने वाले कों आँखें मूँदने पर जो कुछ पहिले दिखाई देता है वह निराकार अर्थात् बिलकुल काला रंग है। सिद्धांत यह कि रंग रूप रहित को सब रंग रंजित एवं अनेक रूप सहित ठहरावेंगे किंतु कानों अथवा प्रानों वा दोनों को प्रेम रस से सिंचित करने वाली उसकी मधुर मनोहर बातों के मजे से अपने को बंचित न रहने देंगे।

जब परमेश्वर तक बात का प्रभाव पहुँचा हुआ है तो हमारी कौन बात रही? हम लोगों के तो 'गात माहिं बात करामात है।' नाना शास्त्र, पुराण, इतिहास, काव्य, कोश इत्यादि सब बात ही के फैलाव हैं जिनके मध्य एक-एक ऐसी पाई जाती है, जो मन, बुद्धि, चित्त को अपूर्व दशा में ले जाने वाली अथच लोक परलोक में सब बात बनाने वाली है। यद्यपि बात का कोई रूप नहीं बतला सकता कि कैसी है पर बुद्धि दौड़ाइए तो ईश्वर की भाँति इसके भी अगणित ही रूप पाइएगा।

बड़ी बात, छोटी बात, सीधी बात, टेढ़ी बात, खरी बात, खोटी बात, मीठी बात, कड़वी बात, भली बात, बुरी बात, सुहाती बात, लगती बात इत्यादि सब बात ही तो है? बात के काम भी इसी भाँति अनेक देखने में आते हैं। प्रीति बैर, सुख दुःख श्रद्धा घृणा, उत्साह अनुत्साहादि जितनी उत्तमता और सहजता बात के द्वारा विदित हो सकती हैं दूसरी रीति से वैसी सुविधा ही नहीं। घर बैठे लाखों कोस का समाचार मुख और लेखनी से निर्गत बात ही बतला सकती है। डाकखाने अथवा तारघर के सहारे से बात की बात में चाहे जहाँ की जो बात हो जान सकते हैं। इसके अतिरिक्त बात बनती है, बात बिगड़ती है, बात आ पड़ती है, बात जाती रहती है, बात उखड़ती है।

हमारे तुम्हारे भी सभी काम बात पर निर्भर करते हैं –'बातहि हाथी पाइए, बातहि हाथी पाँव।' बात ही से पराए अपने और अपने पनाए हो जाते हैं। मक्खीचूस उदार तथा उदार स्वल्पव्ययी, कापुरुष युद्धोत्साही एवं युद्धप्रिय शांतिशील, कुमार्गी सुपथगामी अथच सुपंथी कुराही इत्यादि बन जाते हैं। बात का तत्व समझना हर एक का काम नहीं है और दूसरों की समझ पर आधिपत्य जमाने योग्य बात बढ़ सकता भी ऐसों वैसों का साध्य नहीं है। बड़े-बड़े विज्ञवरों तथा महा-महा कवीश्वरों के जीवन बात ही के समझने समझाने में व्यतीत हो जाते हैं। सहृदयगण की बात के आनंद के आगे सारे संसार तुच्छ जँचता है। बालाकों की तोतली बातें, सुंदरियों की मीठी-मीठी, प्यारी-प्यारी बातें, सत्कवियों की रसीली बातें, सुवक्ताओं की प्रभावशाली बातें जिसके जी को और का और न कर दें उसे पशु नहीं पाषाण खंड कहना चाहिए। क्योंकि कुत्ते, बिल्ली आदि को विशेष समझ नहीं होती तो भी पुचकार के 'तू तू' 'पूसी पूसी' इत्यादि बातें क दो तो भावार्थ समझ के यथा सामर्थ्य स्नेह प्रदर्शन करने लगते हैं। फिर वह मनुष्य कैसा जिसके चित्त पर दूसरे हृदयवान की बात का असर न हो।

बात वह आदणीय है कि भलेमानस बात और बाप को एक समझते हैं। हाथी के दाँत की भाँति उनके मुख से एक बार कोई बात निकल आने पर फिर कदापि नहीं पलट सकती। हमारे परम पूजनीय आर्यगण अपनी बात का इतना पक्ष करते थे कि 'तन तिय तनय धाम धन धरनी। सत्यसंध कहँ तून सम बरनी'। अथच 'प्रानन ते सुत अधिक है सुत ते अधिक परान। ते दूनौ दसरथ तजे वचन न दीन्हों जान।' इत्यादि उनकी अक्षरसंवद्धा कीर्ति सदा संसार पट्टिका पर सोने के अक्षरों से लिखी रहेगी। पर आजकल के बहुतेरे भारत कुपुत्रों ने यह ढंग पकड़ रक्खा है कि 'मर्द की जबान (बात का उदय स्थान) और गाड़ी का पहिया चलता ही फिरता रहता है।'

आज और बात है कल ही स्वार्थांधता के बंश हुजूरों की मरजी के मुवाफिक दूसरी बातें हो जाने में तनिक भी विलंब की संभावना नहीं है। यद्यपि कभी-कभी अवसर पड़ने पर बात के अंश का कुछ रंग-ढंग परिवर्तित कर लेना नीति विरुद्ध नहीं है, पर कब? जात्योपकार, देशोद्धार, प्रेम प्रचार आदि के समय, न कि पापी पेट के लिए। एक हम लोग हैं जिन्हें आर्यकुलरत्नों के अनुगमन की सामर्थ्य नहीं है, किंतु हिंदुस्तानियों के नाम पर कलंक लगाने वालों के भी सहमार्गी बनने में घिन लगती है।

इससे यह रीति अंगीकार कर रखी है कि चाहे कोई बड़ा बतकहा अर्थात् बातूनी कहै चाहै यह समझे कि बात कहने का भी शऊर नहीं है, किंतु अपनी मति अनुसार ऐसी बातें बनाते रहना चाहिए जिनमें कोई न कोई, किसी न किसी के वास्तविक हित की बात निकलती रहे। पर खेद है कि हमारी बातें सुनने वाले उँगलियों ही पर गिनने भर को हैं। इससे 'बात बात में बात' निकालने का उत्साह नहीं होता। अपने जी को 'क्या बने बात जहाँ बात बनाए न बने' इत्यादि विदग्धालापों की लेखनी से निकली हुई बातें सुना के कुछ फुसला लेते हैं और बिन बात की बात को बात का बतंगड़ समझ के बहुत बात बढ़ाने से हाथ समेट लेना ही समझते हैं कि अच्छी बात है।

10

माखनलाल चतुर्वेदी

माखनलाल चतुर्वेदी भारत के ख्यातिप्राप्त कवि, लेखक और पत्रकार थे जिनकी रचनाएँ अत्यंत लोकप्रिय हुईं। सरल भाषा और ओजपूर्ण भावनाओं के वे अनूठे हिंदी रचनाकार थे। प्रभा और कर्मवीर जैसे प्रतिष्ठत पत्रों के संपादक के रूप में उन्होंने ब्रिटिश शासन के खिलाफ जोरदार प्रचार किया और नई पीढ़ी का आह्वान किया कि वह गुलामी की जंजीरों को तोड़ कर बाहर आएं। इसके लिये उन्हें अनेक बार ब्रिटिश साम्राज्य का कोपभाजन बनना पड़ा। वे सच्चे देशप्रमी थे और 1921–22 के असहयोग आंदोलन में सक्रिय रूप से भाग लेते हुए जेल भी गए। आपकी कविताओं में देशप्रेम के साथ–साथ प्रकृति और प्रेम का भी चित्रण हुआ है।

जीवनी

श्री माखनलाल चतुर्वेदी का जन्म मध्य प्रदेश के होशंगाबाद जिले में बाबई नामक स्थान पर हुआ था। इनके पिता का नाम नन्दलाल चतुर्वेदी था जो गाँव के प्राइमरी स्कूल में अध्यापक थे। प्राइमरी शिक्षा के बाद घर पर ही इन्होंने संस्कृत ,बंगला ,अंग्रेजी ,गुजरती आदि भाषाओँ का ज्ञान प्राप्त किया।

कार्यक्षेत्र

माखनलाल चतुर्वेदी का तत्कालीन राष्ट्रीय परिदृश्य और घटनाचक्र ऐसा था जब लोकमान्य तिलक का उद्‌घोष–'स्वतंत्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है'

बलिपंथियों का प्रेरणास्रोत बन चुका था। दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रह के अमोघ अस्त्र का सफल प्रयोग कर कर्मवीर मोहनदास करमचंद गाँधी का राष्ट्रीय परिदृश्य के केंद्र में आगमन हो चुका था। आर्थिक स्वतंत्रता के लिए स्वदेशी का मार्ग चुना गया था, सामाजिक सुधार के अभियान गतिशील थे और राजनीतिक चेतना स्वतंत्रता की चाह के रूप में सर्वोच्च प्राथमिकता बन गई थी। ऐसे समय में माधवराव सप्रे के 'हिन्दी केसरी' ने सन 1908 में 'राष्ट्रीय आंदोलन और बहिष्कार' विषय पर निबंध प्रतियोगिता का आयोजन किया। खंडवा के युवा अध्यापक माखनलाल चतुर्वेदी का निबंध प्रथम चुना गया। अप्रैल 1913 में खंडवा के हिन्दी सेवी कालूराम गंगराड़े ने मासिक पत्रिका 'प्रभा' का प्रकाशन आरंभ किया, जिसके संपादन का दायित्व माखनलालजी को सौंपा गया। सितंबर 1913 में उन्होंने अध्यापक की नौकरी छोड़ दी और पूरी तरह पत्रकारिता, साहित्य और राष्ट्रीय आंदोलन के लिए समर्पित हो गए। इसी वर्ष कानपुर से गणेश शंकर विद्यार्थी ने 'प्रताप' का संपादन-प्रकाशन आरंभ किया। 1916 के लखनऊ कांग्रेस अधिवेशन के दौरान माखनलालजी ने विद्यार्थीजी के साथ मैथिलीशरण गुप्त और महात्मा गाँधी से मुलाकात की। महात्मा गाँधी द्वारा आहूत सन 1920 के 'असहयोग आंदोलन' में महाकोशल अंचल से पहली गिरफ्तारी देने वाले माखनलालजी ही थे। सन 1930 के सविनय अवज्ञा आंदोलन में भी उन्हें गिरफ्तारी देने का प्रथम सम्मान मिला। उनके महान कृतित्त्व के तीन आयाम हैं—एक, पत्रकारिता—'प्रभा', 'कर्मवीर' और 'प्रताप' का संपादन। दो—माखनलालजी की कविताएँ, निबंध, नाटक और कहानी। तीन—माखनलालजी के अभिभाषण/व्याख्यान।

पुरस्कार व सम्मान

1943 में उस समय का हिन्दी साहित्य का सबसे बड़ा 'देव पुरस्कार' माखनलालजी को 'हिम किरीटिनी' पर दिया गया था। 1954 में साहित्य अकादमी पुरस्कारों की स्थापना होने पर हिन्दी साहित्य के लिए प्रथम पुरस्कार दादा को 'हिमतरंगिनी' के लिए प्रदान किया गया। 'पुष्प की अभिलाषा' और 'अमर राष्ट्र' जैसी ओजस्वी रचनाओं के रचयिता इस महाकवि के कृतित्त्व को सागर विश्वविद्यालय ने 1959 में डी.लिट्. की मानद उपाधि से विभूषित किया। 1963 में भारत सरकार ने 'पद्मभूषण' से अलंकृत किया। 10 सितंबर 1967 को राष्ट्रभाषा हिन्दी पर आघात करने वाले राजभाषा संविधान संशोधन विधेयक

के विरोध में माखनलालजी ने यह अलंकरण लौटा दिया। 16–17 जनवरी 1965 को मध्यप्रदेश शासन की ओर से खंडवा में 'एक भारतीय आत्मा' माखनलाल चतुर्वेदी के नागरिक सम्मान समारोह का आयोजन किया गया। तत्कालीन राज्यपाल श्री हरि विनायक पाटसकर और मुख्यमंत्री पं. द्वारकाप्रसाद मिश्र तथा हिन्दी के अग्रगण्य साहित्यकार–पत्रकार इस गरिमामय समारोह में उपस्थित थे। भोपाल का माखनलाल चतुर्वेदी पत्रकारिता विश्वविद्यालय उन्हीं के नाम पर स्थापित किया गया है। उनके काव्य संग्रह 'हिमतरंगिणी' के लिये उन्हें 1955 में हिन्दी के 'साहित्य अकादमी पुरस्कार' से सम्मानित किया गया।

प्रकाशित कृतियाँ

हिमकिरीटिनी, हिम तरंगिणी, युग चरण, समर्पण, मरण ज्वार, माता, वेणु लो गूंजे धरा, बीजुरी काजल, आँच रही आदि इनकी प्रसिद्ध काव्य कृतियाँ हैं।

कृष्णार्जुन युद्ध, साहित्य के देवता, समय के पांव, अमीर इरादे–गरीब इरादे आदि इनकी प्रसिद्ध गद्यात्मक कृतियाँ हैं।

11

रामनरेश त्रिपाठी

रामनरेश त्रिपाठी हिन्दी भाषा के 'पूर्व छायावाद युग' के कवि थे। कविता, कहानी, उपन्यास, जीवनी, संस्मरण, बाल साहित्य सभी पर उन्होंने कलम चलाई। अपने 72 वर्ष के जीवन काल में उन्होंने लगभग सौ पुस्तकें लिखीं। ग्राम गीतों का संकलन करने वाले वह हिंदी के प्रथम कवि थे जिसे 'कविता कौमुदी' के नाम से जाना जाता है। इस महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए उन्होंने गांव-गांव जाकर, रात-रात भर घरों के पिछवाड़े बैठकर सोहर और विवाह गीतों को सुना और चुना। वह गांधी के जीवन और कार्यों से अत्यन्त प्रभावित थे। उनका कहना था कि मेरे साथ गांधी जी का प्रेम 'लरिकाई को प्रेम' है और मेरी पूरी मनोभूमिका को सत्याग्रह युग ने निर्मित किया है। 'बा और बापू' उनके द्वारा लिखा गया हिंदी का पहला एकांकी नाटक है।

'स्वप्न' पर इन्हें हिंदुस्तानी अकादमी का पुरस्कार मिला।

जन्म एवं प्रारम्भिक शिक्षा

उत्तर प्रदेश के सुल्तानपुर जिले के ग्राम कोइरीपुर में 4 मार्च, 1889 ई. को एक कृषक परिवार में जन्मे रामनरेश त्रिपाठी का व्यक्तित्त्व एवं कृतित्त्व अत्यन्त प्रेरणादायी था। उनके पिता पं. रामदत्त त्रिपाठी धार्मिक व सदाचार परायण ब्राह्मण थे। भारतीय सेना में सूबेदार के पद पर रह चुके पंडित रामदत्त त्रिपाठी का रक्त पंडित रामनरेश त्रिपाठी की रगों में धर्मनिष्ठा, कर्तव्यनिष्ठा व राष्ट्रभक्ति

की भावना के रूप में बहता था। दृढ़ता, निर्भीकता और आत्मविश्वास के गुण उन्हें अपने परिवार से ही मिले थे।

पं. त्रिपाठी की प्रारम्भिक शिक्षा गांव के प्राइमरी स्कूल में हुई। कनिष्ठ कक्षा उत्तीर्ण कर हाईस्कूल वह निकटवर्ती जौनपुर जिले में पढ़ने गए मगर वह दसवीं की शिक्षा पूरी नहीं कर सके। अट्ठारह वर्ष की आयु में पिता से अनबन होने पर वह कलकत्ता चले गए।

युवा काल

पंडित त्रिपाठी में कविता के प्रति रुचि प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करते समय जाग्रत हुई थी। संक्रामक रोग हो जाने की वजह से वह कलकत्ता में भी अधिक समय तक नहीं रह सके। सौभाग्य से एक व्यक्ति की सलाह मानकर वह स्वास्थ्य सुधार के लिए जयपुर राज्य के सीकर ठिकाना स्थित फतेहपुर ग्राम में सेठ रामवल्लभ नेवरिया के पास चले गए।

यह एक संयोग ही था कि मरणासन्न स्थिति में वह अपने घर परिवार में न जाकर सुदूर अपरिचित स्थान राजपुताना के एक अजनबी परिवार में जा पहुँचे जहां शीघ्र ही इलाज व स्वास्थ्यप्रद जलवायु पाकर रोगमुक्त हो गए।

पंडित त्रिपाठी ने सेठ रामवल्लभ के पुत्रों की शिक्षा-दीक्षा की जिम्मेदारी को कुशलतापूर्वक निभाया। इस दौरान उनकी लेखनी पर मां सरस्वती की मेहरबानी हुई और उन्होंने "हे प्रभो आनन्ददाता, ज्ञान हमको दीजिये" जैसी बेजोड़ रचना कर डाली जो आज भी अनेक विद्यालयों में प्रार्थना के रूप में गाई जाती है।

साहित्य कृतित्त्व

त्रिपाठी जी एक बहुमुखी प्रतिभा वाले साहित्यकार माने जाते हैं। द्विवेदी युग के सभी प्रमुख प्रवृत्तियाँ उनकी कविताओं में मिलती हैं। फतेहपुर में पं. त्रिपाठी की साहित्य साधना की शुरुआत होने के बाद उन्होंने उन दिनों तमाम छोटे-बड़े बालोपयोगी काव्य संग्रह, सामाजिक उपन्यास और हिन्दी में महाभारत लिखे। उन्होंने हिन्दी तथा संस्कृत के सम्पूर्ण साहित्य का गहन अध्ययन किया। त्रिपाठी जी पर तुलसीदास व उनकी अमर रचना रामचरित मानस का गहरा प्रभाव था, वह मानस को घर घर तक पहुँचाना चाहते थे। बेढब बनारसी ने उनके बारे में कहा था ..

तुम तोप और मैं लाठी
तुम रामचरित मानस निर्मल, मैं रामनरेश त्रिपाठी।

वर्ष 1915 में पं. त्रिपाठी ज्ञान एवं अनुभव की संचित पूंजी लेकर पुण्यतीर्थ एवं ज्ञानतीर्थ प्रयाग गए और उसी क्षेत्र को उन्होंने अपनी कर्मस्थली बनाया। थोड़ी पूंजी से उन्होंने प्रकाशन का व्यवसाय भी आरम्भ किया। पंडित त्रिपाठी ने गद्य और पद्य का कोई कोना अछूता नहीं छोड़ा तथा मौलिकता के नियम को ध्यान में रखकर रचनाओं को अंजाम दिया। हिन्दी जगत में वह मार्गदर्शी साहित्यकार के रूप में अवरित हुए और सारे देश में लोकप्रिय हो गए।

उन्होंने वर्ष 1920 में 21 दिनों में हिन्दी के प्रथम एवं सर्वोत्कृष्ट राष्ट्रीय खण्डकाव्य "पथिक" की रचना की। इसके अतिरिक्त "मिलन" और "स्वप्न" भी उनके प्रसिद्ध मौलिक खण्डकाव्यों में शामिल हैं। स्वपनों के चित्र उनका पहला कहानी संग्रह है।

कविता कौमुदी के सात विशाल एवं अनुपम संग्रह-ग्रंथों का भी उन्होंने बड़े परिश्रम से सम्पादन एवं प्रकाशन किया।

पं. त्रिपाठी कलम के धनी ही नहीं बल्कि कर्मशूर भी थे। महात्मा गांधी के निर्देश पर वे हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रचार मंत्री के रूप में हिन्दी जगत के दूत बनकर दक्षिण भारत गए थे। वह पक्के गांधीवादी देशभक्त और राष्ट्र सेवक थे। स्वाधीनता संग्राम और किसान आन्दोलनों में भाग लेकर वह जेल भी गए।

पं. त्रिपाठी को अपने जीवन काल में कोई राजकीय सम्मान तो नहीं मिला पर उससे भी कहीं ज्यादा गौरवप्रद लोक सम्मान तथा अक्षय यश उन पर अवश्य बरसा। उन्होंने 16 जनवरी 1962 को अपने कर्मक्षेत्र प्रयाग में ही अंतिम सांस ली।

पंडित त्रिपाठी के निधन के बाद आज उनके गृह जनपद सुल्तानपुर जिले में एक मात्र सभागार 'पंडित राम नरेश त्रिपाठी सभागार' स्थापित है, जो उनकी स्मृतियों को ताजा करता है।

कृतियाँ

रामनरेश त्रिपाठी की चार काव्य-कृतियाँ मुख्य रूप से उल्लेखनीय हैं-
मिलन (1918) 13 दिनों में रचित,
पथिक (1920) 21 दिनों में रचित,

मानसी (1927) और

स्वप्न (1929) 15 दिनों में रचित ' इसके लिए उन्हें हिन्दुस्तान अकादमी का पुरस्कार मिला।

पं. रामनरेश त्रिपाठी जी की अन्य प्रमुख कृतियां इस प्रकार हैं -

मुक्तक–मारवाड़ी मनोरंजन, आर्य संगीत शतक, कविता-विनोद, क्या होम रूल लोगे, मानसी।

(काव्य) **प्रबंध**– मिलन, पथिक, स्वप्न।

कहानी–तरकस, आखों देखी कहानियां, स्वपनों के चित्र, नखशिख, उन बच्चों का क्या हुआ। 21 अन्य कहानियाँ।

उपन्यास–वीरांगना, वीरबाला, मारवाड़ी और पिशाचनी, सुभद्रा और लक्ष्मी।

नाटक–जयंत, प्रेमलोक, वफाती चाचा, अजनबी, पैसा परमेश्वर, बा और बापू, कन्या का तपोवन।

व्यंग्य–दिमागी ऐयाशी, स्वप्नों के चित्र।

अनुवाद–इतना तो जानो (अटलु तो जाग्जो –गुजराती से), कौन जागता है (गुजराती नाटक)।

उन्होंने गाँव-गाँव, घर-घर घूमकर रात-रात भर घरों के पिछवाड़े बैठकर सोहर और विवाह गीतों को चुन-चुनकर लगभग 16 वर्षों के अथक परिश्रम से 'कविता कौमुदी' संकलन तैयार किया। जिसके 6 भाग उन्होंने 1917 से लेकर 1933 तक प्रकाशित किए।

प्रसिद्ध कृतियाँ

हे प्रभो आनंददाता!
हे प्रभो आनंददाता ! ज्ञान हमको दीजिए,
शीघ्र सारे दुर्गुणों को दूर हमसे कीजिए।
लीजिए हमको शरण में, हम सदाचारी बनें,
बह्मचारी, धर्मरक्षक, वीरव्रत धारी बनें। ––रामनरेश त्रिपाठी

हमारे पूर्वज

पता नहीं है जीवन का रथ किस मंजिल तक जाये।
मन तो कहता ही रहता है, नियराये-नियराये।

कर बोला जिह्वा भी बोली, पांव पेट भर धाये।
जीवन की अनन्त धारा में सत्तर तक बह आये।
चले कहां से कहां आ गये, क्या-क्या किये कराये।
यह चलचित्र देखने ही को अब तो खाट-बिछाये।
जग देखा, पहचान लिए सब अपने और पराये।
मित्रों का उपकृत हूँ जिनसे नेह निछावर पाये।
प्रिय निर्मल जी! पितरों पर अब कविता कौन बनाये?
मैं तो स्वयं पितर बनने को बैठा हूँ मुँह बाये।
---8 अप्रैल, 1958, कोइरीपुर (सुल्तानपुर), रामनरेश त्रिपाठी

स्वच्छन्दतावादी कवि

रामनरेश त्रिपाठी स्वच्छन्दतावादी भावधारा के कवि के रूप में प्रतिष्ठित हुए हैं। इनसे पूर्व श्रीधर पाठक ने हिन्दी कविता में स्वच्छन्दतावाद (रोमाण्टिसिज्म) को जन्म दिया था। रामनरेश त्रिपाठी ने अपनी रचनाओं द्वारा उक्त परम्परा को विकसित किया और सम्पन्न बनाया। देश प्रेम तथा राष्ट्रीयता की अनुभूतियाँ इनकी रचनाओं का मुख्य विषय रही हैं। हिन्दी कविता के मंच पर ये राष्ट्रीय भावनाओं के गायक के रूप में बहुत लोकप्रिय हुए। प्रकृति-चित्रण में भी इन्हें अदभुत सफलता प्राप्त हुई है।

खण्ड काव्य

रामनरेश त्रिपाठी ने खण्ड काव्यों की रचना के लिए किन्हीं पौराणिक अथवा ऐतिहासिक कथा सूत्रों का आश्रय नहीं लिया है, वरन् अपनी कल्पना शक्ति से मौलिक तथा मार्मिक कथाओं की सृष्टि की है। कवि द्वारा निर्मित होने के कारण इन काव्यों के चरित्र बड़े आकर्षक हैं और जीवन के साँचे में ढाले हुए जान पड़ते हैं। इन तीनों ही खण्ड काव्यों की एक सामान्य विशेषता यह है कि इनमें देशभक्ति की भावनाओं का समावेश बहुत ही सरसता के साथ किया गया है। उदाहरण के लिए 'स्वप्न' नामक खण्ड काव्य को लिया जा सकता है। इसका नायक वसन्त नामक नवयुवक एक ओर तो अपनी प्रिया के प्रगाढ़ प्रेम में लीन रहना चाहता है, मनोरम प्रकृति के क्रोड़ में उसके साहचर्य-सुख की अभिलाषा करता है और दूसरी ओर समाज का दुख-दर्द दूर करने के लिए राष्ट्रोद्धार की भावना से आन्दोलित होता रहता है। उसके मन में इस प्रकार का

अन्तर्द्वन्द बहुत समय तक चलता है। अन्ततः वह अपनी प्रिया के द्वारा प्रेरित किये जाने पर राष्ट्र प्रेम को प्राथमिकता देता है और शत्रुओं द्वारा पदाक्रान्त स्वेदश की रक्षा एवं उद्धार करने में सफल हो जाता है। इस प्रकार की भावनाओं से परिपूर्ण होने के कारण रामनरेश त्रिपाठी के काव्य बहुत दिनों तक राष्ट्रप्रेमी नवयुवकों के कण्ठहार बन हुए थे।

प्रकृति चित्रण

रामनरेश त्रिपाठी अपनी काव्य कृतियों में प्रकृति के सफल चितेरे रहे हैं। इन्होंने प्रकृति चित्रण व्यापक, विशद और स्वतंत्र रूप में किया है। इनके सहज-मनोरम प्रकृति-चित्रों में कहीं-कहीं छायावाद की झलक भी मिल जाती है। उदाहरण के लिए 'पथिक' की दो पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-

"प्रति क्षण नूतन वेष बनाकर रंग-विरंग निराला।
रवि के सम्मुख थिरक रही है नभ में वारिद माला"

भाषा

प्रकृति चित्र हों, या अन्यान्य प्रकार के वर्णन, सर्वत्र रामनरेश त्रिपाठी ने भाषा का बहुत ख्याल रखा है। इनके काव्यों की भाषा शुद्ध, सहज खड़ी बोली है, जो इस रूप में हिन्दी काव्य में प्रथम बार प्रयुक्त दिखाई देती है। इनमें व्याकरण तथा वाक्य-रचना सम्बन्धी त्रुटियाँ नहीं मिलतीं। इन्होंने कहीं-कहीं उर्दू के प्रचलित शब्दों और उर्दू-छन्दों का भी व्यवहार किया है-

"मेरे लिए खड़ा था दुखियों के द्वार पर तू।
मैं बाट जोहता था तेरी किसी चमन में।
बनकर किसी के आँसू मेरे लिए बहा तू।
मैं देखता तुझे था माशूक के बदन में"।।

कृतियाँ

उपन्यास तथा नाटक

रामनरेश त्रिपाठी ने काव्य-रचना के अतिरिक्त उपन्यास तथा नाटक लिखे हैं, आलोचनाएँ की हैं और टीका भी। इनके तीन उपन्यास उल्लेखनीय हैं-

'वीरागंना' (1911 ई.),
'वीरबाला' (1911 ई.),
'लक्ष्मी' (1924 ई.)

नाट्य कृतियाँ

तीन उल्लेखनीय नाट्य कृतियाँ हैं-
'सुभद्रा' (1924 ई.),
'जयन्त' (1934 ई.),
'प्रेमलोक' (1934 ई.)

रचनाएं

अन्वेषण

मैं ढूँढता तुझे था, जब कुंज और वन में।
तू खोजता मुझे था, तब दीन के सदन में।
तू 'आह' बन किसी की, मुझको पुकारता था।
मैं था तुझे बुलाता, संगीत में भजन में।
मेरे लिए खड़ा था, दुखियों के द्वार पर तू।
मैं बाट जोहता था, तेरी किसी चमन में।
बनकर किसी के आँसू, मेरे लिए बहा तू।
आँखे लगी थीं मेरी, तब मान और धन में।
बाजे बजाबजा कर, मैं था तुझे रिझाता।
तब तू लगा हुआ था, पतितों के संगठन में।
मैं था विरक्त तुझसे, जग की अनित्यता पर।
उत्थान भर रहा था, तब तू किसी पतन में।
बेबस गिरे हुओं के, तू बीच में खड़ा था।
मैं स्वर्ग देखता था, झुकता कहाँ चरन में।
तूने दिया अनेकों अवसर न मिल सका मैं।
तू कर्म में मगन था, मैं व्यस्त था कथन में।
तेरा पता सिकंदर को, मैं समझ रहा था।
पर तू बसा हुआ था, फरहाद कोहकन में।

क्रीसस की 'हाय' में था, करता विनोद तू ही।
तू अंत में हंसा था, महमूद के रुदन में।
प्रहलाद जानता था, तेरा सही ठिकाना।
तू ही मचल रहा था, मंसूर की रटन में।
आखिर चमक पड़ा तू गाँधी की हड्डियों में।
मैं था तुझे समझता, सुहराब पीले तन में।
कैसे तुझे मिलूँगा, जब भेद इस कदर है।
हैरान होके भगवन, आया हूँ मैं सरन में।
तू रूप कै किरन में सौंदर्य है सुमन में।
तू प्राण है पवन में, विस्तार है गगन में।
तू ज्ञान हिन्दुओं में, ईमान मुस्लिमों में।
तू प्रेम क्रिश्चियन में, तू सत्य है सुजन में।
हे दीनबंधु ऐसी, प्रतिभा प्रदान कर तू।
देखूँ तुझे दृगों में, मन में तथा वचन में।
कठिनाइयों दुखों का, इतिहास ही सुयश है।
मुझको समर्थ कर तू, बस कष्ट के सहन में।
दुख में न हार मानूँ, सुख में तुझे न भूलूँ।
ऐसा प्रभाव भर दे, मेरे अधीर मन में।
हे प्रभु आनंददाता
हे प्रभु आनंददाता ज्ञान हमको दीजिये,
शीघ्र सारे दुर्गुणों को दूर हमसे कीजिए,
लीजिये हमको शरण में, हम सदाचारी बनें,
ब्रह्मचारी धर्म-रक्षक वीर व्रत धारी बनें,
हे प्रभु आनंददाता ज्ञान हमको दीजिये...
निंदा किसी की हम किसी से भूल कर भी न करें,
ईर्ष्या कभी भी हम किसी से भूल कर भी न करें,
हे प्रभु आनंददाता ज्ञान हमको दीजिये...
सत्य बोलें, झूठ त्यागें, मेल आपस में करें,
दिव्य जीवन हो हमारा, यश तेरा गाया करें,
हे प्रभु आनंददाता ज्ञान हमको दीजिये...
जाये हमारी आयु हे प्रभु लोक के उपकार में,

हाथ डालें हम कभी न भूल कर अपकार में,
हे प्रभु आनंददाता ज्ञान हमको दीजिये...
कीजिए हम पर कृपा ऐसी हे परमात्मा,
मोह मद मत्सर रहित होवे हमारी आत्मा,
हे प्रभु आनंददाता ज्ञान हमको दीजिये...
प्रेम से हम गुरु जनों की नित्य ही सेवा करें,
प्रेम से हम संस्कृति की नित्य ही सेवा करें,
हे प्रभु आनंददाता ज्ञान हमको दीजिये...
योग विद्या ब्रह्म विद्या हो अधिक प्यारी हमें,
ब्रह्म निष्ठा प्राप्त कर के सर्व हितकारी बनें,
हे प्रभु आनंददाता ज्ञान हमको दीजिये...
वह देश कौन-सा है
मन मोहनी प्रकृति की गोद में जो बसा है।
सुख स्वर्ग-सा जहाँ है वह देश कौन-सा है।।
जिसका चरण निरंतर रतनेश धो रहा है।
जिसका मुकुट हिमालय वह देश कौन-सा है।।
नदियाँ जहाँ सुधा की धारा बहा रही हैं।
सींचा हुआ सलोना वह देश कौन-सा है।।
जिसके बड़े रसीले फल कंद नाज मेवे।
सब अंग में सजे हैं वह देश कौन-सा है।।
जिसमें सुगंध वाले सुंदर प्रसून प्यारे।
दिन रात हँस रहे हैं वह देश कौन-सा है।।
मैदान गिरि वनों में हरियालियाँ लहकती।
आनंदमय जहाँ है वह देश कौन-सा है।।
जिसके अनंत धन से धरती भरी पड़ी है।
संसार का शिरोमणि वह देश कौन-सा है।।

अन्य कृतियाँ

आलोचनात्मक कृतियों के रूप में इनकी दो पुस्तकें 'तुलसीदास और उनकी कविता' तथा 'हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास' विचारणीय हैं। टीकाकार के रूप में अपनी 'रामचरितमानस की टीका' के कारण स्मरण किये

जाते हैं। 'तीस दिन मालवीय जी के साथ' त्रिपाठी जी की उत्कृष्ट संस्मरणात्मक कृति है। इनके साहित्यिक कृतित्त्व का एक महत्त्वपूर्ण भाग सम्पादन कार्यों के अंतर्गत आता है। सन् 1925 ई. में इन्होंने हिन्दी, उर्दू, संस्कृत और बांग्ला की लोकप्रिय कविताओं का संकलन और सम्पादन किया। इनका यह कार्य आठ भागों में 'कविता कौमुदी' के नाम से प्रकाशित हुआ है। इसी में एक भाग ग्राम-गीतों का है। ग्राम-गीतों के संकलन, सम्पादन और उनके भावात्मक भाष्य प्रस्तुत करने की दृष्टि से इनका कार्य विशेष रूप से उल्लेखनीय रहा है। ये हिन्दी में इस दिशा में कार्य करने वाले पहले व्यक्ति रहे हैं और इन्हें पर्याप्त सफलता तथा कीर्ति मिली है। 1931 से 1941 ई. तक इन्होंने 'वानर' का सम्पादन तथा प्रकाशन किया था। इनके द्वारा सम्पादित और मौलिक रूप में लिखित बालकोपयोगी साहित्य भी बहुत अधिक मात्रा में उपलब्ध है।

प्रसिद्धि

रामनरेश त्रिपाठी की प्रसिद्धि मुख्यतः इनके कवि-रूप के कारण हुई। ये 'द्विवेदीयुग' और 'छायावाद युग' की महत्त्वपूर्ण कड़ी के रूप में आते हैं। पूर्व छायावाद युग के खड़ी बोली के कवियों में इनका नाम बहुत आदर से लिया जाता है। इनका प्रारम्भिक कार्य-क्षेत्र राजस्थान और इलाहाबाद रहा। इन्होंने अन्तिम जीवन सुल्तानपुर में बिताया।

मृत्यु

रामनरेश त्रिपाठी ने 16 जनवरी, 1962 को अपने कर्मभूमि प्रयाग में ही अंतिम सांस ली। पंडित त्रिपाठी के निधन के बाद आज उनके गृह जनपद सुलतानपुर में एक मात्र सभागार स्थापित है, जो उनकी स्मृतियों को ताजा करता है।

12

सुभद्रा कुमारी चौहान

सुभद्रा कुमारी चौहान हिन्दी की सुप्रसिद्ध कवयित्री और लेखिका थीं। उनके दो कविता संग्रह तथा तीन कथा संग्रह प्रकाशित हुए पर उनकी प्रसिद्धि झाँसी की रानी (कविता) के कारण है। ये राष्ट्रीय चेतना की एक सजग कवयित्री रही हैं, किन्तु इन्होंने स्वाधीनता संग्राम में अनेक बार जेल यातनाएँ सहने के पश्चात अपनी अनुभूतियों को कहानी में भी व्यक्त किया। वातावरण चित्रण-प्रधान शैली की भाषा सरल तथा काव्यात्मक है, इस कारण इनकी रचना की सादगी हृदयग्राही है।

जीवन परिचय

उनका जन्म नागपंचमी के दिन इलाहाबाद के निकट निहालपुर नामक गांव में रामनाथसिंह के जमींदार परिवार में हुआ था। बाल्यकाल से ही वे कविताएँ रचने लगी थीं। उनकी रचनाएँ राष्ट्रीयता की भावना से परिपूर्ण हैं। सुभद्रा कुमारी चौहान, चार बहनें और दो भाई थे। उनके पिता ठाकुर रामनाथ सिंह शिक्षा के प्रेमी थे और उन्हीं की देख-रेख में उनकी प्रारम्भिक शिक्षा भी हुई। 1919 में खंडवा के ठाकुर लक्ष्मण सिंह के साथ विवाह के बाद वे जबलपुर आ गई थीं। 1921 में गांधी जी के असहयोग आंदोलन में भाग लेने वाली वह प्रथम महिला थीं। वे दो बार जेल भी गई थीं। सुभद्रा कुमारी चौहान की जीवनी, इनकी पुत्री, सुधा चौहान ने 'मिला तेज से तेज' नामक पुस्तक में लिखी है। इसे हंस प्रकाशन,

इलाहाबाद ने प्रकाशित किया है। वे एक रचनाकार होने के साथ-साथ स्वाधीनता संग्राम की सेनानी भी थीं। डॉव मंगला अनुजा की पुस्तक सुभद्रा कुमारी चौहान उनके साहित्यिक व स्वाधीनता संघर्ष के जीवन पर प्रकाश डालती है। साथ ही स्वाधीनता आंदोलन में उनके कविता के जरिए नेतृत्व को भी रेखांकित करती है। 15 फरवरी 1948 को एक कार दुर्घटना में उनका आकस्मिक निधन हो गया था।

कथा साहित्य

'बिखरे मोती' उनका पहला कहानी संग्रह है। इसमें भग्नावशेष, होली, पापीपेट, मंझलीरानी, परिवर्तन, दृष्टिकोण, कदम के फूल, किस्मत, मछुये की बेटी, एकादशी, आहुति, थाती, अमराई, अनुरोध, व ग्रामीणा कुल 15 कहानियां हैं! इन कहानियों की भाषा सरल बोलचाल की भाषा है! अधिकांश कहानियां नारी विमर्श पर केंद्रित हैं! उन्मादिनी शीर्षक से उनका दूसरा कथा संग्रह 1934 में छपा। इस में उन्मादिनी, असमंजस, अभियुक्त, सोने की कंठी, नारी हृदय, पवित्र ईर्ष्या, अंगूठी की खोज, चढ़ा दिमाग, व वेश्या की लड़की कुल 9 कहानियां हैं। इन सब कहानियों का मुख्य स्वर पारिवारिक सामाजिक परिदृश्य ही है। 'सीधे साधे चित्र' सुभद्रा कुमारी चौहान का तीसरा व अंतिम कथा संग्रह है। इसमें कुल 14 कहानियां हैं। रूपा, कैलाशी नानी, बिआल्हा, कल्याणी, दो साथी, प्रोफेसर मित्रा, दुराचारी व मंगला –8 कहानियों की कथावस्तु नारी प्रधान पारिवारिक सामाजिक समस्यायें हैं। हींगवाला, राही, तांगे वाला, एवं गुलाबसिंह कहानियां राष्ट्रीय विषयों पर आधारित हैं। सुभद्रा कुमारी चौहान ने कुल 46 कहानियां लिखीं और अपनी व्यापक कथा दृष्टि से वे एक अति लोकप्रिय कथाकार के रूप में हिन्दी साहित्य जगत में सुप्रतिष्ठित हैं!

सुभद्रा कुमारी चौहान हिन्दी की सुप्रसिद्ध कवयित्री और लेखिका थीं। उनके दो कविता संग्रह तथा तीन कथा संग्रह प्रकाशित हुए, पर उनकी प्रसिद्धि 'झाँसी की रानी' कविता के कारण है।

'चमक उठी सन् सत्तावन में
वह तलवार पुरानी थी
बुंदेले हरबोलों के मुँह
हमने सुनी कहानी थी

खूब लड़ी मरदानी वह तो
झाँसी वाली रानी थी।

वीर रस से ओत प्रोत इन पंक्तियों की रचयिता सुभद्रा कुमारी चौहान को 'राष्ट्रीय वसंत की प्रथम कोकिला' का विरुद्ध दिया गया था। यह वह कविता है, जो जन-जन का कंठहार बनी। कविता में भाषा का ऐसा ऋजु प्रवाह मिलता है कि वह बालकों-किशोरों को सहज ही कंठस्थ हो जाती है। कथनी-करनी की समानता सुभद्रा जी के व्यक्तित्त्व का प्रमुख अंग है। इनकी रचनाएँ सुनकर मरणासन्न व्यक्ति भी ऊर्जा से भर सकता है। ऐसा नहीं कि कविता केवल सामान्य जन के लिए ग्राह्य है, यदि काव्य-रसिक उसमें काव्यत्व खोजना चाहें तो वह भी है -

हुई वीरता की वैभव के साथ सगाई झाँसी में

लक्ष्मीबाई की वीरता का राजमहलों की समृद्धि में आना जैसा एक मणिकांचन योग था, कदाचित उसके लिए 'वीरता और वैभव की सगाई' से उपयुक्त प्रयोग दूसरा नहीं हो सकता था। स्वतंत्रता संग्राम के समय के जो अगणित कविताएँ लिखी गईं, उनमें इस कविता और माखनलाल चतुर्वेदी 'एक भारतीय आत्मा' की पुष्प की अभिलाषा का अनुपम स्थान है। सुभद्रा जी का नाम मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा नवीन की यशस्वी परम्परा में आदर के साथ लिया जाता है। वह बीसवीं शताब्दी की सर्वाधिक यशस्वी और प्रसिद्ध कवयित्रियों में अग्रणी हैं।

जीवन परिचय

सुभद्रा कुमारी चौहान का जन्म नागपंचमी के दिन 16 अगस्त 1904 को इलाहाबाद के पास निहालपुर गाँव में हुआ था। उनके पिता का नाम 'ठाकुर रामनाथ सिंह' था। सुभद्रा कुमारी की काव्य प्रतिभा बचपन से ही सामने आ गई थी। आपका विद्यार्थी जीवन प्रयाग में ही बीता। 'क्रास्थवेट गर्ल्स कॉलेज' में आपने शिक्षा प्राप्त की। 1913 में नौ वर्ष की आयु में सुभद्रा की पहली कविता प्रयाग से निकलने वाली पत्रिका 'मर्यादा' में प्रकाशित हुई थी। यह कविता 'सुभद्राकुँवरि' के नाम से छपी। यह कविता 'नीम' के पेड़ पर लिखी गई थी। सुभद्रा चंचल और कुशाग्र बुद्धि की थीं। पढ़ाई में प्रथम आने पर उसको इनाम

मिलता था। सुभद्रा अत्यंत शीघ्र कविता लिख डालती थी, मानो उनको कोई प्रयास ही न करना पड़ता हो। स्कूल के काम की कविताएँ तो वह साधारणतया घर से आते-जाते तांगे में लिख लेती थीं। इसी कविता की रचना करने के कारण से स्कूल में उसकी बड़ी प्रसिद्धि थी।

बचपन

सुभद्रा और महादेवी वर्मा दोनों बचपन की सहेलियाँ थीं। दोनों ने एक-दूसरे की कीर्ति से सुख पाया। सुभद्रा की पढ़ाई नवीं कक्षा के बाद छूट गई। शिक्षा समाप्त करने के बाद नवलपुर के सुप्रसिद्ध 'ठाकुर लक्ष्मण सिंह' के साथ आपका विवाह हो गया। बाल्यकाल से ही साहित्य में रुचि थी। प्रथम काव्य रचना आपने 15 वर्ष की आयु में ही लिखी थी। सुभद्रा कुमारी का स्वभाव बचपन से ही दबंग, बहादुर व विद्रोही था। वह बचपन से ही अशिक्षा, अंधविश्वास, जाति आदि रूढ़ियों के विरुद्ध लड़ीं।

विवाह

1919 ई. में उनका विवाह 'ठाकुर लक्ष्मण सिंह' से हुआ, विवाह के पश्चात् वे जबलपुर में रहने लगीं। सुभद्राकुमारी चौहान अपने नाटककार पति लक्ष्मणसिंह के साथ शादी के डेढ़ वर्ष के होते ही सत्याग्रह में शामिल हो गईं और उन्होंने जेलों में ही जीवन के अनेक महत्त्वपूर्ण वर्ष गुजारे। गृहस्थी और नन्हें-नन्हें बच्चों का जीवन सँवारते हुए उन्होंने समाज और राजनीति की सेवा की। देश के लिए कर्तव्य और समाज की जिम्मेदारी सँभालते हुए उन्होंने व्यक्तिगत स्वार्थ की बलि चढ़ा दी-

न होने दूँगी अत्याचार, चलो मैं हो जाऊँ बलिदान।

सुभद्रा जी ने बहुत पहले अपनी कविताओं में भारतीय संस्कृति के प्राणतत्त्वों, धर्मनिरपेक्ष समाज का निर्माण और सांप्रदायिक सद्भाव का वातावरण बनाने के प्रयत्नों को रेखांकित कर दिया था-

मेरा मंदिर, मेरी मस्जिद, काबा-काशी यह मेरी
पूजा-पाठ, ध्यान जप-तप है घट-घट वासी यह मेरी।
कृष्णचंद्र की क्रीड़ाओं को, अपने आँगन में देखो।
कौशल्या के मातृमोद को, अपने ही मन में लेखो।
प्रभु ईसा की क्षमाशीलता, नबी मुहम्मद का विश्वास

जीव दया जिन पर गौतम की, आओ देखो इसके पास।

जबलपुर से माखनलाल चतुर्वेदी 'कर्मवीर' पत्र निकालते थे। उसमें लक्ष्मण सिंह को नौकरी मिल गईं। सुभद्रा भी उनके साथ जबलपुर आ गईं। सुभद्रा जी सास के अनुशासन में रहकर सुघड़ गृहिणी बनकर संतुष्ट नहीं थीं। उनके भीतर जो तेज था, काम करने का उत्साह था, कुछ नया करने की जो लगन थी, उसके लिए घर की सीमा बहुत छोटी थी। सुभद्रा जी में लिखने की प्रतिभा थी और अब पति के रूप में उन्हें ऐसा व्यक्ति मिला था जिसने उनकी प्रतिभा को पनपने के लिए उचित वातावरण देने का प्रयत्न किया।

स्वतंत्रता में योगदान

1920-21 में सुभद्रा और लक्ष्मण सिंह अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्य थे। उन्होंने नागपुर कांग्रेस अधिवेशन में भाग लिया और घर-घर में कांग्रेस का संदेश पहुँचाया। त्याग और सादगी में सुभद्रा जी सफेद खादी की बिना किनारी धोती पहनती थीं। गहनों और कपड़ों का बहुत शौक होते हुए भी वह चूड़ी और बिंदी का प्रयोग नहीं करती थीं। उन को सादा वेशभूषा में देख कर बापू ने सुभद्रा जी से पूछ ही लिया, 'बेन! तुम्हारा ब्याह हो गया है?' सुभद्रा ने कहा, 'हाँ!' और फिर उत्साह से बताया कि मेरे पति भी मेरे साथ आए हैं। इसको सुनकर बा और बापू जहाँ आश्वस्त हुए वहाँ कुछ नाराज भी हुए। बापू ने सुभद्रा को डाँटा, 'तुम्हारे माथे पर सिन्दूर क्यों नहीं है और तुमने चूड़ियाँ क्यों नहीं पहनीं? जाओ, कल किनारे वाली साड़ी पहनकर आना।' सुभद्रा जी के सहज स्नेही मन और निश्छल स्वभाव का जादू सभी पर चलता था। उनका जीवन प्रेम से युक्त था और निरंतर निर्मल प्यार बाँटकर भी खाली नहीं होता था।

1922 का जबलपुर का 'झंडा सत्याग्रह' देश का पहला सत्याग्रह था और सुभद्रा जी की पहली महिला सत्याग्रही थीं। रोज-रोज सभाएँ होती थीं और जिनमें सुभद्रा भी बोलती थीं। 'टाइम्स ऑफ इंडिया' के संवाददाता ने अपनी एक रिपोर्ट में उनका उल्लेख लोकल सरोजिनी कहकर किया था। सुभद्रा जी में बड़े सहज ढंग से गंभीरता और चंचलता का अद्‌भुत संयोग था। वे जिस सहजता से देश की पहली स्त्री सत्याग्रही बनकर जेल जा सकती थीं, उसी तरह अपने घर में, बाल-बच्चों में और गृहस्थी के छोटे-मोटे कामों में भी रमी रह सकती थीं।

लक्ष्मणसिंह चौहान जैसे जीवनसाथी और माखनलाल चतुर्वेदी जैसा पथ–प्रदर्शक पाकर वह स्वतंत्रता के राष्ट्रीय आन्दोलन में बराबर सक्रिय भाग लेती रहीं। कई बार जेल भी गईं। काफी दिनों तक मध्य प्रांत असेम्बली की कांग्रेस सदस्या रहीं और साहित्य एवं राजनीतिक जीवन में समान रूप से भाग लेकर अन्त तक देश की एक जागरूक नारी के रूप में अपना कर्तव्य निभाती रहीं। गांधी जी की असहयोग की पुकार को पूरा देश सुन रहा था। सुभद्रा ने भी स्कूल से बाहर आकर पूरे मन–प्राण से असहयोग आंदोलन में अपने को दो रूपों में झोंक दिया।

देश –सेविका के रूप में
देशभक्त कवि के रूप में।

'जलियांवाला बाग,' 1917 के नृशंस हत्याकांड से उनके मन पर गहरा आघात लगा। उन्होंने तीन आग्नेय कविताएँ लिखीं। 'जलियाँवाले बाग में वसंत' में उन्होंने लिखा–

परिमलहीन पराग दाग–सा बना पड़ा है
हा! यह प्यारा बाग खून से सना पड़ा है।
आओ प्रिय ऋतुराज! किंतु धीरे से आना
यह है शोक स्थान यहाँ मत शोर मचाना।
कोमल बालक मरे यहाँ गोली खा–खाकर
कलियाँ उनके लिए गिराना थोड़ी लाकर।

सन 1920 में जब चारों ओर गांधी जी के नेतृत्व की धूम थी, तो उनके आह्वान पर दोनों पति–पत्नि स्वतंत्रता आन्दोलन में सक्रिय भाग लेने के लिए कटिबद्ध हो गए। उनकी कविताई इसीलिए आजादी की आग से ज्वालामयी बन गई है।

रचनाएँ

उन्होंने लगभग 88 कविताओं और 46 कहानियों की रचना की। किसी कवि की कोई कविता इतनी अधिक लोकप्रिय हो जाती है कि शेष कविताई प्रायः गौण होकर रह जाती है। बच्चन की 'मधुशाला' और सुभद्रा जी की इस कविता के समय यही हुआ। यदि केवल लोकप्रियता की दृष्टि से ही विस्तार करें तो उनकी कविता पुस्तक 'मुकुल' 1930 के छह संस्करण उनके जीवन काल में ही हो जाना कोई सामान्य बात नहीं है। इनका पहला काव्य–संग्रह

'मुकुल' 1930 में प्रकाशित हुआ। इनकी चुनी हुई कविताएँ 'त्रिधारा' में प्रकाशित हुई हैं। 'झाँसी की रानी' इनकी बहुचर्चित रचना है। राष्ट्रीय आंदोलन में सक्रिय भागीदारी और जेल यात्रा के बाद भी उनके तीन कहानी संग्रह प्रकाशित हुए–

'बिखरे मोती (1932),
उन्मादिनी (1934),
सीधे–सादे चित्र (1947)।

इन कथा संग्रहों में कुल 38 कहानियाँ (क्रमशः पंद्रह, नौ और चौदह)। सुभद्रा जी की समकालीन स्त्री–कथाकारों की संख्या अधिक नहीं थीं।

स्त्रियों की प्रेरणा

राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय भूमिका निभाते हुए, उस आनन्द और जोश में सुभद्रा जी ने जो कविताएँ लिखीं, वे उस आन्दोलन में एक नयी प्रेरणा भर देती हैं। स्त्रियों को सम्बोधन करती यह कविता देखिए––

'सबल पुरुष यदि भीरु बनें, तो हमको दे वरदान सखी।
अबलाएँ उठ पड़ें देश में, करें युद्ध घमासान सखी।
पंद्रह कोटि असहयोगिनियाँ, दहला दें ब्रह्मांड सखी।
भारत लक्ष्मी लौटाने को , रच दें लंका काण्ड सखी।।'

असहयोग आन्दोलन के लिए यह आह्वान इस शैली में तब हुआ है, जब स्त्री सशक्तीकरण का ऐसा अधिक प्रभाव नहीं था।

1922 का जबलपुर का 'झंडा सत्याग्रह' देश का पहला सत्याग्रह था और सुभद्रा जी की पहली महिला सत्याग्रही थीं। रोज–रोज सभाएँ होती थीं और जिनमें सुभद्रा भी बोलती थीं। 'टाइम्स ऑफ इंडिया' के संवाददाता ने अपनी एक रिपोर्ट में उनका उल्लेख लोकल सरोजिनी कहकर किया था।

देशप्रेम

वीरों का कैसा हो वसन्त' उनकी एक ओर प्रसिद्ध देश–प्रेम की कविता है, जिसकी शब्द–रचना, लय और भाव–गर्भिता अनोखी थी। 'स्वदेश के प्रति', 'विजयादशमी', 'विदाई', 'सेनानी का स्वागत', 'झाँसी की रानी की संधि मापर', 'जलियाँ वाले बाग में बसन्त' आदि श्रेष्ठ कवित्व से भरी उनकी अन्य सशक्त कविताएँ हैं।

राष्ट्रभाषा प्रेम

'राष्ट्रभाषा' के प्रति भी उनका गहरा सरोकार है, जिसकी सजग अभिव्यक्ति 'मातृ मन्दिर में', नामक कविता में हुई है, यह उनकी राष्ट्रभाषा के उत्कर्ष के लिए चिन्ता है –

'उस हिन्दू जन की गरविनी
हिन्दी प्यारी हिन्दी का
प्यारे भारतवर्ष कृष्ण की
उस प्यारी कालिन्दी का
है उसका ही समारोह यह
उसका ही उत्सव प्यारा
मैं आश्चर्य भरी आंखों से
देख रही हूँ यह सारा
जिस प्रकार कंगाल बालिका
अपनी माँ धनहीता को
टुकड़ों की मोहताज आज तक
दुखिनी की उस दीना को'

काव्य में प्रेमानुभुति

सुभद्राकुमारी चौहान नारी के रूप में ही रहकर साधारण नारियों की आकांक्षाओं और भावों को व्यक्त करती हैं। बहन, माता, पत्नी के साथ-साथ एक सच्ची देश सेविका के भाव उन्होंने व्यक्त किए हैं। उनकी शैली में वही सरलता है, वही अकृत्रिमता और स्पष्टता है, जो उनके जीवन में है।

–गजानन माधव मुक्तिबोध

तरल जीवनानुभूतियों से उपजी सुभद्रा कुमारी चौहान कि कविता का प्रेम दूसरा आधार-स्तम्भ है। यह प्रेम द्विमुखी है। शैशव –बचपन से प्रेम और दूसरा दाम्पत्य प्रेम, 'तीसरे' की उपस्थिति का यहाँ पर सवाल ही नहीं है।

बचपन से प्रेम

शैशव से प्रेम पर जितनी सुन्दर कविताएँ उन्होंने लिखी हैं, भक्तिकाल के बाद वे अतुलनीय हैं। निर्दोष और अल्हड़ बचपन को जिस प्रकार स्मृति में

बसाकर उन्होंने मधुरता से अभिव्यक्त किया है, वे कभी पुरानी न पड़ने वाली कविता है। उदाहरणार्थ –

‘बार-बार आती है मुझको
मधुर याद बचपन तेरी’,
‘आ जा बचपन, एक बार फिर
दे दो अपनी निर्मल शान्ति
व्याकुल व्यथा मिटाने वाली
वह अपनी प्राकृत विश्रांति।’

अपनी संतति में मनुष्य किस प्रकार ‘मेरा नया बचपन कविता’ कविता में मार्मिक अभिव्यक्ति पाता है-

‘मैं बचपन को बुला रही थी
बोल उठी बिटिया मेरी
नंदन वन सी फूल उठी
यह छोटी-सी कुटिया मेरी।।’

शैशव सम्बन्धी इन कविताओं की एक और बहुत बड़ी विशेषता है, कि ये ‘बिटिया प्रधान’ कविताएँ हैं –कन्या भ्रूण-हत्या की बात तो हम आज जोर-शोर से कर रहे हैं, किन्तु बहुत ही चुपचाप, बिना मुखरता के, सुभद्रा इस विचार को सहजता से व्यक्त करती हैं। यहाँ ‘अगले जनम मोहे बिटिया न कीजो’ का भाव नहीं, अपितु संसार का समस्त सुख बेटी में देखा गया है। ‘बालिका का परिचय’ बिटिया के महत्त्व को इस प्रकार प्रस्थापित करती हैं-

‘दीपशिखा है अंधकार की
घनी घटा की उजियाली
ऊषा है यह कमल-भृंग की
है पतझड़ की हरियाली।’

कहा जाता है कि उन्होंने अपनी पुत्री का कन्यादान करने से मना कर दिया कि ‘कन्या कोई वस्तु नहीं कि उसका दान कर दिया जाए।’ स्त्री-स्वातंत्य का कितना बड़ा पग था वह।

दाम्पत्य प्रेम

प्रेम की कविताओं में जीवन-साथी के प्रति अटूट प्रेम, निष्ठा एवं रागात्मकता के दर्शन होते हैं–‘प्रियतम से’, ‘चिन्ता’, ‘मनुहार राधे।’, ‘आहत की

अभिलाषा', 'प्रेम श्रृखला', 'अपराधी है कौन', 'दण्ड का भागी बनता कौन', आदि उनकी बहुत सुन्दर प्रेम कविताएँ हैं। दाम्पत्य की रूठने और मनुहार करती 'प्रियतम से' कविता का यह अंश देखिए-

'जरा-जरा सी बातों पर
मत रुको मेरे अभिमानी
लो प्रसन्न हो जाओ
गलती मैंने अपनी सब मानी
मैं भूलों की भरी पिटारी
और दया के तुम आगार
सदा दिखाई दो तुम हँसते
चाहे मुझसे करो न प्यार। '

अपने और प्रिय और बीच किसी 'तीसरे' की उपस्थिति उनके लिए पूर्ण असहनीय है। 'मानिनि राध', कविता में व्यक्त यह आक्रोश पूरे साहित्य में विरल है-

'खूनी भाव उठें उसके प्रति
जो हों प्रिय का प्यारा
उसके लिए हृदय यह मेरा
बन जाता हत्यारा।'

दाम्पत्य की विषम, विर्तुल और गोपन स्थितियों की जिस अकुंठ भाव से अभिव्यक्ति सुभद्रा कुमारी चौहान ने की है, वह बड़ी मार्मिक बन पड़ी है-

'यह मर्म-कथा अपनी ही है
औरों की नहीं सुनाऊँगी
तुम रूठो सौ-सौ बार तुम्हें
पैरों पड़ सदा मनाऊँगी
बस, बहुत हो चुका, क्षमा करो
अवसाद हटा दो अब मेरा
खो दिया जिसे मद जिसे मद में मैंने
लाओ, दे दो वह सब मेरा।'

भक्ति भावना

उनका भक्ति-भाव भी प्रबल है। पूर्ण मन से प्रभु के सम्मुख सर्वात्म समर्पण की इससे सुन्दर, सहज अभिव्यक्ति नहीं की जा सकती-

'देव! तुम्हारे कई उपासक
कई ढंग से आते
में बहुमूल्य भेंट व
कई रंग की लाते हैं।'

प्रकृति प्रेम

प्रकृति से भी सुभद्रा कुमारी चौहान के कवि का गहन अनुराग रहा है--'नीम', 'फूल के प्रति', 'मुरझाया फूल' आदि में उन्होंने प्रकृति का चित्रण बड़े सहज भाव से किया है। इस प्रकार सुभद्रा कुमारी चौहान की कविता का फलक अत्यन्त व्यापक है, किंतु फिर भी.........खूब लड़ी मर्दानी, वह तो झाँसी वाली रानी थी, उनकी अक्षय कीर्ति का ऐसा स्तम्भ है जिस पर काल की बात अपना कोई प्रभाव नहीं छोड़ पायेगी, यह कविता जन-जन का हृदयहार बनी ही रहेगी।

बाल कविताएँ

सुभद्रा जी ने मातृत्व से प्रेरित होकर बहुत सुंदर बाल कविताएँ भी लिखी हैं। यह कविताएँ भी उनकी राष्ट्रीय भावनाओं से ओत प्रोत हैं। 'सभा का खेल' नामक कविता में, खेल-खेल में राष्ट्रीय भाव जगाने का प्रयास इस प्रकार किया है -

सभा-सभा का खेल आज हम खेलेंगे,
जीजी आओ मैं गांधी जी, छोटे नेहरू, तुम सरोजिनी बन जाओ।
मेरा तो सब काम लंगोटी गमछे से चल जाएगा,
छोटे भी खद्दर का कुर्ता पेटी से ले आएगा।
मोहन, लल्ली पुलिस बनेंगे,
हम भाषण करने वाले वे लाठियाँ चलाने वाले,
हम घायल मरने वाले।

इस कविता में बच्चों के खेल, गांधी जी का संदेश, नेहरू जी के मन में गांधी जी के प्रति भक्ति, सरोजिनी नायडू की सांप्रदायिक एकता संबंधी विचारधारा को बड़ी खूबी से व्यक्त किया गया है। असहयोग आंदोलन के वातावरण में पले-बढ़े बच्चों के लिए ऐसे खेल स्वाभाविक थे। प्रसिद्ध हिन्दी कवि गजानन माधव मुक्तिबोध ने सुभद्रा जी के राष्ट्रीय काव्य को हिन्दी में

बेजोड़ माना है—कुछ विशेष अर्थों में सुभद्रा जी का राष्ट्रीय काव्य हिन्दी में बेजोड़ है। क्योंकि उन्होंने उस राष्ट्रीय आदर्श को जीवन में समाया हुआ देखा है, उसकी प्रवृत्ति अपने अंत:करण में पाई है, अत: वह अपने समस्त जीवन-संबंधों को उसी प्रवृत्ति की प्रधानता पर आश्रित कर देती हैं, उन जीवन संबंधों को उस प्रवृत्ति के प्रकाश में चमका देती हैं। सुभद्राकुमारी चौहान नारी के रूप में ही रहकर साधारण नारियों की आकांक्षाओं और भावों को व्यक्त करती हैं। बहन, माता, पत्नी के साथ-साथ एक सच्ची देश सेविका के भाव उन्होंने व्यक्त किए हैं। उनकी शैली में वही सरलता है, वही अकृत्रिमता और स्पष्टता है, जो उनके जीवन में है। उनमें एक ओर जहाँ नारी-सुलभ गुणों का उत्कर्ष है, वहाँ वह स्वदेश प्रेम और देशाभिमान भी है, जो एक क्षत्रिय नारी में होना चाहिए।

नारी समाज का विश्वास

सुभद्रा जी की बेटी सुधा चौहान का विवाह प्रसिद्ध साहित्यकार प्रेमचंद के पुत्र अमृतराय से हुआ था जो स्वयं अच्छे लेखक थे। सुधा ने उनकी जीवनी लिखी—मिला तेज से तेज। सुभद्रा जी का पूरा जीवन सक्रिय राजनीति में बीता। वह नगर की सबसे पुरानी कार्यकर्त्री थीं। 1930 –31 और 1941 –42 में जबलपुर की आम सभाओं में स्त्रियाँ बहुत बड़ी संख्या में एकत्र होती थीं जो एक नया ही अनुभव था। स्त्रियों की इस जागृति के पीछे सुभद्रा जी थीं जो उनकी तैयार की गई टोली के अनवरत प्रयास का फल था। सन् 1920 से ही वे सभाओं में पर्दे का विरोध, रूढ़ियों के विरोध, छुआछूत हटाने के पक्ष में और स्त्री-शिक्षा के प्रचार के लिए बोलती रही थीं। उन सबसे बहुत-सी बातों में अलग होकर भी वह उन्हीं में से एक थीं। उनमें भारतीय नारी की सहज शील और मर्यादा थी, इस कारण उन्हें नारी समाज का पूरा विश्वास प्राप्त था। विचारों की दृढ़ता के साथ-साथ उनके स्वभाव और व्यवहार में एक लचीलापन था, जिससे भिन्न विचारों और रहन-सहन वालों के दिल में भी उन्होंने घर बना लिया था।

कहानी लेखन

सुभद्रा जी ने कहानी लिखना आरंभ किया क्योंकि उस समय संपादक कविताओं पर पारिश्रमिक नहीं देते थे। संपादक चाहते थे कि वह गद्य रचना करें और उसके लिए पारिश्रमिक भी देते थे। समाज की अनीतियों से जुड़ी जिस

वेदना को वह अभिव्यक्त करना चाहती थीं, उसकी अभिव्यक्ति का एकमात्र माध्यम गद्य ही हो सकता था। अतः सुभद्रा जी ने कहानियाँ लिखीं। उनकी कहानियों में देश–प्रेम के साथ–साथ समाज की विद्रूपता, अपने को प्रतिष्ठित करने के लिए संघर्षरत नारी की पीड़ा और विद्रोह का स्वर देखने को मिलता है। एक ही वर्ष में उन्होंने एक कहानी संग्रह 'बिखरे मोती' बना डाला। 'बिखरे मोती' संग्रह को छपवाने के लिए वह इलाहाबाद गईं। इस बार भी सेकसरिया पुरस्कार उन्हें ही मिला—कहानी संग्रह 'बिखरे मोती' के लिए। उनकी अधिकांश कहानियाँ सत्य घटना पर आधारित हैं। देश–प्रेम के साथ–साथ उनमें गरीबों के लिए सच्ची सहानुभूति दिखती है।

अंतिम रचना

उनकी मृत्यु पर माखनलाल चतुर्वेदी ने लिखा कि सुभद्रा जी का आज चल बसना प्रकृति के पृष्ठ पर ऐसा लगता है मानो नर्मदा की धारा के बिना तट के पुण्य तीर्थों के सारे घाट अपना अर्थ और उपयोग खो बैठे हों।

मैं अछूत हूँ, मंदिर में आने का मुझको अधिकार नहीं है।
किंतु देवता यह न समझना, तुम पर मेरा प्यार नहीं हैघ
प्यार असीम, अमिट है, फिर भी पास तुम्हारे आ न सकूँगी।
यह अपनी छोटी सी पूजा, चरणों तक पहुँचा न सकूँगी।।
इसीलिए इस अंधकार में, मैं छिपती–छिपती आई हूँ।
तेरे चरणों में खो जाऊँ, इतना व्याकुल मन लाई हूँ।।
तुम देखो पहिचान सको तो तुम मेरे मन को पहिचानो।
जग न भले ही समझे, मेरे प्रभु! मेमन की जानो।।

यह कविता कवयित्री की अंतिम रचना है।

दुःखद निधन

14 फरवरी को उन्हें नागपुर में शिक्षा विभाग की मीटिंग में भाग लेने जाना था। डॉक्टर ने उन्हें रेल से न जाकर कार से जाने की सलाह दी। 15 फरवरी 1948 को दोपहर के समय वे जबलपुर के लिए वापस लौट रहीं थीं। उनका पुत्र कार चला रहा था। सुभद्रा ने देखा कि बीच सड़क पर तीन–चार मुर्गी के बच्चे आ गये थे। उन्होंने अचकचाकर पुत्र से मुर्गी के बच्चों को बचाने के लिए कहा। एकदम तेजी से काटने के कारण कार सड़क किनारे के पेड़ से टकरा

गई। सुभद्रा जी ने 'बेटा' कहा और वह बेहोश हो गईं। अस्पताल के सिविल सर्जन ने उन्हें मृत घोषित किया। उनका चेहरा शांत और निर्विकार था मानों गहरी नींद सो गई हों। 16 अगस्त 1904 को जन्मी सुभद्रा कुमारी चौहान का देहांत 15 फरवरी 1948 को 44 वर्ष की आयु में ही हो गया। एक संभावनापूर्ण जीवन का अंत हो गया।

उनकी मृत्यु पर माखनलाल चतुर्वेदी ने लिखा कि सुभद्रा जी का आज चल बसना प्रकृति के पृष्ठ पर ऐसा लगता है मानो नर्मदा की धारा के बिना तट के पुण्य तीर्थों के सारे घाट अपना अर्थ और उपयोग खो बैठे हों। सुभद्रा जी का जाना ऐसा मालूम होता है मानो 'झाँसी वाली रानी' की गायिका, झाँसी की रानी से कहने गई हो कि लो, फिरंगी खदेड़ दिया गया और मातृभूमि आजाद हो गई। सुभद्रा जी का जाना ऐसा लगता है मानो अपने मातृत्व के दुग्ध, स्वर और आँसुओं से उन्होंने अपने नन्हें पुत्र को कठोर उत्तरदायित्व सौंपा हो। प्रभु करे, सुभद्रा जी को अपनी प्रेरणा से हमारे बीच अमर करके रखने का बल इस पीढ़ी में हो।

सम्मान और पुरस्कार

इन्हें 'मुकुल' तथा 'बिखरे मोती' पर अलग-अलग सेकसरिया पुरस्कार मिले।

भारतीय तटरक्षक सेना ने 28 अप्रॅल 2006 को सुभद्रा कुमारी चौहान को सम्मानित करते हुए नवीन नियुक्त तटरक्षक जहाज को उन का नाम दिया है।

भारतीय डाक तार विभाग ने 6 अगस्त 1976 को सुभद्रा कुमारी चौहान के सम्मान में 25 पैसे का एक डाक-टिकट जारी किया था।

जबलपुर के निवासियों ने चंदा इकट्ठा करके नगरपालिका प्रांगण में सुभद्रा जी की आदमकद प्रतिमा लगवाई जिसका अनावरण 27 नवंबर 1949 को कवयित्री और उनकी बचपन की सहेली महादेवी वर्मा ने किया। प्रतिमा अनावरण के समय भदन्त आनन्द कौसल्यायन, हरिवंशराय बच्चन जी, डॉ. रामकुमार वर्मा और इलाचंद्र जोशी भी उपस्थित थे। महादेवी जी ने इस अवसर पर कहा, नदियों का कोई स्मारक नहीं होता। दीपक की लौ को सोने से मढ़ दीजिए पर इससे क्या होगा? हम सुभद्रा के संदेश को दूर-दूर तर फैलाएँ और आचरण में उसके महत्त्व को मानें—यही असल स्मारक है।

कृतियाँ

कहानी संग्रह

बिखरे मोती (1932),
उन्मादिनी (1934),
सीधे साधे चित्र (1947),

कविता संग्रह

मुकुल,
त्रिधारा।

प्रसिद्ध पंक्तियाँ

यह कदंब का पेड़ अगर माँ होता यमुना तीरे। मैं भी उस पर बैठ कन्हैया बनता धीरे-धीरे।

सिंहासन हिल उठे राजवंशों ने भृकुटी तानी थी, बूढ़े भारत में भी आई फिर से नयी जवानी थी, गुमी हुई आजादी की कीमत सबने पहचानी थी, दूर फिरंगी को करने की सबने मन में ठानी थी।

मुझे छोड़ कर तुम्हें प्राणधन सुख या शांति नहीं होगी यही बात तुम भी कहते थे सोचो, भ्रान्ति नहीं होगी।

बिखरे मोती (सुभद्रा कुमारी चौहान),

भूमिका बिखरे मोती

एक बार एक नये कहानी लेखक ने जिनकी एक-दो कहानियाँ प्रकाशित हो चुकी थीं, मुझसे बड़े इत्मीनान के साथ कहा-"मैं पहले समझता था कि कहानी लिखना बड़ा कठिन है, परन्तु अब मुझे मालूम हुआ कि यह तो बड़ा सरल है। अब तो मैं नित्य एक कहानी लिख सकता हूँ।" उनकी यह धारणा, मुझे लिखते हुए कुछ दु.ख होता है, बहुत शीघ्र ही बदल गई।

नया कहानी लेखक समझता है कि केवल कथानक (प्लाट) रच देने से ही कहानी बन जाती है। भाषा, भाव, चरित्र-चित्रण इत्यादि से उसे कोई सरोकार नहीं रहता। यदि व्याकरण के हिसाब से भाषा ठीक है तो वह सर्वोत्तम भाषा है, कहानी में भाव अपने आप आ ही जाते हैं-कोई भी लेखक उनका आना रोक नहीं सकता, और चरित्र-चित्रण के लिए बदमाश, पाजी, धूर्त,

सज्जन, दयावान् इत्यादि शब्द मौजूद ही हैं—इन्हीं में से कोई एक शब्द लिख देने से चरित्र-चित्रण से भी सरलतापूर्वक छुट्टी मिल जाती है, परन्तु दो-चार कहानियाँ लिखने के पश्चात उसकी गाड़ी सबसे पहले उसी मार्ग पर अटकती है जिसे वह सबसे सरल समझ रहा था—अर्थात प्लाट। जिन दो-चार प्लाटों के बल पर उसने अपने लिए कहानी लेखन विषय निश्चित किया था जब वे समाप्त हो जाते हैं, तब उसे प्लाट ढूंढें नहीं मिलता। उस समय उसे पता लगता है कि कहानी-लेखन उतना सरल नहीं है जितना उसने समझ रखा था। परन्तु एक भ्रम दूर होते ही दूसरा भ्रम पैदा हो जाता है। कहानी-लेखन बड़ा सरल है-यह भ्रम तो दूर हो गया परन्तु उसके साथ ही यह भ्रम आ घुसा कि अभ्यस्त लेखक या तो प्लाट कहीं से चुराते हैं या फिर उनके कान में ईश्वर प्लाट फूँक जाता है। पहले तो नया लेखक इस बात की प्रतीक्षा करता है कि कदाचित उसके कान में भी ईश्वर प्लाट फूँक जाएगा, परन्तु जब उसे इस ओर से निराशा होती है तब वह दूसरी युक्ति ग्रहण करता है। अन्य भाषा के पत्रों से प्लाट चुरा कर उसे तोड़-मरोड़ कर कहानी तैयार कर दी । बहुत से तो हिन्दी में ही निकली हुई कहानियों का रूप बदलकर उन पर अपना अधिकार जमा लेते हैं।

नया लेखक यह बात नहीं समझ सकता कि अभ्यस्त लेखक प्लाट गढ़ते हैं, उसकी रचना करते हैं। हाँ, केवल विषय और भाव ऐसी चीजें हैं जिन्हें कोई भी लेखक अपनी बपौती नहीं कह सकता और किसी लेखक को उन्हें गढ़ने का कष्ट नहीं उठाना पडता । "सच बोलना बहुत अच्छा है, मनुष्य को सदैव सच बोलना चाहिए।" इस विपय पर न जाने कितने प्लाट गढ़े जा चुके हैं और न जाने अभी कितने गढ़े जा सकते हैं। प्रेम, घृणा, सज्जनता, दयालुता, परोपकार इत्यादि विषयों पर हजारों प्लाट बन चुके हैं और अभी हजारों बन सकते हैं, परन्तु वे सब प्लाट अच्छे नहीं हो सकते। प्लाट वही अच्छा होगा जिसमें कुछ चमत्कार होगा, कुछ नवीनता होगी। जिसमें प्रतिपादित विषय पर किसी ऐसे नये पहलू से प्रकाश डाला जाए जिससे कि वह विषय अधिक आकर्षक, अधिक मनोरम तथा अधिक प्रभावोत्पादक हो जाय। लेखक की प्रतिभा तथा लेखक की कला इसी पहलू के ढूंढ निकालने पर निर्भर है।

अब रहा चरित्र-चित्रण सो उसमें भी प्रतिभाशाली लेखक नवीनता तथा अनोखापन ला सकता है। नित्य जो चरित्र देखने को मिलते हैं उन चरित्रों से भिन्न कोई ऐसा अनोखा चरित्र उत्पन्न करना जिसे देखकर विज्ञ पाठक फड़क

उठे—उनके हृदय में यह बात पैदा हो कि मनुष्य-चरित्र के संबंध में उन्हें कोई नई बात मालूम हुई यही चरित्र-चित्रण की कला है।

खेद है कि अधिकांश नये लेखकों में उपर्युक्त कला का अभाव मिलता है। इसका मुख्य कारण यही है कि वे न तो इसका ज्ञान प्राप्त करने के लिए यथेष्ट अध्ययन ही करते हैं और न शिक्षा ही ग्रहण करते हैं। परिणाम यह होता है कि उनको सफलता नहीं मिलती और वे बरसाती कीड़ों की भाँति थोड़े दिनों तक इस क्षेत्र में फुदक कर सदैव के लिए विलीन हो जाते हैं।

इस संग्रह की लेखिका श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान से हिन्दी-संसार भली भाँति परिचित है। इनकी भावमयी कविताओं का रसास्वादन हिन्दी-जगत बहुत दिनों से कर रहा है, परन्तु कहानी-क्षेत्र में इन्हें, इस संग्रह द्वारा, कदाचित् पहले ही पहल देखेगा। परन्तु उसे हताश नहीं होना पड़ेगा, क्योंकि श्रीमती जी की कहानियों में कला है। प्लाट्स में कुछ न कुछ अनोखापन है और चरित्रों में भी कुछ विचित्रता है। उदाहरणार्थ 'ग्रामीणा' कहानी का प्लाट साधारण है, परन्तु उसमें "सोना" के अनोखे चरित्र ने जान डाल दी है। सोना एक ऐसी कन्या है, जो देहात के खुले वायुमण्डल में, पली है। उसका बाल्यकाल स्वतंत्रता की गोद में बीता है। नगर के प्रपंचों से वह अनभिज्ञ है। दुर्भाग्य से उसका विवाह शहर में होता है। वह नगर में आकर भी अपने उसी स्वतंत्रतापूर्ण देहाती स्वभाव के कारण पर्दे का अधिक ध्यान नहीं रखती। इसका परिणाम यह होता है कि उसके संबंध में लोगों में ऐसी गलतफहमी फैलती है, जो अन्त में उस बेचारी के प्राण ही लेकर छोड़ती है। सोना सुन्दर है, पवित्र है, निष्कपट है, निष्कलंक है, परन्तु फिर भी उसे आत्महत्या करने की आवश्यकता पड़ती है। क्यों? इसलिए कि उसका स्वभाव तथा रहन-सहन शहर में रहनेवालों से मेल नहीं खाता। वह अपने स्वतंत्रताप्रिय स्वभाव को शहरवालों के अनुकूल नहीं बना सकी, यही इस चरित्र में अनोखापन है।

इसी प्रकार श्रीमती जी की प्रत्येक कहानी में पाठक कुछ न कुछ विचित्रता, नवीनता तथा अनोखापन पाएंगे। कहानियों की भाषा बहुत सरल बोलचाल की भाषा है। इस संबंध में केवल इतना ही कहना यथेष्ट होगा कि एक विख्यात बहुभाषा-विज्ञ का कथन है कि-

'यदि किसी देश की भाषा सीखना चाहते हो तो उसे स्त्रियों से सीखो।'

श्रीमती जी की कहानियों में उनके कवि-हृदय की झलक भी कहीं-कहीं स्पष्ट देखने को मिल जाती है, जिसके कारण कहानियों का सौन्दर्य और अधिक बढ़ गया है।

मुझे पूर्ण आशा है कि हिन्दी-संसार इन कहानियों का आदर करके श्रीमती जी का उत्साह बढ़ायेगा। क्योंकि हिन्दी-साहित्य भविष्य में भी श्रीमती जी की रचनाओं से गौरवान्वित होने की आशा रखता है।

बंगाली मोहाल

कानपुर

18 सितम्बर 1932

विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक'

विनीत निवेदन

मैं ये 'बिखरे मोती' आज पाठकों के सामने उपस्थित करती हूँ, ये सब एक ही सीप से नहीं निकले हैं। रूढ़ियों और सामाजिक बन्धनों की शिलाओं पर अनेक निरपराध आत्माएँ प्रतिदिन ही चूर-चूर हो रही हैं। उनके हृदयबिन्दु जहाँ-तहाँ मोतियों के समान बिखरे पड़े हैं। मैंने तो उन्हें केवल बटोरने का ही प्रयत्न किया है। मेरे इस प्रयत्न में कला का लोभ है और अन्याय के प्रति क्षोभ भी। सभी मानवों के हृदय एक से हैं। वे पीड़ा से दुःखित, अत्याचार से रुष्ट और करुणा से द्रवित होते हैं। दुःख, रोष, और करुणा, किसके हृदय में नहीं हैं? इसीलिए ये कहानियाँ मेरी न होने पर भी मेरी हैं, आपकी न होने पर भी आपकी और किसी विशेष की न होने पर भी सबकी हैं। समाज और गृहस्थी के भीतर जो घात, प्रतिघात निरंतर होते रहते हैं उनकी यह प्रतिध्वनियाँ मात्र हैं, उन्हें आपने सुना होगा। मैंने कोई नई बात नहीं लिखी है, केवल उन प्रतिध्वनियों को अपने भावुक हृदय की तंत्री के साथ मिलाकर ताल स्वर में बैठाने का ही प्रयत्न किया है।

हृदय के टूटने पर आंसू निकलते हैं, जैसे सीप के फूटने पर मोती। हृदय जानता है कि उसने स्वयं पिघलकर उन आंसुओं को ढाला है। अतः वे सच्चे हैं, किन्तु उनका मूल्य तो कोई प्रेमी ही बतला सकता है। उसी प्रकार सीप केवल इतना जानती है कि उसका मोती खरा है, वह नहीं जानती कि वह मूल्यहीन है अथवा बहुमूल्य। उसका मूल्य तो रत्नपारखी ही बता सकता है। अतएवं इन 'बिखरे मोतियों' का मूल्य कलाविद् पाठकों के ही निर्णय पर निर्भर है।

मुझे किसी के सामने इन्हें उपस्थित करने में संकाच ही होता था परन्तु श्रद्धेय श्री. पदुमलाल पुन्नालाल जी बख्शी के आग्रह और प्रेरणा ने मुझे प्रोत्साहन देकर इन्हें प्रकाशित करा ही दिया, जिसके लिए हृदय से तो मैं उनका आभार मानती हैं, किन्तु साथ ही डरती भी हूँ कि कहीं मेरा यह प्रयत्न हास्यास्पद ही न सिद्ध हो।